जो याद रह गया

रिषभदास रांका

प्रकाशक :

भारत जैन महामण्डल, बम्बई १

श्री जे. एल. जैनी ट्रस्ट, इन्दौर के आर्थिक सहयोग से

प्रकाशक भारत जैन महामण्डल
भारत इशुरेंस बिल्डिंग
१५-ए हार्निमन सर्कल,
फोर्ट, बम्बई—१

संस्करण प्रथमबार, २२००
दिसम्बर १९७२

मुद्रक संजय साहित्य संगम के लिए
रामनारायन मेडतवाल
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस,
राजा की मंडी, आगरा—२

मूल्य छह रुपए मात्र

श्री रिषभदास रांका

दो शब्द

श्री रिषभदासजी राका से मेरा पहला परिचय सन् १६३६ मे वर्धा आने पर हुआ। तव से मैं उनके व्यक्तित्व और कार्य-प्रणाली से वहुत प्रभावित रहा हूँ। वे एक ऐसे प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ता है जिन्होंने अपने जीवन मे व्यापार का काम भी समाज व देश-सेवा की दृष्टि से किया है। महात्मा गाधी, ऋषि विनोवा, श्रद्धेय जमनालालजी वजाज, तपस्वी श्री कृष्णदास जाजू व पूज्य केदारनाथजी महाराज से उनका घनिष्ठ सम्वन्ध रहा और इस सत्संग ने रिषभदासजी के जीवन को और भी सेवामय व उज्ज्वल वनाया। उन्होने राष्ट्रीय स्वातत्र्य-संग्राम मे निरन्तर भाग लिया, कई जेल-यात्राए की और अपनी सारी शक्ति भारत की आजादी के लिये निर्भयता से लगाई। साथ ही साथ उन्होने खादी ग्रामोद्योग, गो-सेवा, शिक्षा, राष्ट्रभाषा प्रचार आदि रचनात्मक कार्यक्रमो मे सक्रिय हिस्सा लिया। भारत जैन महामण्डल को सुसगठित वनाने मे भी उन्होने अपना योगदान दिया। किन्तु यह कार्य श्री राकाजी ने "सर्व-धर्म-समभाव" के दृष्टि-कोण से ही किया। आज भी वे कई प्रकार के रचनात्मक कार्यों मे वडी लगन से व्यस्त रहते है।

"जो याद रह गया" मे उन्होने अपनी आत्म-कथा बड़े रोचक व मार्मिक ढग से लिखी है। मैं आशा करता हूँ कि उनके ये सस्मरण सभी के लिये, और विशेष तौर पर देश के हजारो रचनात्मक कार्यकर्ताओ के लिये, वहुत उपयोगी व प्रेरक साबित होगे। मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक का हिन्दी जगत् मे समुचित स्वागत होगा।

राजभवन
अहमदावाद
१७, नवम्वर १६७२

श्रीमन्नारायण
(राज्यपाल-गुजरात)

प्रकाशकीय

श्री रिषभदासजी राका स्वयं अपने आप में एक संस्था है। उनका सम्पूर्ण जीवन समाज और राष्ट्र की सेवा मे वीता है। वे अत्यन्त मिलनसार, सादगी-सम्पन्न और गाधीवादी कार्यकर्ता है। सेवा, उनकी आदत है और संकोच उनका स्वभाव। अपने किसी कार्य का कही प्रदर्शन अथवा अह नही। कार्यकर्ताओ को जोडने और उनका उचित उपयोग लेने मे रांकाजी अत्यन्त कुशल व्यक्ति है।

"जो याद रह गया" राकाजी के जीवन-संस्मरणो की एक छोटी-सी झांकी है जिससे सामान्य व्यक्ति से लेकर हर वर्ग के व्यक्ति को प्रेरणा प्राप्त होगी। भारत जैन महामण्डल उत्तम साहित्य प्रकाशन की दिशा मे सदा सचेष्ट रहा है। पिछले कई वर्षों मे प्रकाशन कार्य वन्द हो चुका था लेकिन हमे प्रसन्नता है कि अव मेरे कार्यकाल मे मण्डल पुनः सत्साहित्य का प्रकाशन करने लगा है। 'जो याद रह गया" ऐसी ही एक कृति है।

इस पुस्तक के प्रकाशन मे जै० एल० जैनी ट्रस्ट इन्दौर की ओर से रु. २५००-०० (ढाई हजार रुपये) सहयोग के रूप मे प्राप्त हुये है। श्री जौहरीलालजी मित्तल भारत जैन महामण्डल के वर्षों से सहयोगी रहे है और प्रति वर्ष मण्डल को जै० एल० जैनी ट्रस्ट द्वारा सहायता देते रहे है। हम जे० एल० जैनी ट्रस्ट के आभारी है।

पुस्तक का प्रकाशन श्री राकाजी के ७० वे जन्म-दिवस, २८ सितम्वर को करना था। भाई 'चादजी' ने रांकाजी से पुस्तक पूरी लिखवा भी डाली, किन्तु प्रकाशन की अन्य कतिपय कठिनाईयो के कारण २८ सितम्वर को पुस्तक प्रकाशित नही हो सकी, इसके मूल में भी रांकाजी की प्रसिद्धि से दूर भागने की भावना संभवत. काम कर रही थी। देर ही सही, अव यह पुस्तक आप प्रवुद्ध पाठको के हाथो मे प्रस्तुत करते हुये हमे प्रसन्नता है। आशा है आप इसे पसन्द कर मण्डल के प्रकाशन को और भी गतिशील वनायेंगे।

२४ नवम्वर १९७२ —शादीलाल जैन

प्राक्कथन

कुछ विन्दु सिधु की यात्रा पर चल पडते है, उनमे से कुछ तो विन्दु ही रह जाते है, कुछ बिन्दु भी नही रह पाते और कुछ वे होते है, जो सिन्धु की ओर निरन्तर गतिगील रहते हुए अपने स्वरूप को विराट् बनाते जाते है।

श्री रिपभदासजी राका, सिन्धु की यात्रा पर चल पडने वाले ऐसे ही एक विन्दु है, जो निरन्तर अपनी गति को, अपने स्वरूप को विराट् एवं व्यापक बनाते चले जा रहे है। उनकी जीवन-यात्रा एक बहुत ही छोटे से बिन्दु केन्द्र से प्रारम्भ हुई और वह अपनी गति, कर्म एव प्रसरणशीलता के बल पर अपने आयाम को सतत विस्तृत करती गई है ' उनका जीवन वहुमुखी कर्म-क्षेत्र रहा है। वे गाधी-युग के तपे हुए राष्ट्रसेवक है, गांधीजी, वजाजजी एवं विनोबाजी जैसे कर्मयोगी सन्तो का वरद-हस्त उन पर सदा कृपा वरसाता रहा है, और उनके जीवन एवं कर्म को सही दिशा देता आया है।

आज शरीर से वृद्ध होने पर भी वे युवक की भांति सक्रिय है, उनका मन, मस्तिष्क आज भी युवा है। मैंने देखा है उनका मानस रुढ परम्पराओ और साम्प्रदायिक बन्धनो से उन्मुक्त है। यदि स्वीकृति की भाषा मे कहूँ तो वे सभी सम्प्रदायो के है, और यदि नकार की भाषा बोलू ं तो वे किसी भी सम्प्रदाय के नही है। वे समग्र जैन समाज और मानव समाज के एक सच्चे सेवक है।

जैन एकता और जन-सेवा की भावनाएं उनके अन्त करण को सदा तरंगित करती रही है। जैन एकता के क्षेत्र मे भारत जैन महामण्डल का विराट होता हुआ रूप उनकी और उनके साथियो की इसी भावना का प्रतीक है। 'भगवान महावीर कल्याण केन्द्र' जैसे विराट् संस्थान के माध्यम से वे और उनके महनीय विचारशील सहयोगी, साथी जो जनसेवा का विराट कार्य कर रहे है उसे मै उनके जीवन की एक महान् उपलब्धि मानता हूँ।

राकाजी का जीवन प्रेरणा का केन्द्र रहा है। कार्यकर्ताओ को जुटाने और उनसे सहयोग प्राप्त करने की कला मे वे निपुण है। उनकी स्वयं की कलम से रूपायित-यह आत्म-कथा मेरे सम्मुख है। मैंने इन पृष्ठो को गहराई से पढा है और मेरा विश्वास है, आत्मकथाओ की श्रेणी मे प्रस्तुत आत्मकथा अपना एक महत्वपूर्ण स्थान वनायेगी। सरल, सहज भापा और उसमे सहज सरल ही घटनाओ की अभिव्यक्ति! न कुछ बढा दीखता है और न कुछ घटा। मानव जीवन के अनेक उज्ज्वल पक्ष इस जीवनकथा मे ऐसे मिलेगे जो युग-युग तक प्रेरणास्रोत बने रहेगे। ऐसी आत्मकथाओ को मैं सिर्फ आत्मकथा नही, किन्तु जीवन का सच्चा दर्शन मानता हूँ।

जैन भवन
आगरा

—उपाध्याय अमरमुनि

अपनी बात

कहना कठिन है कि इस पुस्तक मे जो कुछ लिखा गया है, वह बिलकुल सच ही होगा। अनेक कारणो से भूले रह जाना स्वाभाविक है। मनुष्य स्वभाव ऐसा है कि अपने दोप कम दिखाई देते है और दूसरो के सामने अपने दोपो को प्रगट करने से भी वह कतराता है। मनुष्य अपने गुणो को वहुत बढा-चढाकर देखता है और दूसरो के सामने इसी तरह व्यक्त भी करता है। इस प्रवृत्ति को दोष पूर्ण जानते हुए भी मैंने अपनी कहानी स्मृति के भरोसे लिखने का साहस किया है। संभव है इसमे वह बातें विस्मृति के कारण भी छूट गई हो।

मित्रो तथा बुजुर्गो का आग्रह था कि मैं अपने जीवन-सस्मरण लिखू वडो और महापुरुपो के चरित्र सामान्य लोगो के लिए पूजनीय तो होते है परन्तु उनका अनुकरण नही किया जा सकता है। महान पुरुपो के लिए ऊ चे और कठिन काम करना संभव है, साधारण लोग उन्हे नही कर सकते। सामान्य लोगो को अपने जैसे व्यक्ति के जीवन से संभव है कुछ लाभ हो, इसलिए मुझ जैसे एक सामान्य व्यक्ति ने कुछ लिखने का प्रयास किया। कहना कठिन है कि उसमे मैं सफल हुआ या असफल।

अपने विषय मे लिखते समय. आत्मस्तुति से बचना आसान नही होता। समर्थ गुरु रामदास की उक्ति "जो अपनी स्तुति करता है वह मूर्ख है" के अनुसार मै इस मूर्खता से कितना बच सका हूँ, यह कहना कठिन है। इतना जरूर है कि आत्म-प्रशसा या अतिशयोक्ति को टालने

की सावधानी अवश्य बरती है। फिर भी पाठक को मूर्खता के दर्शन हो तो वे मुझे क्षमा करे।

मेरे व्यक्तित्व के विकास में जिनका योग रहा, उन सबका स्मरण करना तो संभव नही था, फिर भी प्रसंगवशात् जिनका उल्लेख हुआ है, उन सबके प्रति भी मैं न्याय कर सका हूँ, ऐसा नही लगता। उल्लेख हो या नही किन्तु उन सबके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ जिनके कारण मेरा विकास हो सका।

मेरे व्यक्तित्व मे मेरा अपना जो कुछ है, वह तो मेरे दोष ही हो सकते है। अच्छाईयां सब उनकी है जिनसे मैंने उदारतापूर्वक पाया है। मैंने जीवन मे सैकडो नही, हजारो व्यक्तियो से बहुत कुछ पाया है। लेकिन जिन चार व्यक्तियो का मुझ पर स्थायी प्रभाव पडा वे है—पूज्य बापू, विनोबाजी, जमनालालजी बजाज तथा केदारनाथजी। बापू और विनोबाजी से मुझे आध्यात्मिक शिक्षा मिली और जमनालालजी तथा केदारनाथजी से व्यावहारिक शिक्षा। बापू और विनोबाजी को गुरु कहने की पात्रता मुझमे नही है, जमनालालजी तथा केदारनाथजी मेरे लिये पिता के स्थान पर रहे है। इन चारो के उपकारो से मेरा रोम-रोम भरा है। इतना ही कह सकता हूं कि इनसे जो कुछ पाया है वह दूसरो को बाटने का प्रयास करता हूँ और कृतज्ञता व्यक्त करते हुए यह कृति मैं उन्ही को सादर अर्पित करता हूँ।

मेरे मन मे संस्मरण लिखने का न तो उत्साह था और न इच्छा। लेकिन कुछ मित्रो के आग्रह से दस वर्ष पूर्व लिखना आरंभ किया। ५-६ प्रकरण लिखकर छोड दिये। फिर आदरणीय शिवाजी भावे ने आगे लिखने को प्रेरणा दी। फिर दो-चार प्रकरण लिखे और बन्द कर दिया। कुछ दिनो के बाद प्रबुद्ध और अनुभवी मित्र जौहरीलालजी मित्तल ने पुन: उत्साहित किया तो और कुछ लिख डाले। फिर भी उन्हे पूरा करने या प्रकाशित करने की इच्छा नही हो रही थी। इसलिए ये संस्म

रण वैसे ही पडे रहे। साथियो ने आग्रह किया कि मैं इस कार्य को पूरा कर दूँ। आखिर मैंने तय किया कि जो लिखा है, उसे ५ व्यक्ति देखकर प्रकाशन की सलाह दे तो प्रकाशित करने के विषय मे सोचा जाय। जो सामग्री तैयार हुई, वह भदन्त आनन्द कौसल्यायन, शिवाजी भावे, उपाध्यायअमरमुनिजी, आचार्य तुलसीजी व जौहरीलालजी मित्तल के पास भेज दी गयी। सबने कृपा पूर्वक समय निकालकर पांडु-लिपि पढी। सबकी राय रही कि यह पुस्तक छपनी चाहिए। इतना ही नही, जौहरीलालजी मित्तल ने तो इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए जे० एल० जैनी ट्रस्ट से रु० २५०० (ढाई हजार रुपये) की सहायता भी प्रदान की। फिर भी अगले प्रकरण लिखने का काम मुझसे नही हो रहा था। व्यस्त जीवन मे संस्मरण लिखना आसान तो नही था, पर भाई चदनमल "चांद" ने मुझपर दबाव डालकर किसी तरह यह काम पूरा करवा ही लिया। अब पुस्तक पाठको के पास पहुच रही है जिसे पूरी कर जल्दी प्रकाशित करवाने का श्रेय भाई चादजी को ही है। पिछले ४-५ प्रकरण बहुत जल्दी और व्यस्तता मे लिखे गये है। उन्होने निश्चय कर लिया था कि २८ सितम्बर यानी मेरे जन्म-दिवस के अवसर पर पुस्तक का प्रकाशन करना ही है।

मेरी यह इच्छा रहती है कि लेखन कम से कम शब्दो मे सार्थक लिखा जाय ताकि पाठको पर बोझ कम पडे और शब्दो, स्याही और कागज का निरर्थक व्यय न हो। इसलिए मैंने जो लिखा उसमे मैंने काफी कांट छाट की, उससे सन्तोष नही हुआ तो भदन्त आनन्द कौशल्यायन, जमनालालजी जैन तथा चादजी को भी बार बार कष्ट देना पड़ा। मैं उनका भी अनुग्रहीत हूँ जिन्होने मेरी इच्छा की पूर्ति मे सहयोग दिया।

गुजरात के राज्यपाल मान्यवर श्री श्रीमन्नारायण जी ने अपने व्यस्त क्षणो मे भी पूरी पाडुलिपि पढकर दो शब्द लिखने का कष्ट किया अतः मैं उनका आभरी हूँ।

पुस्तक के प्रकरणो को वार-वार टाइप करने मे भाई कुन्दन जी एवं अक्षय कुमार राका ने काफी परिश्रम किया है। मैं इनके सहयोग के लिए आभारी हूँ। भाई श्रीचंदजी सुराणा 'सरस' के सहयोग के बिना इस रूप मे यह पुस्तक हो नही पोती, मैं उनका आभारी हूँ।

अगर यह पुस्तक तरुण पीढी और पाठको के लिए किंचित् उपयोगी हुई, तो मैं इसका लेखन एवं प्रकागन उपयोगी मानकर संतोप अनुभव करूंगा।

लक्ष्मी महल,
वमन जी पेटिट रोड वम्वई–२६
२३ नवम्वर ७२

अनुक्रमणिका

●●

रिषभदास रांका

१

मेरे पूर्वज

एक समय था, जव भारत मे जाति-परम्परा के स्थान पर गुणो को महत्व देने वाली समता-प्रधान श्रमण संस्कृति का अधिक प्रभाव था। श्रमण संस्कृति के उपासक जैन और वौद्ध भिक्षु भारतीय ही नही, पर वाहर की युनानी, शक, हूण, गुर्जर, आभीर आदि अनेक जातियो को अपना कर भारतीय वनाते थे। उन दिनो जैनाचार्यों मे धर्म-प्रचार उत्कर्प पर पहुँचा हुआ था और यह स्थिति एक हजार वर्ष पूर्व तक वरावर वनी रही। किन्तु वाद मे जव वर्णाश्रम पर आधारित, शुद्धि पर अधिक वल देने वाली व्राह्मणसंस्कृति मे जाति भेद का प्रावल्य वढा संकुचितता आई, वर्णाश्रम धर्म की विशेपताओ का दुरुपयोग किया जाने लगा। तभी भारतेतर लोगो का भारतीकरण अवरुद्ध हो गया। इतना ही नही, भारतीय अपने लोगो को भी दूसरो के सम्पर्क मे आने पर वहिष्कृत करने लगे। इस तरह भारत कमजोर वनता गया। पराधीनता के सुदीर्घकाल मे वाहर से आये हुए शासक भारतीयो को अपने धर्म मे दीक्षित करने लगे। इस प्रकार सैकडो वर्षों तक हम दूसरो के गुलाम रहे। अपने लोगो को दूसरो मे मिलने को वाध्य कर दुर्वल वनते गए,

संख्या कम होती गई, आजादी मिलने के वाद भी भारत अखण्ड नही रह सका ।

उस समय जातिया, प्रदेश तथा शहर के शहर जैन-धर्म मे प्रविष्ट हुए । ओसिया, भीनमाल जैसे शहर के शहर ही सामूहिक रूप से जैन-धर्म मे परिवर्तित होकर पोरवाल, ओसवाल, श्रीश्रीमाल आदि जातिया वनी । जिस काल मे जैन धर्म प्रचार की यह प्रक्रिया चल रही थी, उसी काल मे हमारे पूर्वज भी जैन धर्म मे दीक्षित हुए, ऐसा उल्लेख मिलता है । राका और वाका नाम के दो क्षत्रिय भाई, जव लडाई चलती तव युद्ध के मोर्चे पर जाते और युद्ध वन्द होने तक खेती करते थे । सात्विक और सरल प्रकृति के होने से वे सन्त-सज्जनो का सम्पर्क साधते थे । इसी कारण लोगो मे उनकी ख्याति सन्त के रूप मे ही थी ।

सन्त-सज्जनो के सम्पर्क से अहिसा धर्म के प्रति उनका आकर्षण वढा और वे दोनो जैन वन गये । खेती के साथ-साथ व्यापार भी करने लगे । चूँकि उनका सम्पर्क अच्छे लोगो से वढा और व्यवहारकुशल तथा निर्व्यसनी थे, इसलिए वांकाजी के पास काफी सम्पत्ति एकत्र हो गई ।

एकवार देश मे अकाल पडा । अकाल-पीडित जनता को राहत पहुँचाने के लिए उन्होने राज्य सत्ता की सहायता की, इससे राज्य की ओर से वाकाजी को सेठ की पदवी मिली और उनकी सन्तान सेठ या सेठिया कहलाने लगी । यो वडे तो राकाजी थे, पर उनकी वृत्ति सग्रह की नही थी और वैराग्यप्रधान थी । उनकी सन्तान "राका" और वाकाजी की सन्तान सेठिया या सेठ कहलाने लगी । पर "राका" भी सेठ या सेठिया कहे जाते थे ।

इन दोनो भाइयो का परिवार राजस्थान के विविध हिस्सो मे फैल गया । हमारे पूर्वज जोधपुर राज्य के निवाज और वाद मे जैतारण गाव मे वसे ।

यद्यपि जैन धर्म अपना लिया था और कुछ व्यवसाय भी करने लगे थे, लेकिन वे वृत्ति से क्षत्रिय ही रहे । युद्ध और राजकाज मे हिस्सा

लेना ही उनका प्रमुख कार्य रहा। तीन सौ वर्ष पूर्व जोधपुर महाराज ने जव गुजरात पर धावा वोलकर अहमदावाद मे लूट-पाट की तो उसमे हमारे पूर्वजो ने भी हिस्सा लिया था और कहा जाता है कि हमारी वह हवेली जो एक छोटे गढ के रूप मे आज भी जैतारण मे विद्यमान है, अहमदावाद की लूट से ही वनी थी।

उसके वाद एक ऐसी घटना घटी, जो हमारे पूर्वजो के शौर्य और उदात्त गुणो की परिचायक है। कोई डेढ सौ वर्ष पूर्व की वात होगी। तव अग्रेजो का शासन सुदृढ नहीं वन पाया था। ठग और पिडारी लोग जनता को लूटपाट से आतंकित कर रहे थे, जिसमे पिडारी तो फौजे इकट्ठी कर गावो, कस्वो तथा शहरो तक को लूट रहे थे। "अमीरखान पिडारी" जिसे आगे चलकर अंग्रेजो ने टोक का अधिपति वना दिया था, ने एकवार जैतारण पर धावा वोल दिया। उसके नाम से लोग कापते थे, क्योकि उसके सैनिक गडा हुआ धन निकलवाने के लिए राख या पिसी हुई मिर्च की थैलिया लोगो के मुँह पर वाध देते थे और उन्हे गर्म तवे पर खडा रखते या उनका अंग-भंग तक कर देते थे।

जव अमीरखा की 'धाड" जैतारण पर आई तव हम लोग भण्डारियो की पोल मे रहते थे और हमारी हवेली ही पोल के दरवाजे के पहले आती थी। हमारे पूर्वजो ने पोल का दरवाजा वन्द कर झरोखे मे मोर्चा लगाकर लडने की तैयारी की। अमीरखा ने उनके पास सन्देशा भेजा था कि हमारे सैनिक आपके परिवार का कोई घर नही लूटेगे, लेकिन हमे पोल के मोहल्ले के दूसरे लोगो को लूटने दिया जाय। इस पर उन्होने कहला दिया कि आप भले ही हमारे परिवार को न लूटे, पर हमारे पडोसियो या हमारे सरक्षण मे जो लोग है उन्हे हम कैसे लूटने दे सकते है ? यह तो हमारे लिए लज्जा की वात है। अन्त मे दोनो ओर से वन्दूके चलने लगी उन दिनो हमारे परिवार मे जो वन्दूके थी, उनमे वारूद भरकर वत्ती लगाई जाने वाली थी। यह मुझसे पाचवी पीढी पूर्व की वात है। पाच भाईयो मे से जिन दोनो का विवाह नही हुआ था

वे लडते रहे। एक की पिंडारी की गोली से मृत्यु हुई और दूसरे की मृत्यु बन्दूक की नली गर्म होकर फट जाने से हुई। दोनो ने वीरगति पाई, पर मौहल्ला बच गया, क्योंकि वे तीसरी मंजिल के झरोखे से लड रहे थे। इसलिए काफी समय तक मोर्चा ले सके और पिंडारियों को काफी हानि उठानी पडी।

इन दोनो के बडे भाई के पुत्र मेरे परदादा बख्तावरमलजी थे जो कुछ काम तो जोधपुर राज का करते थे और कुछ लेन-देन का। उनका लेन-देन अछूतो के साथ था, जिन्हे राजस्थान मे बांभी या चमार कहते है। उनका काम चमडा पकाना और जूते बनाना, कपड़ा बुनना था। पचास वर्ष पूर्व जब मैं जतारण गया था तब एक बूढे से मेरा परिचय कराया गया था। उसने बताया था कि आपके परदादा हमारे साहूकार थे।

परदादा के पास विशेष धन नही था, पर सरकारी नौकरी, कुछ लेन-देन, रहने की हवेली और चढने के लिए घोडा अवश्य था। बड़े-बूढो ने बताया था कि वे गाव मे घोडे पर चढकर चलते थे और एक चमार घोडे के साथ-साथ चलता था। उनका यह रोब खानदानी था। उनके पुत्र यानी मेरे दादाजी धनराजजी के विवाह मे कठिनाई नही हुई। मेरे दादा लाड-प्यार मे पले थे। न तो उनकी ज्यादा पढाई ही हुई थी और न वे व्यवहारकुशल ही थे। भोलेभाले थे। उन्हे परिवार की जिम्मेदारी का जरा भी भान नहीं था। उन दिनो शादियां करते समय यह नहीं देखा जाता था कि लडका पढा-लिखा या कमाने वाला है या नही है। बस यही देखा जाता था कि लडके का पिता घोड़े पर चढकर चलता है, रौबीला है, रहने की हवेली है। विवाह के कुछ दिनो बाद ही मेरे परदादा की मृत्यु हो गई। परदादी तो पहले ही चल बसी थी। इसलिए मेरे दादा और दादी दोनो ही घर मे रहे।

मेरे दादा न तो परदादा का लेन-देन सम्भाल सके और न सरकारी कामकाज ही। कुछ दिनो तो वे जैसे तैसे चलाते रहे, पर मेरे पिताजी

के जन्म के बाद वे महाराष्ट्र चले आये, जहां वर्षों रहे, किन्तु वहां से न तो उन्होंने कुछ भेजा ही और न अपने समाचार ही दिये।

मेरी दादी की उम्र उस समय कोई २० वर्ष की रही होगी। उस पर पिताजी के पालन-पोषण की जिम्मेदारी आ पड़ी। घर मे तो सिवा दिखावे के कुछ था नही और जो था वह था खानदानियत। उसका बोझ सम्भालना कठिन था। घर से बाहर जाना हो तो साथ मे बिना डावडी (दासी) के बाहर आ जा नही सकती थी। बाहर का कामकाज नही कर सकती थी। पर थी मेरी दादी बडी गम्भीर, स्वाभिमानी और व्यवहारकुशल। उसने अपने पुत्र के पालन-पोषण व खानदान की प्रतिष्ठा की रक्षा का उपाय ढूँढ लिया। जो लेन-देन था उसकी वसूली करवाकर चर्खे की सहायता से उसने अपना काम चलाया। वह साल भर का कपास फसल पर खरीद कर नौकरानी से पिंजवा कर रख लेती। नौकरानी को एक रुपया महीना वेतन देती। वही घर का पानी भी भर देती तथा घर के अन्य काम करती।

मेरी दादी सूत महीन कातती थी। और जो चमार हमारे कर्जदार थे वे बुनाई का काम करते। उनसे खादी बुनवा लेती और वह खादी या रेजी अपने परिवार वालो की मार्फत विकवा देती जिससे घर खर्च अच्छी तरह से चल जाता। उन दिनो न इतनी मँहगाई थी और न आज की तरह खर्च के रास्तो की विपुलता।

दादीजी के विषय मे पिताजी तथा घर की वृद्ध स्त्रियो ने बताया कि वे बहुत सुन्दर थी। उनका वर्ण स्वर्ण की तरह था। उनकी नाक ऊँची, आखे बडी गहरी और चेहरा अत्यन्त आकर्षक था। शरीर से स्थूल नही थी, पतली थी। गरीबी के बावजूद उन्होने कभी किसी से कोई अपेक्षा नही रखी, बल्कि परिवार मे शादी-गमी मे बराबर नेगचार और "लेन-देन" करती रही और अपने पुत्र का पालन-पोषण इस प्रकार किया कि उसे अपने पिता की अनुपस्थिति न खटके। मेरे पिताजी की जब पढने की उम्र हुई तो गुरुजी "जैन यति" के पास पढने भेजा गया

और काम सीखने की उम्र हुई तव अपने परिवार की दुकान पर काम सीखने के लिए व्यावर भेज दिया। मेरे दादा एक वार आये और कुछ दिन घर पर रहे भी, लेकिन जैसे खाली हाथ आये थे वैसे ही कुछ दिनो वाद फिर वापिस खानदेश लौट गये।

पिताजी की बुद्धि तेज थी और मा से विरासत मे स्वाभिमान पाया था। परिश्रमी, वहीखातो के जानकर और धर्म के प्रति श्रद्धावान थे। शरीर से स्वस्थ एव सुन्दर थे। व्यसन के नाम पर कभी-कभी भाग पी लेते थे। लेकिन तम्वाखू उन्होने वचपन मे पीकर छोड दी, सो अन्त तक उसे छुआ नही। उन्हे धार्मिक पुस्तके पढने मे रुचि थी और नियमित मन्दिर जाते और नियमित पूजा करते। जव राजस्थान छोड खानदेश के देहात मे गये तो भी उन्होने गटाजी "मूर्ति के चित्र" की नियमित पूजा चालू रखी। विना पूजा किये वे भोजन नही करते थे।

खानदेश मे प्रारम्भ मे सेठ हीरालालजी भंसाली के यहा वे मुनीम रहे और ३-४ वर्ष मे दो-एक हजार रुपया एकत्र कर शादी के लिए मारवाड गये। उस समय जैतारण मे हमारे निकट परिवार के ७-८ घर थे। उनमे से एक घर पर ठहरे। भोजन के समय भाभी ने मजाक मे कहा, "देवरजी! परदेश से धन तो काफी कमा लाये है। अव हमारे लिए एक अच्छी सी देवरानी तो लाओ, जिसे सोने का वाजूवन्द फवे।"

तो दूसरी भाभी ने व्यंग्य किया—"हा देवरानीजी को वाजूवन्द तो फवेगा पर वडे वूढे तो अभी तक झाडो पर उडते-फिर रहे है। उनका भी तो ठिकाना लगाना आवश्यक है।" भावार्थ था कि दादा और मा के मृत्यु के वाद जाति के लोगो को जिमाया नही था इसलिए वे वुजुर्ग कौवे वनकर उड रहे है, पहले वह काम तो करो।

उन दिनो जोधपुर राज्य मे मृत्यु-भोज नही होते थे। सर प्रतापसिह पर स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रभाव था। इसलिए उन्होने कई सामाजिक सुधार कानून के वल करवाये थे। इसी कारण मेरे परदादा व दादी का मौसर "मृत्यु भोज" नही हो पाया था। भाभी के व्यग्य

से पिताजी के अहं को चोट पहुँची और उन्होंने अपने दादा व माता का मोसर "मृत्यु-भोज" ब्यावर मे बडी धूम-धाम से किया। ब्यावर अंग्रेजो की सत्ता के अन्तर्गत था, और वहा उसके लिए मनाई नही थी। अनेक प्रकार की मिठाइया बनवाकर जाति तथा परिवार वालो के सभी लोगो को खिलाया और उस समय के रीति-रिवाज के अनुसार खुले हाथो खर्च किया। शादी होना तो दूर रहा, पर वहा से कुछ कर्ज कर वापिस लौटे।

२

दादा गया पोता आया

मेरे दादाजी भोलेभाले तो थे ही, पर अपने पिता के अधिक लाड-प्यार ने उन्हे जीवन संघर्ष के लिए विलकुल असमर्थ वना दिया था। भारतीय परम्परा मे यह वडी कमजोरी है कि घर मे पिता, दादा या वडो के रहते हुए नई पीढी को काम करने व सीखने का अवसर नही मिलता। वडे वूढो को अन्त तक काम करना ही पडता है। मृत्यु के वाद उनका वारिस अपने को नितान्त अयोग्य और असहाय अनुभव करता है।

यह परम्परा केवल पारिवारिक जीवन मे ही नही, पर सार्वजनिक और राष्ट्रीय क्षेत्र मे भी गहरी पैठ गई है, तभी तो पडित नेहरु अन्त तक अपने जीवनकाल मे एक सुयोग्य वारिस तक नही ढूँढ सके। प्रधान-मत्रित्व के वोझ से अन्त तक लदे रहे। मेरे परदादा की मृत्यु होते ही गृहस्थी का वोझ मेरे दादाजी पर आ पडा। वे घवरा गये और पलायन मे ही सुरक्षा मान वे तरुण पत्नी को छोडकर परदेश (उन दिनो राजस्थान के वाहर के प्रदेश को परदेश माना जाता था) चल पड़े। वे खानदेश और उसके आसपास के प्रदेश मे कुछ समय रहे। कुछ वर्षो

वाद लौटकर अपने घर आये और एक वच्चे के पालन-पोपण को जिम्मेदारी अपनी पत्नी पर डालकर फिर चलते वने। उन्होने पत्नी और पुत्र के पालन-पोपण की जिम्मेदारी को वहन करना तो दूर रहा, उल्टे परिवार पर कर्ज का वोझ भी लाद दिया था।

वे न तो व्यवहारकुशल थे और न शिक्षित ही। उनके भोलेपन का लाभ उठाकर रुई के एक व्यापारी ने साझे मे व्यापार किया और अपने हिस्से के घाटे के चार-पाच हजार रुपये उनके नाम लिखकर लिखा-पढी करा ली। वे ना कैसे करते ? उन्होने कर्ज का वोझ परिवार पर थोप दिया। जिसे मेरे पिताजी ने चुकाया।

दादाजी द्वारा परिवार की जिम्मेदारी निभाने की असमर्थता का परिणाम यह हुआ कि पिताजी को अपना जीवन निर्वाह करने तथा विकास के लिए वचपन से ही कठोर परिश्रम करना पडा। इस परिश्रम के कारण उनके व्यक्तित्व का अच्छा विकास हुआ। वैसे मेरी दादीजी ने अपने परिश्रम व व्यवहारकुशलता से स्वाभिमानपूर्वक परिवार की जिम्मेदारी निभाई, परन्तु पिताजी को उन्होने व्यावर, एक सफल व्यवसायी की दुकान पर कपडे का धंधा सीखने भेजा। मेरी दादी नही चाहती थी कि मेरे पिताजी जीवन भर जैसे तैसे गुजारा करे। पिताजी ने छोटे से छोटा और वडे से वडा यानी दुकान झाडने से वहीखाते लिखने तक का काम सीखा। केवल व्यापार ही नही सीखा, वहा उन्होने तम्वाखू पीना भी सीख लिया था। उन्हे चिलम भरकर लाने को कहा जाता था, तो उन्होने देखा कि एकाध फूँक लगाकर देखना तो चाहिए कि इसमे ऐसा क्या आनन्द है कि लोग चाव से पीते है। चिलम लाते समय एक दो फूँक लगाने लगे, जव फूँक लगाकर चिलम आने लगी तो एक दिन पीने वाले के ध्यान मे यह वात आ गई। उन्होने पूछा—क्यो रामप्रताप ! तुम चिलम पीते हो ?

पिताजी का स्वभाव वचपन से निडर था। उन्होने कह दिया—हा। उन्होने कहा कि तुम जैसे वच्चो को तम्वाखू नही पीना चाहिए।

तो पिताजी बोले—नही पीऊँगा, पर मै चिलम भरकर भी नही ला सकूँगा ।

बुजुर्ग समझदार थे । उन्होने कहा—ठीक कहते हो, आज से तुम्हे यह काम नही कहा जावेगा ।

जब दुकान पर व्यापारिक शिक्षा पा ली तो पिताजी अपना भाग्य आजमाने खानदेश आये । वहा प्रारम्भ मे नौकरी की, फिर वही विवाह होने पर अपनी दुकान शुरू कर दी । कपडे और किराने की दुकान की । दादाजी को भी उन्होने अपने पास बुला लिया था ।

पिताजी की योग्यता देखकर, जिनके यहा वे काम करते थे उन्होने ही अपने परिवार की कन्या के साथ विवाह करा दिया था । अच्छी तरह काम चलने लगा । पिताजी ने अपने परिश्रम और साहस से दुकानदारी बहुत अच्छी तरह चलाई । पिताजी जहा रहते थे फतेपुर नाम का वह गाव था तो छोटा ही, किन्तु खानदेश के एक छोर पर था । उन दिनो आज की तरह भावो मे बहुत उथल-पुथल नही होती थी और न व्यापार मे बड़ी जोखिम ही उठानी पडती थी, क्योकि बँधे नफे पर माल बिकता था । उन दिनो उधार माल देने मे भी इतनी जोखिम नही रहती थी, क्योकि लोग सीधे-साधे थे और किसी का रुपया डुबाना या वापिस न देना पाप समझा जाता था । ऋण लेकर मरने से अगले जन्म मे बैल बनना पडेगा, ऐसी मान्यताओ के कारण परभव के असीम कष्टो के भय से कोई उधार डूबता नही था ।

व्यापार बहुत अच्छा चला और पाच-सात वर्षो मे तो उन्होने अपनी दुकानदारी बहुत अच्छी जमा ली । दुकान मे माल भी ३०-४० हजार का रहता था । उधारी भी १५-२० हजार की रहती थी । पिताजी ने अपने परिश्रम व साख से बहुत अच्छी प्रगति कर ली थी । परिवार मे मेरे माता-पिता, दादाजी और रिश्ते में पिताजी की पितृहीन चचेरी बहिन थी । उसकी शादी की जिम्मेदारी पिताजी अपने पर समझते थे । हमारे परिवार मे तीन पीढियो मे कोई लडकी थी ही नही, इसलिए

पिताजी की यह इच्छा स्वाभाविक ही थी कि अपने हाथो कन्यादान करे—आगन अव तक कु'वारा था इस शादी के द्वारा उसका कु वारापन दूर हो जाय। संसार वडे सुख से चल रहा था। दादाजी के मन मे वडी तीव्र इच्छा थी कि वे पोते को गोद मे लेकर उसको लाड-प्यार करे। देवयोग से ज्यो-ज्यो मेरे जन्म का दिन निकट आने लगा त्यो-त्यो दादाजी की खुशी वढती गई। लेकिन वह पोते का मुँह देख सके, यह विधि को मंजूर नही था। मेरा जन्म उनकी मृत्यु के तीन दिन बाद हुआ। महाराष्ट्र मे एक कहावत प्रचलित है—"आजा मेला नातु आला। घर ची माणसे वरोवर" दादा गया पोता आया। घर के लोगो की संख्या ज्यो की त्यो।

चूँकि वह समय पिताजी की दृष्टि से उन्नति का था, इसलिए मेरे जन्म पर काफी खुशिया मनाई गई और पिताजी की धार्मिक वृत्ति के अनुसार उन्होने दान-पुण्य भी किया।

☐ ☐

३

पिताजी : परिश्रमशील और आत्मविश्वासी

पिताजी पर असमय में ही जिम्मेदारी आ पड़ी थी। उसे उन्होंने अच्छी तरह निभाया और अपना समुचित विकास भी किया, परन्तु प्राप्त सफलता ने उनके आत्मविश्वास को अहंकार में परिणत कर दिया। उनकी इस वृत्ति का नतीजा यह निकला कि आगे बढ़ने में सहयोग देने वाले एक सम्बन्धी को उनकी उन्नति से ईर्ष्या हो गयी। अत्यधिक आत्मविश्वास के कारण पिताजी में कुछ अकड़ भी आ गयी थी, जिसने उस ईर्ष्या को भड़काने का काम किया और वे इस प्रयत्न में लगे रहे कि पिताजी को किस प्रकार नुकसान पहुँचाया जाय ? पिताजी का स्वभाव कुछ गुस्सैल भी था और गुस्से में वे कुछ अप्रिय भाषा का प्रयोग भी कर बैठते थे। उधर उन सज्जन में भी क्रोध के साथ-साथ कई ऐसी बातें भी थीं जिनके कारण वे गांव में काफी बदनाम थे। झगड़ालू तो थे ही, पर वे किसी का ऐसा नुकसान भी कर सकते थे जो भयानक और मानवता

के लिये लज्जास्पद हो। पूरा गाव उनकी लडाकूवृत्ति से परिचित था और लोग उनसे भय भी खाते थे। पिताजी स्वभाव से निडर थे। सफलता और तरुणाई ने उन्हे और साहसी वना दिया था। गाव के समझदारो की इस आदमी से लडना अच्छा नही है, सलाह की उन्होने परवाह न की।

इस संघर्ष का वहुत वडा दुष्परिणाम हुआ। जव पिताजी मुझे और मा को लेकर मेरे ननिहाल गये हुए थे तव उनके उस शत्रु को मौका मिल गया और उसने दुकान तथा घर मे आग लगा दी। दुकान का पूरा माल, घर का सारा सामान, वहीखाते सव कुछ स्वाहा हो गया। उन दिनो गाव मे आग वुझाने के साधन भी नही थे। आधी रात को लगी आग ने दुकान और सूने घर को चन्द घण्टो मे जलाकर राख का ढेर वना दिया। लोगो ने वडी मुश्किल से आग को गाव मे फैलने से रोका, पर हमारी दूकान और घर मे कुछ भी नही वचा। वच गये वे कपडे जो माता-पिता साथ ले गये थे, मा के वदन पर हजार वारह सौ के गहने तथा १८-२० हजार का कर्जा और वच गई मानी हुई वहिन की शादी की जिम्मेदारी।

मेरा ननिहाल हमारे गाव से तीन-चार मील की दूरी पर था। रात को ही आदमी भेजा गया और पिताजी दूसरे दिन सवेरे गाव पहुँचे। वे संकट से विलकुल नही घवराये। उन्होने दूसरे के घर मे अपना डेरा जमाकर सवसे पहला काम यह किया कि अपने साहूकारो के पास पहुँचे और कहा—"आपत्ति आ गयी है, आप लोगो का कर्ज चुकाने के लिए मेरे पास कुछ नही वचा है फिर भी धन कमाने की शक्ति है और कर्ज चुकाने की नीयत है, अत मैं मेहनत करके आपका कर्ज चुका दूँगा। हा, आपको एक काम करना होगा। मुझे फिर माल उधार देना होगा। उससे जो कमाई होगी, घर-खर्च चलाकर शेप से कर्जा चुकाऊँगा। आपको थोडी जोखिम और उठानी होगी।" जव वे खुद साहूकारो के समक्ष गये, तो व्यापारी उनकी वात मान गये।

व्यवहार मे ऐसा प्रसग आने पर साहूकार के समक्ष जाकर सही स्थिति वताकर रास्ता निकालने का प्रयत्न किया जाता है तो साहूकार प्राय जोखिम उठाकर भी सहयोग देते है।

एक सज्जन ऐसे भी मिले जिनका खुद का कर्ज तो नहीं था, पर उनकी छोटी सेठानी के मायके वालो का था और वह भी दादाजी के रुई के व्यापार के घाटे का था। सेठजी ने सोचा कि जव जल्दी रुपये वसूल होने की दूसरी कोई उम्मीद नही तो मानी हुई वहिन के रुपये ही क्यो न ले लिये जायें? उन्होने पिताजी को वुलाया। उस क्षेत्र में वे वहुत वडे धनी ही नही, काफी प्रभावशाली भी थे। उनकी वडी धाक थी। पिताजी के सामने प्रस्ताव रखा। उन दिनों वृद्ध-विवाह होते थे। धनी लोग एक पत्नी के रहते हुए भी दूसरा विवाह कर लिया करते थे। स्वयं सेठजी की दो पत्निया थी। विवाह योग्य लडकी का मूल्य आसानी से ८-१० हजार मिल सकता था।

लेकिन पिताजी तो दूसरी ही धातु के वने हुए थे। यह वात उनके वर्दाश्त के वाहर की थी। भले ही वह लडकी दूर के रिश्ते की वहिन थी, पर इस तरह के कन्या-विक्रय को वे पाप समझते थे। उनके सम्मुख धन से प्रतिष्ठा का मूल्य अधिक था। वे कन्या-विक्रय द्वारा आये हुए पाप के पैसे को घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसलिए उन्होने कह दिया कि यह वात हर्गिज नही होगी।

सेठजी इस प्रकार का उत्तर सुनने के न तो आदी थे और न कोई उनके सम्मुख ना कहने की हिम्मत ही कर सकता था। वे तमक कर वोले—"अच्छा, तो देखेंगे शादी कैसे होती है?"

पिताजी ने कहा—"शादी तो निश्चित ही होगी और उसी लडके के साथ होगी जिससे तै हुई है। यदि आपने वाधा पहुँचाई तो मुगलाई मे जाकर करूँगा। लडकी को वूढे के हाथ वेचने का पाप मुझे कभी नही होगा।"

हमारा गाव उन दिनो अंग्रेजीशासन के क्षेत्र मे था, पर निजाम की सरहद लगी हुई थी जिसे मुगलाई कहा जाता था। वहा अंग्रेजो के प्रदेश की पुलिस दूसरे प्रदेश वालो के साथ जबर्दस्ती नही कर सकती थी। यदि गाव मे शादी की जाती तो सम्भव है कानूनी कार्यवाही कर कुर्की लाने का प्रयत्न होता।

सेठजी ने कहा—"रुपये नही लोगे तो शादी होगी कैसे ? आखिर शादी मे भी कुछ खर्च तो लेना ही होगा। तुम्हारे पास तो कुछ भी नही है। फिर रुपये लेने ही हो, तो कम और अधिक मे क्या अन्तर ?"

पिताजी—"मेरी पत्नी के शरीर पर जो जेवर है, उन्हे बेचकर शादी करूँगा। लडकी के रुपये कदापि नही लूँगा।"

सेठ—"लोगो का कर्ज कैसे चुकाओगे ?"

पिताजी—"कमाई करके। मुझे किसी का एक पैसा भी नही रखना है।"

मा के शरीर पर सिर्फ सौभाग्य चिन्ह छोडकर सारा जेवर बेच दिया। बहिन की शादी की और तदनन्तर व्यापार मे जुट गये। सेठजी को भी उनकी तेजस्विता के आगे चुप रह जाना पडा।

इस संकट ने उनके व्यक्तित्व को और भी निखार दिया। उन्होने श्रम करके ऐसी कमाई की कि कुछ ही दिनो मे कर्जा उतार कर उन्होने कुछ पूँजी भी जोड ली। उन दिनो उन्होने श्रम किया था, वैसा श्रम करने की कल्पना भी आज की पीढी नही कर सकती।

हमारे गांव से जिले तथा व्यापार का मुख्य केन्द्र जलगाव ३५-३६ मील दूर था। लगभग १२ साल तक वे हर सप्ताह माल खरीदने जाते रहे। उन दिनो यातायात के आधुनिक साधन नही थे। बैलगाडी से ही जाना पडता था। ३६ मील मे आधा रास्ता कच्चा और आधे मे सडक थी। हर शुक्रवार को भोजन कर वे ११ बजे निकल जाते। शाम को ७-८

वजे नेरी नामक गाव पहुँचते । कई गाडियां का समूह रहता । दूसरे लोग वहा पहुँच कर दाल-वाटी का भोजन वनाते । धार्मिक वृत्ति के होने के कारण पिताजी रात को भोजन नही करते थे और पानी भी सूर्यास्त के वाद नही पीते थे । यही नियम उन्होने जीवन के अन्त तक चलाया । इसलिए घर से खाने के लिए दूध मे वनाये हुए पराठे, सत्तू के लड्डू साथ रखते जो सूर्यास्त के पहले ही किसी कुएँ के पास वैठकर खा लेते और साथ के लोटे या डोल से कुएँ से पानी निकलवाकर पी लेते । नेरी मे १२ से १ वजे तक आराम करने के पश्चात् पुन गाडिया निकल पडती । रास्ते मे, जलगाव से करीव ३ मील पर कावराओं का वगीचा था । वहा ठहरकर, निपटकर, हाथ-मुँह धोकर ७-८ वजे गाड़िया जलगाव पहुँचती । उसके वाद माल खरीदकर गाडियो मे जमा कर २-२॥ वजे वे वापिस रवाना होते । नेरी गाव मे ७-८ वजे वापिस लौटते । दूसरे लोग तो नेरी मे दाल वाटी वनाकर खाते और आराम करते, पर पिताजी खाने का जो सामान गाव से लेकर चलते, जलगाव से लौटते समय भी सूर्यास्त से पहले वही खाकर काम चलाते । वहा से दो-तीन वजे रात को गाडिया रवाना होती जो रविवार को ११-१२ वजे घर पहुँचती ।

घर पहुँच कर पहले गाडी से माल उतरवाते । फिर स्नान कर भोजन करते । वाद मे जलगाव मे खरीदे हुए माल की जांच कर उन पर विक्री के आकडे लगाते और दुकान मे जमा लेते । वडी मुश्किल से एकाध घण्टा आराम करते । रात को वहीखाते लिखते ।

सोमवार को फतेपुर का साप्ताहिक वाजार लगता था, इसलिए वाजार मे ले जाने के लिए माल छाटकर रखना पडता । घर रहते तो ४॥-५ वजे उठ जाते । निपटकर सामायिक और प्रतिक्रमण करते । सवेरे दुकान का काम कर ६ वजे के करीव स्नान और पूजा करते । गाव मे जैन मदिर नही था इसलिए घर पर ही पूजा करते थे । जैनियो के २०-२५ घर थे, लेकिन सव स्थानकवासी थे । सिर्फ हमारा घर ही मूर्ति-

पूजको का था। दो-तीन घर दिगम्बर मूर्तिपूजको के थे। पर मंदिर उनका भी नही था।

सोमवार को बाजार मे ले जाने के लिए माल छाटकर गाडी मे भरवाते। फिर भोजन कर सप्ताह मे एक दिन लगने वाले बाजार मे पहुँचकर वहा दुकान लगाते। दुकानदारी शाम तक चलती रहती। भोजन के लिए घर पर नही आ सकते थे। बाजार मे से सत्तू के लड्डू जैसी कोई चीज खाकर पानी पी लेते। शाम को बैलगाडी मे माल लाद कर वापिस लाना पडता और उसे यथास्थान जमाकर वहीखाते लिखने पड़ते।

मंगलवार को फतेपुर से ८ मील दूरी पर देउलगाव मे बाजार लगता। अपना नित्य नियम करने के बाद माल छाटकर गाडी मे भरते और नहा-धोकर पूजा पाठादि करके भोजन करते। और ६-६॥ बजे रवाना होते। रास्ता पहाड़ियो मे से होकर जाता था और ऊबड-खाबड था। करीब १२-१२॥ बजे बाजार पहुँचते। दुकान लगाकर ६ बजे तक बिक्री करते फिर मालगाड़ी मे माल भरकर १०-१०॥ बजे वापिस लौटते। गाड़ी से माल उतार कर यथास्थान जमाने मे ११-११॥ बज जाते। पहाडी और ऊबड़-खाबड़ रास्ता होने से हड्डिया हिल जाती थी और थक कर चूर-चूर हो घर लौटते थे।

बुधवार को फिर बाकडी नामक गाव का बाजार लगता। यह ६ मील की दूरी पर था, रास्ता इतना बुरा नही था। इसलिए देर से निकलते थे। बुधवार का दिन साप्ताहिक हजामत बनाने का दिन था। नाई सप्ताह मे एकबार हजामत बनाने नियमित आता था। वह राजस्थान के हमारे गाव का था। बर्तन माजने, हजामत बनाने तथा विवाह शादी मे नेगचार का काम वही करता था। वह घर का नाई समझा जाता था। घर के सुख-दु ख मे साथ देता था। पिताजी जब घर होते तो पैर दबाने भी आता था। बुधवार को ८-८॥ बजे ही बाजार से लौट आते और काम निपटाकर जल्दी सो जाते।

गुरुवार को हिसाब किताब लिखते। उधारी वसूल करने और कुछ आराम करने का दिन था, क्योकि दूसरे दिन फिर जलगाव जाने की तैयारी करनी होती। यद्यपि वहीखाते और हिसाब के पिताजी अच्छे जानकार थे, लेकिन उनके अक्षर थे "आप लिखे खुदा पढे।" लिखते समय लाइन शुरु करते तो अन्त तक कलम उठाते ही नही थे। कईवार तो उनके लिखे को पढने के लिए मुझे ही "खुदा" बनना पडता। वे मुडिया लिपि मे लिखते, जिसमे, ह्रस्व-दीर्घ या कामा, मात्रा आदि की ओर ध्यान नही दिया जाता।

लेन-देन सम्बन्धी उनकी मान्यताएँ भी सामान्य मान्यताओं से भिन्न थी। उन्होने कभी अपने लेनदार पर कोर्ट मे नालिस नही की। उनका मानना था कि इस जन्म मे यदि कोई उनका पैसा नही देगा तो अगले जनम मे उसे व्याज के साथ वह चुकाना पडेगा। उनका सवसे वड़ा हथियार था अपने कर्जदार से कहना कि "यह लिखा-पढी रख देता हूँ, तुम इसे उठा लो और प्रतिज्ञा से कह दो कि मुझे देना नही है। मै रुपया तुम्हे छोड दूँगा।" इस प्रकार हजारो रुपये लोगो के वट्टे खाते मे लिख दिये थे, पर कभी कोर्ट मे नही गये।

उन्होने अत्यन्त परिश्रम करके कर्ज चुकाया, गृहस्थी के कर्त्तव्यो को निभाया और अपनी कल्पना के अनुसार दान-धर्म भी किया। खर्च मे कभी पीछे नही रहे। आमदनी के अनुपात मे दूसरो की अपेक्षा खर्चीले ही समझे जाते थे। परिश्रम ने उनकी कार्यक्षमता वढा दी थी। परिश्रम की आदत अन्त तक रही। करीव ४० साल तक वे सतत परिश्रम करके इज्जत और स्वाभिमान के साथ जीये।

हा, अति परिश्रम का उनके शरीर पर प्रभाव अवश्य पडता था। जव वे थक जाते थे तो उन्हे प्रतिकूल वात वर्दाश्त नही होती थी और गुस्सा आने पर वे आपे से वाहर हो जाते थे। वाद मे उनका स्वभाव चिडचिडा हो गया था। वच्चो को वहुत प्यार करते थे। पर उनकी भी गुस्से मे पिटाई हो जाती थी। उन्हे इतना भी भान नही था कि वे किस

चीज से मार रहे है और इसका क्या परिणाम हो सकता है ? बचपन की मेरी पिटाई की बात तो छोडिये, जबकि २९ वर्ष की उम्र मे भी गुस्से मे एकबार मेरी पिटाई हुई थी।

बोलने मे स्पष्टवक्ता और निडर थे। कभी किसी से उन्होने अपेक्षा नही रखी। पराई आस करना तो वे जानते ही नही थे। उनमे आत्मविश्वास और साहस की मात्रा कुछ अधिक ही थी। संकट मे उन्हे कभी घबराहट नही हुई। बडे से बडे आदमी के सामने भी वे नही झुके।

□□
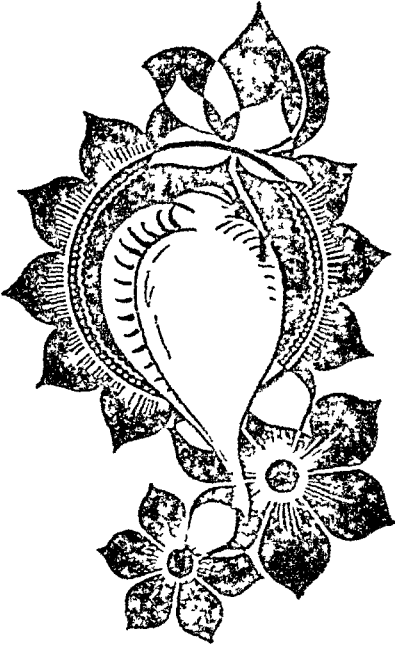
४

पिताजी का धार्मिक तथा सामाजिक जीवन

व्यक्त्त्वि के अनेक पहलू होते है, जो विभिन्न कोणो से देखे जा सकते है। पिताजी ने परिश्रम से अपना आर्थिक संकट दूर किया, लेकिन उनके संपूर्ण व्यक्त्त्वि को समझने के लिए उनके सामाजिक और धार्मिक जीवन को समझना भी जरूरी है, क्योकि मेरे व्यक्त्त्वि से उसका गहरा सम्वन्ध है।

वचपन से ही उनकी जैनधर्म पर निष्ठा थी और श्वेताम्वर मूर्ति-पूजक मान्यता रखते थे। अपनी मान्यताओ के प्रति निष्ठा रखते हुए भी अन्य सम्प्रदायो व धर्मो के प्रति उनमे उदार भाव था। जैन तीर्थ-करो के अतिरिक्त दूसरे सम्प्रदायो व धर्मों के उपास्य देवो के प्रति उनमे अत्यन्त उदारता थी। वे दूसरे सम्प्रदायो के गुरुओ के प्रति आदर रखते, उनके प्रवचन सुनते और उनका योग्य आदरातिथ्य करते। अपनी मान्य-ताओ का दृढतापूर्वक पालन करते हुए भी दूसरे धर्मों के प्रति उनकी उदारता का मुझ पर भी असर हुआ। वे व्राह्मणो और अन्य धर्म के साधुओ को तो दान-दक्षिणा देते ही थे पर जव मुसलमानो की भी

मस्जिद वनी तो उसमे भी सहायता की थी। उन्होने कभी किसी अन्य मतावलम्बी के विरुद्ध अनादर के शब्द नही कहे।

जैसे उनमे अपनी धार्मिक मान्यताओ और विधि-विधानो के प्रति दृढ आस्था थी वैसे ही उनकी दैनिक चर्या भी कुछ स्थिर और पक्की वन गई थी। प्यासे को पानी पिलाना, भूखो को खिलाना, अतिथि-सत्कार, दुखियो की सहायता करना, पक्षियो को चुगाना, ब्राह्मणो या सन्तो को दान-दक्षिणा, पडोसी की मदद करना आदि कामो को वे पुण्य मानते थे और ये सब काम उत्साहपूर्वक करते थे। वे अपनी कमाई का निश्चित हिस्सा अपने माने हुए धार्मिक कामो मे लगाते थे। तीर्थयात्रा भी करते थे। शत्रुञ्जय, गिरनार, केशरियाजी आदि तीर्थों की कई वार यात्राएँ सपरिवार की थी। कई यात्राओ मे मैं भी साथ था।

जव घर पर होते तो जल्दी उठकर जंगल मे निपटने जाते, फिर सामायिक कर दुकान का काम ६॥ वजे तक करते और तव स्नान करके पूजा करते। फिर भोजन। धार्मिक त्यौहारो पर उपवास-स्वाध्याय भी होता था। यद्यपि उनकी शालेय शिक्षा अधिक नहीं हुई थी पर धार्मिक साहित्य के वाचन से उन्होने अपना धार्मिक व सामान्य ज्ञान वढा लिया था। गाव मे जैनियो के २०-२५ घर थे, पर धार्मिक अखवार तो पिता जी ही मंगवाते थे और धार्मिक ग्रंथो का भी खासा संग्रह कर रखा था। दोपहर मे यदि समय मिलता तो वे सामायिक करके धार्मिक ग्रंथो का स्वाध्याय करते। पर्युषण-पर्व मे कल्पसूत्र का वाचन, चैत्र तथा आश्विन मास मे श्रीपाल चरित्र तथा अन्य धार्मिक ग्रथो का पारायण करते और उपवासादि अन्य धार्मिक कृत्यो मे लगे रहते। रात्रि भोजन और पानी पीना तो उन्होने युवावस्था मे ही त्याग दिया था, इसका उन्होने अन्त तक कडाई के साथ पालन किया। यहा तक कि वीमारी मे भी रात को दवा भी नही ली। आलू, प्याज, लहसुन तो घर मे आ ही नही सकता था। सब्जिया तथा फलो मे भी वहुत कम चीजो का सेवन करते। अधिकाश चीजो को तो उन्होने त्याग दिया। उस जमाने मे वे उस

प्रदेश मे धार्मिक विधि-विधान मे जानकार माने जाते रहे है। अखवार पढते थे तथा व्यापार एवं धार्मिक यात्रा के निमित्त प्रवास करते थे। अतएव वाह्य जगत की घटनाओ से परिचित होने से गावो की पिछडी जनता मे कुछ प्रगतिशील भी समझे जाते थे। वे मृत्यु-भोज मे शरीक नही होते थे। कई पुरानी निरर्थक रूढियो को उन्होने त्याग रखा था। फिर भी पुराने सस्कारो का उन पर प्रभाव नही था, यह नही कहा जा सकता। वे अपने खानदानी गौरव का संरक्षण करना अपना परम कर्तव्य मानते थे। पूर्वजो से पाई हुई सेठ की पदवी के रक्षण का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। हमारे गाव मे और भी कई अधिक धनी परिवार थे, पर सेठजी कहलाते थे पिताजी ही। पत्र पर भी यदि उन्हे सेठजी न लिखा जाय तो यह उनसे वर्दाश्त नही होता था। गाव मे अपनी जाति का या अन्य कोई भी प्रतिष्ठित व्यक्ति आ जाता तो उसके स्वागत और खिलाने-पिलाने मे उनका उत्साह अत्यधिक रहता था। उन्होने यह कभी नही सोचा कि रात मे वेर-अवेर मेहमानो को खिलाने पिलाने मे घर वालो को कितनी असुविधा होती है। और न मेरी मा और मा की मृत्यु के वाद दूसरे विवाह की विमाता ने "जिन्हे मैं काकीजी कहा करता था" कभी भी मेहमानो को वक्त-बेवक्त खिलाने-पिलाने मे तकलीफ नही मानी, वल्कि अतिथि-सत्कार मे पिताजी का पूरा-पूरा साथ दिया। मेहमानो का आदरातिथ्य करना मानो उनका कर्तव्य ही नही, पर खुशी का नाम था। उन दिनो आज जितनी सुविधाएँ न थी और न नोकर चाकरो की भरमार। सव काम उन्हे अपने हाथ से ही करना पडता था।

घर मे सदा खाने-पीने की चीजो की प्रचुरता रहती थी। दूध-घी की कमी नही रहती थी। घर मे गाय-भैस थी। घी का खर्च अधिक होने से वाहर से भी खरीदा जाता था। तेल का उपयोग तो छोंक तथा तलने तक मे किये जाने की याद नही है। हा, मेरे वडे होने पर तलने व कुछ सब्जियो के छोक मे तेल का उपयोग होने लगा था। एक वार

हमारे यहा घर के काम के लिए नौकर रखा गया, जो रातदिन घर पर रहता और भोजन भी हमारे यहा ही करता। उसने दो रोज वाद आकर कहा—"मैं आपके यहा नौकरी नही कर सकता।"

पूछा गया—"क्यो भाई, क्या तकलीफ है ? वताओ तो सही ?"

वह वोला—"आपके यहा तो मैं भूखा रहता हूँ ?"

पूछा गया—"क्यो, क्या वात है जो भूखे रहते हो ?"

मेरी काकी को भी वुलाकर पूछा गया कि क्या इसे पूरा और अच्छा भोजन नही दिया जाता ? उन्हे यह सुनकर वडा आश्चर्य हुआ। वे वोली—"हम लोग जो खाते है वही चीजे इसे परोसी जाती है और खाने के लिए आग्रह भी किया जाता है। फिर भी यह कैसे कहता है कि मैं भूखा रह जाता हूँ ?"

नौकर से पूछा गया—"क्या तुम्हे पूरा नही परोसा जाता या और लेने के लिए नही कहा जाता ?"

वह वोला—"मैंने कव कहा कि खाना पूरा परोसा नही जाता या और लेने के लिए नहीं कहा जाता, पर खाने मे सब्जियो तक मे घी रहता है। मैं तो घी की छोक वाली सब्जिया खा ही नही सकता, सर्दी मे घी जम जाता है। हाथ मे चिपक जाता है। और तो और रोटियो मे भी इतना घी चुपडा जाता है कि जिन्हे खाना मेरे लिए मुश्किल है।"

तवसे उसके लिए तेल के छोक की सब्जी और रूखी ज्वार की रोटियां वनने लगी। खानदेश मे स्थानिक लोग विना तेल-घी लगाये ज्वार की रोटी सूखी ही खाते है।

यद्यपि पिताजी चुनी हुई सब्जियां या फल ही खाते थे, पर घी खाने के वड़े शौकीन थे। कहा करते थे कि—"यदि भोजन मे दिन भर मे पाव भर घी भी नही खाया तो क्या खाया ?"

साग मे भी घी यदि ऊपर न तैरे तो वह साग उन्हे अच्छा नही लगता था। रोटी भी घी से तर होनी चाहिए। अक्सर वे मोटी रोटी वनवाकर या पराठा वनवाकर उसमे खासा घी लेते थे। उन्हे नमकीन

चीज़ पसन्द थी। घर पर ही ये चीज बनती थी। पकौडी, सेव आदि घी मे तले जाते। उनकी मान्यता थी कि तेल और गुड शरीर मे गर्मी बढाते है। उनकी प्रकृति उष्ण थी, इसलिए गर्मी का मौसम उन्हे बर्दाश्त नही होता था। गर्मी के दिनो मे घर मे बादाम की पिसी हुई ठंडाई जरूरी बनती थी। दूध-घी की ही तरह घर मे बादाम, पिस्ते, किशमिश आदि मेवे भी हमेशा काफी मात्रा मे रहते थे। उन दिनो सभी चीज सस्ती भी बहुत थी। किशमिश चार आना सेर और बादाम बारह आने सेर। घी भी उन दिनो दस-बारह आने सेर था।

व्यक्तिगत या अतिथियो के खानपान मे उनमे ऐसी उदारता थी जो आज के स्वसुखलक्षी जमाने मे फिजूलखर्ची समझी जा सकती है। घर खर्च की सबसे बडी मद भोजन खर्च ही थी। यदि दूसरा खर्च पिताजी करते तो स्वधर्मी या जाति बंधुओ की सेवा का। वह जमाना ऐसा था कि कोई भी परिश्रम करे तो सुख से खा सके इतना, कमा सकता था। किसी की सेवा करनी हो तो सिवा खिलाने पिलाने के दूसरी कोई सेवा उपलब्ध नही थी। इसलिए खुशी हो या गमी, उन्हे ठाठ से खिलाने मे उत्साह रहता। हमारे यहा पिताजी के हाथो मेरी और मेरी एक बहिन की शादी हुई, जिसमे उन्होने विशाल संख्या मे जाति भाइयो को ही नही, अपितु गाव के सब छोटे बडे लोगो को दिल खोलकर खिलाया था। इतना ही नही, पर उस दिन रास्ते से गुजरने वाले सभी प्रवासियो को भी आग्रहपूर्वक बुलाकर खिलाया गया था। भंगी घर से जूँठन तो ले जाते पर भोजन तभी करते जब उन्हे सोने का झाडू या टोकरी प्रतीक रूप मे बनाकर दी जाती। पिताजी को तो यह धुन थी कि कोई भी उनके यहा आकर भोजन किये बिना न रहे। इसलिए भंगी के लिए प्रतीक रूप मे सोने की झाडू और टोकरी बनाकर दी गयी और उसे घर पर बुलाकर भोजन करवाया। इस तरह खिलाने मे सेवा की भावना अधिक थी या कीर्ति की लालसा इसका विश्लेषण करना आसान नही है, क्योकि ये दोनो ही भाव उनमे कम अधिक मात्रा मे थे।

संक्रामक बीमारियो मे मुफ्त दवा देना, गर्मी के दिनो मे प्याऊ लगवाना, दीन-दुखियो की मदद करना, आदि जनहित के काम भी वे करते थे। ब्राह्मणो को भी दान देना अधर्म नही मानते थे। संक्रांति, एकादशी के विशिष्ट पर्वो पर बराबर ध्यान दिया जाता था। पर इन कामो से आगे उनकी सेवा की दृष्टि व्यापक नही बन सकी थी। जिन कामो को वे परोपकार समझते थे ऐसे सब कामो मे एव अपने परिवार पर उदारतापूर्वक खर्च करते रहने तथा वसूली करने मे सख्ती न बरतने के कारण वे अधिक धन नही जोड पाये। फिर भी उन्होने अन्त तक अपनी शान निभाई और गाव मे सेठजी कहलाते रहे। उनका परिश्रम पर अटूट विश्वास था। उनकी परिश्रमशीलता की छूत मुझे लग गई हो तो आश्चर्य नही है। उनके व्यक्तित्व का अल्प ही क्यो न हो प्रभाव मुझ पर पडा ही है। मुझे छोटे से छोटा, परिश्रम का काम करने मे संकोच नही होता। इतना ही नही, पर हाथ मे कुछ परिश्रम का काम न हो तो बैचेनी होती है। परिश्रम मे आनन्द तो आता ही है साथ ही शारीरिक परिश्रम स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होता है।

□ □

५

मां
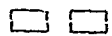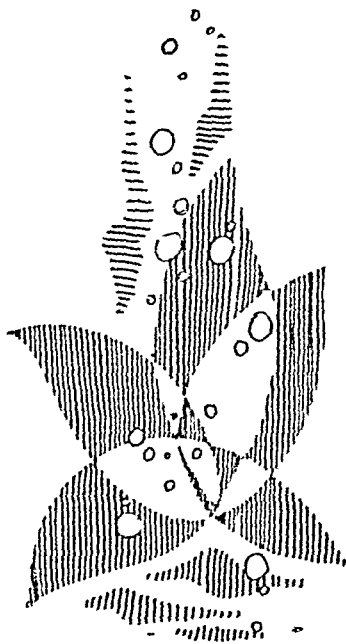
मेरी मा की मृत्यु सन् १९१९ मे इंफ्लुएंजा से हो गयी। उस समय मेरी उम्र सोलह साल की थी। मुझे मा से बेहद प्यार मिला था। यों तो मा की ममता सभी पर होती है, परन्तु मेरी मा की ममता मुझ पर कुछ अधिक ही थी। उनकी सात संतान की बचपन मे ही मृत्यु हो गई थी। मै अकेला ही बच पाया था। इसलिए मा का मुझ पर विशेष प्यार था। यो प्रेम तो पिताजी का भी कम नही था पर उनका स्वभाव कुछ तेज था। इसलिए मैं उनसे डरता था। उनके प्रेम मे कुछ ऐसा अनुशासन था कि जिससे लाड-प्यार मे मेरे विगडने की कतई गुंजाइश नही थी। पर मा का स्नेह तो रसगुल्ले का-सा था सब ओर से मिठास ही मिठास।

अधिक लाड-प्यार के बावजूद यद्यपि मुझमे विकृतिया नही आने पायी, परन्तु मां की ममता के कारण मैं उच्च-शिक्षा से वंचित रह गया। पढने मे मै तेज था और अपने गाव के स्कूल की शिक्षा तो मैंने दस वर्ष की उम्र मे ही पूरी कर ली थी। आगे की पढाई के लिए स्कालर-शिप भी मिली, पर मा अपने इकलौते वेटे को अपने से दूर भेजने को

राजी नही हुई। मै अधिक पढाई के लिए एक-दो वार छिपकर भी घर से चला गया, पर मुझे वापिस लाया गया और पढाई के लिए तीव्र इच्छा रहने के वावजूद स्कूल-कालेज की उच्च शिक्षा न पा सका। मेरी स्कूल की शिक्षा मराठी की चौथी कक्षा तक ही सीमित रही।

वहुत छोटी उम्र मे ही मेरे भाइयो की मृत्यु हो गई थी। वे छाती मे कफ भर जाने से चल वसे थे। शरीर के सभी स्वस्थ और सुन्दर थे पर कुछ दिन वीमार रह-रह कर ही चल वसे। उन दिन देहातो मे वीमारियो के इलाज का कोई प्रवन्ध नही था। मेरा एक भाई तीन-साढे तीन साल का होकर गया। वह अत्यन्त सुन्दर और सौम्य स्वभाव का था। मैं तो वचपन मे कुछ उद्दण्ड था और हठ भी ठान वैठता था पर वह उतनी छोटी उम्र मे ही वहुत समझदार था। उसकी समझदारी की एक घटना स्मृतिपटल पर अंकित है।

हम जहा रहते थे, वही पर मेरी माता की दोनी फ ंफिया 'बुआजी' रहती थी। एकवार हम दोनो भाई खेलते हुये मा की बुआजी के यहा पहुँचे। उन्होने हमे दूध पीने को दिया। हमारे घर मे शक्कर डालकर पीने का -रिवाज था। हमारी नानी (मा की फ़फी) ने दूध विना शक्कर का ही दिया। तव मैंने कहा कि—नानीजी, दूध मे शक्कर तो नही है। तव वे वोली—"वेटा, शक्कर गाय के पेट मे होती है, इसलिए ऊपर से लेने की जरुरत नही है।" हम दोनो भाई दूध पीकर घर आ गये। जव दूध पीने का समय हुआ और मा दूध मे शक्कर मिलाने लगी तो भाई "जिसका नाम मोतीचन्द था" वोला—"मा, दूध मे शक्कर मत मिलाओ, शक्कर तो गाय-भेंस के पेट मे होती है।" यह सुनकर मां ने पूछा—"तुम्हे कैसे मालूम ?" वह वोला—"नानीजी ने कहा है, और अव हम विना शक्कर का ही दूध पिया करेंगे।"

पिताजी के स्वभाव से मेरी मा का स्वभाव थोडा भिन्न था। वे जरुरत से ज्यादा उदार थे तो मा मे मितव्ययिता और संग्रह-वृत्ति थी। वे अत्यन्त परिश्रमी थी। घर का कामकाज वडी ही किफायत से चलाती

थी। पिताजी को मां के रहते कभी भी घर के वारे मे नही सोचना पडा। मेहमानो की अच्छी आवभगत करना व खिलाना पिलाना, परिवार मे लेन-देन आदि का सभी काम मा भली प्रकार से निपटा देती थी। मा की मृत्यु के समय पिताजी की उम्र ४५ साल की। लेकिन उस उम्र तक मा के कारण ऐसी स्थिति आ गयी थी कि जिसे अच्छी आर्थिक स्थिति कहा जा सकता है। मेरी मा मरी तब उसके पास से करीव ३००-४०० गिन्नियां निकली थी, जो उसने घर खर्च मे से वचा कर जमा की थी।

मातृ पक्ष के लोग कुलीन थे। पर नानीजी की अल्पायु मे मृत्यु होने के कारण गरीवी आ गई थी। मेरी मा वडी थी और मामा छोटे। मेरी नानी अत्यन्त कुशल, परिश्रमी एव व्यवहारकुशल थी। उसने अपने वच्चो का पालन-पोषण देहात मे छोटी सी दुकान करके किया था। नानी की परिश्रमशीलता मा मे भी आ गयी थी। आर्थिक-स्थिति सुधरने पर भी घर का काम भी मा खुद ही करती रही। सिर्फ कुए से पानी लाना और कपडे धोने का काम नौकरो से कराया जाता था। घर मे चाहे जो काम वह कर सकती थी, पर पर्दा होने से घर के वाहर काम के लिये नही जा सकती थी। पिताजी ने पर्दे को घर की शान मान रखा था।

पिताजी गौर-वर्ण और सुन्दर थे। माताजी का रंग गेहुआ था और दीखने मे शरीर से कुछ स्थूल थी, लेकिन कामकाज मे वहुत फुर्तीली थी। किसी की सहायता के विना ही १५-२० लोगो की रसोई वह घण्टे-डेढ घण्टे मे ही वना लेती थी। पिताजी के कारण सफाई का भी वहुत खयाल रखना पडता था। वैसे राजस्थान के जैनियो और उनमे भी विशेष रूप से स्थानकवासियो मे अधिक पानी खर्च करना और स्नान करना पाप-कार्य समझा जाता था। मा स्थानकवासी परिवार से आई थी पर पिताजी श्वेताम्वर होने से नहाने धोने पर वहुत कटाक्ष करते रहते थे। विना स्नान के रसोई घर मे प्रवेश निषिद्ध था, इसलिए वह

भी सामायिक पूजा आदि करती थी। पिताजी पहले कपडे व किराने का काम करते थे। कुछ दिनो के वाद उसे वंद कर दिया और कपडे का काम ही करने लग गये। पिताजी की अनुपस्थिति मे माताजी जरूरत-मंद ग्राहको को कपडे पर आक देखकर माल बेच देती थी।

स्कूल मे तो मा की पढाई-लिखाई नही हो पाई थी, पर पिताजी ने लिखना पढना सिखा दिया था और वह धार्मिक पुस्तके पढ लिया करती थी। पिताजी जव घर पर नही होते थे तो कामकाज निपटा कर सामायिक करने पडोसियो के घर जाती या घर पर ही सामायिक कर लेती। गर्मी के दिनो मे पापड, वडी, आचार, मसाले आदि वनाती। जव हमारे यहा पापड वनते तो गाव की औरते आ जाती और गाव मे किसी के यहा पापड वनते तो मा उनके यहा पापड़ वेलने जाती थी। जव स्कूल की छुट्टी होती तो मै भी मा के साथ जाता और वहा लड़के-लडकियो के साथ खेलता रहता। गाव मे प्रेम और सहयोग का वातावरण था। लोग एक-दूसरे के काम आने को अच्छा समझते और अपना कर्तव्य मानकर एक-दूसरे के काम निभाते थे। पिताजी के साथ जिनका झगड़ा रहता था, उनके परिवारो के साथ भी मेरी मा अच्छे सम्वन्ध वनाये रखती थी। उनका स्वभाव वहुत ही मिलनसार था।

पिताजी को खाने-खिलाने का शौक था। मेहमानो के आगमन पर या विशिष्ट आयोजनो मे मिष्ठान्न वनते। फिर भी मा घर का खर्च वड़ी ही किफायत से चला लेती थी। कोई भी चीज विगडने न पा वे इसका वहुत खयाल रखती थी, और वस्तुओ को व्यर्थ भी नही जाने देती थी। वची हुई चीजो को अपनी कुशलता से स्वादिष्ट वनाकर उपयोग मे लाती। दाल, साग, चावल, खिचडी आदि वचती तो उसमे गेहूं चने का आटा व मसाला डालकर ऐसे पराठे वना लेती जो वड़े स्वादिष्ट लगते। चावल दाल से चूरी निकालती तो उसे साफ कर खाने के उपयोग का वना लेती। दाल के छिलके, भाजी के डंठल आदि का जानवरो को खिलाने मे उपयोग कर लेती। कपड़े फटते तो उन्हे सीकर वह काम के

वना लेती । आटा घर मे ही पीसती ओर उसका चोकर भी काम मे लाती । मतलव यह कि किसी भी चीज को व्यर्थ नही जाने देती । घर मे सव प्रकार की किफायत करके भी मेहमानो या आने-जानेवालो की आवभगत मे किसी प्रकार की कमी नही आने देती । उनका जीवन अपने लिये नही, वल्कि औरो के लिये ही सिरजा गया हो ऐसा लगता था । उनका अपना स्वयं का खर्च वहुत कम था परन्तु दूसरो के लिये वे दिल खोलकर खर्च करती ।

मा का जीवन आज के जीवन से कुछ भिन्न था । आज तो दूसरो को खिलाने पिलाने मे फिजूलखर्ची समभी जाती है और अपने ऐशो-आराम के लिये खर्च करना या आमोद-प्रमोद अथवा साज-शृंगार की चीजो पर खर्च कर लेना ही आवश्यक माना जाता है । मेरी मा ने दूसरो को पूरी सुविधा देकर भी अपने खर्च मे वचत करके काफी रकम इकट्ठी कर ली थी और लोगो के जेवर गिरवी रखकर उन्हे ऋण देना शुरु कर दिया था । मा की मृत्यु के समय यह रकम २०-२५ हजार के करीव थी । इसके अतिरिक्त कपडे-लत्ते, जेवर, घरेलू सामान का भी मां ने इतना व्यवस्थित संग्रह कर लिया था कि कई चीजो का, मा की मृत्यु के वाद मेरी विमाता ने भी उपयोग किया और उनकी मृत्यु के उपरान्त वे चीजे वची हमारे काम आई । पिताजी कहा करते थे—"जो काम मेरी मा ने किया वह तुम्हारी मा नही कर पाई और तुम्हारी मा ने किया वह काकी नही कर पावेगी । पर तुम्हारी काकी जितना कर सकी तुम्हारी पत्नी से नही होगा और जो तुम्हारी पत्नी कर सकेगी उतना छोटी वहू से नही हो पायेगा ।" इसे पिताजी की भविष्य-वाणी तो नही कह सकता, पर यह कहा जा सकता है कि जैसे-जैसे श्रमनिष्ठा कम होती जायेगी, वैसे-वैसे उसका प्रभाव पारिवारिक जीवन पर भी पड़ता जायेगा, इसका पिताजी ने सही अनुमान लगा लिया था ।

मा की ममता के कारण मैं घर छोडकर पढने के लिये वाहर न जा सका, और व्यापार मे लग गया। चौदह साल की उम्र मे मा की प्रेरणा से ही पिताजी ने दुकान का काम-काज मेरे सुपुर्द कर दुकान भी मेरे ही नाम कर दी थी। दुकान का नाम 'प्रतापमल धनराज' के स्थान पर 'प्रतापमल रिपभदास' कर दिया गया। दुकान को अपनी समझकर मैं उसमे मन लगाकर काम करने लगा और प्रथम महायुद्ध के कारण भावो मे वृद्धि होने से कमाई अच्छी होने लगी। सन् १६१७ से सन् १६१६ तक का काल हमारे लिए अत्यन्त उन्नति का था। आर्थिक उन्नति के साथ-साथ सभी तरह के सुख और संतोष मे वृद्धि हुई।

लेकिन इंफ्लुएंजा ने हमारे सुखी परिवार मे दुख की छाया फैला दी। यो इस वीमारी से घर के सभी लोग बीमार हुए थे, मुझ पर भी आक्रमण हुआ था, पर शायद मा की यह प्रार्थना यमराज ने सुन ली हो कि—"मेरा वेटा वच जाय और भगवान उसके वदले मे मुझे वुला ले।" मा हमे छोडकर सदा के लिये चली गई। क्योकि उसके वाद अधिक अधिक कमाई करके भी हम वैसा कुशलतापूर्वक संग्रह नही कर पाये। मितव्ययता, व्यवहारकुशलता, व्यवस्थितपन और सग्रहवृत्ति मे मां बेजोड थी।

इंफ्लुएंजा ने हमारे घर पर ही आफत ढाई हो ऐसी वात नही थी बल्कि भारत भर मे खासकर देहातो मे जो विनाशलीला सरजी थी उसकी आज कल्पना भी नही की जा सकती। उन दिनो हैजा, इफ्लुएजा प्लेग जैसी संक्रामक वीमारिया देहातो मे पूरे परिवार और गाव के गाव का विनाश कर देती थी। किसी किसी देहात मे तो किसी को भी नही बख्शा था। हमारा गाव वहुत बड़ा नही था। कोई हजार-वारहसौ आदमियो की ही वस्ती थी। इंफ्लुएंजा के दिनो मे एक को जलाकर आते ही दूसरे को ले जाने की तैयारी करनी पडती थी। दिन मे २०-२५ लोगो की मृत्यु की भयंकर स्थिति आज भी याद आती है तो रौंगटे खडे हो जाते है, क्योकि हमारा घर गाव के वाहर ऐसी जगह पर था

जिधर से जलाने या गाड़ने के लिये मृत शरीर ले जाये जाते थे। उन दिनो देहातो मे आज की तरह डाक्टरो की सुविधा नही थी। पेटेण्ट मेडिसिन कही कुछ मिलती भी तो उनका उपयोग लोग ठीक से जानते नही थे। पथ्यापथ्य का भी वहुत खयाल नही रखा जाता था। आज भी याद पडता है कि वुखार आने पर गाव के लोग सलाह देते दीखते थे कि अच्छा घी डालकर हलुआ खिलाया जाय, जिससे शक्ति वढेगी और वुखार भाग जायेगा। वडे-वूढे यही कहते सुनाई देते थे कि दीपक मे तेल डालने से जैसे ज्योति आ जाती है वैसे ही पेट मे स्निग्ध चीजो के पहुंचने पर शक्ति आ जाती है।

वाल-मृत्यु का प्रमाण भी आज से वहुत अधिक था। आज इस विपय का ज्ञान भी वढा है और उपाय भी, जिससे संक्रामक वीमारियो की पहले जैसी विनाशलीला देखने मे नही आती। प्लेग तो लगभग सुनने मे ही नही आती। ५० वरस पहले २-३ साल मे एक वार तो प्लेग का आक्रमण होता ही था। वारिस के दिनो मे हैजा हर साल आता था। मेरी मा को हैजा हुआ था, पर वे उससे वच गई थी। लेकिन जव फ्लू हुआ तो वह उन्हे ३६ वर्ष की उम्र मे ही ले गया।

भूतकाल की श्रेष्ठता के कोई कितने ही गीत गाए लेकिन स्वास्थ्य के विपय मे उस समय आज से वहुत अधिक अज्ञान था। और मृत्यु-संख्या अधिक थी। हा, उन दिनो परिश्रमशील लोग थे और रहन-सहन भी सादगीपूर्ण था। भोजन भी सत्वयुक्त होता था इसलिए आज से उस समय के लोग अधिक कष्टसहिष्णु और संतोषी थे।

□ □

६
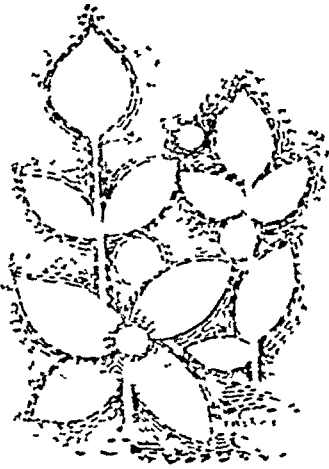
बचपन में देशसेवा के हास्यास्पद प्रयत्न

हमारा देश अंग्रेजो की गुलामी से मुक्त हो और स्वराज्य की स्थापना हो, यह भावना मुझमे कब और कैसे निर्माण हुई, इसकी ठीक-ठीक याद नही है। बचपन मे निरी देशभक्ति की भावना ही नही थी, देश के लिए कुछ करने की तीव्र आकाक्षा भी थी। श्री हरिनारायण आप्टे के मराठी उपन्यासो ने या इसी प्रकार के साहित्य ने देश-प्रेम और स्वराज्य-प्राप्ति की इच्छा जगायी और शिवाजी महाराज की तरह साथी जुटाकर अंग्रेजो को देश से बाहर करने की योजना बनाने लगा था। हमारे गाव से ३-४ मील की दूरी पर छोटी-छोटी पहाडिया थी। उनमे साथियो सहित स्वराज्य-प्राप्ति की प्रारम्भिक तैयारिया करने का विचार किया। पास की नदी के किनारे जगल मे जाकर तीर कमान चलाने का अभ्यास करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए व्यायाम आवश्यक था। शरीर सुदृढ बनाने के लिए कौनसा व्यायाम किया जाय इसकी जानकारी गाव मे किसी को थी ही नही, बल्कि कसरत करना गुण्डो का काम समझा जाता था, फिर भी मैं निराश नही हुआ। मैंने किताबे मंगवाकर कसरते

सीखने का प्रयत्न किया और ५-७ साथियो को लेकर नदी के किनारे गाव से दूर जाकर कसरत करने लगा। यो खेल-कूद मे तो साथी काफी संख्या मे आते थे। पर नियमित कसरत करने आनेवालो की सख्या अधिक नही थी। धीमे-धीमे यह सख्या भी कुल ३ या ४ रह गई। तब इतने कम साथियो के सहयोग से अग्रेजो को देश से बाहर निकालना, आधुनिक शस्त्रो के मुकाबले मे तीर-कमान से मोर्चा लेना सम्भव नही लगा। इसलिए शस्त्रो के द्वारा लडकर स्वराज्य लेने की आशा नही रही। जब जर्मन जैसे बलशाली और आधुनिक शस्त्रो से सम्पन्न शत्रु को अग्रेजो के आगे हार खानी पडी, तब हमारा हिम्मत-पस्त होना स्वाभाविक ही था। शस्त्रो के द्वारा अग्रेजो को देश से निकालने का अपना अभियान समाप्त करने मे हमने अकलमदी समझी और दूसरे उपाय सोचने लगे। हमारा यह अभियान अग्रेजो को देश से बाहर निकालने मे भले ही समर्थ न हुआ, तो भी व्यायाम शरीर को सुदृढ बनाने मे समर्थ हुआ। इससे देश-सेवा की भावना को कुछ बढावा ही मिला। इस कार्य मे अन्त तक साथ देने वाला मेरा साथी सारस्वत ब्राह्मण रूपकिशोर था, जो परिवार सहित उत्तरप्रदेश से आकर बसा था।

जर्मनो के साथ युद्ध मे अग्रेज बनियागिरी से जीते। यह व्यापारी कौम है और व्यापार द्वारा अपने देश को समृद्ध बना रही है। यदि हम उनके व्यापार को हाथ मे ले ले तो निसन्देह देश का भला हो सकता है और अग्रेजो के हाथ से व्यापार निकल जाने से वे यहा रहेगे ही नही, इसलिए मै स्वदेशी चीजे बनाने और उनके प्रचार के अभियान मे लगा। कौन सी चीजे विदेश से आती है और उनमे से कौन सी हम यहा तैयार कर सकते है, इसकी खोज करने लगा। उन दिनो रग के भाव बहुत अधिक बढ गये थे। रंग परदेश से आता था, लडाई के कारण आना बन्द हो गया। सोचा, रग यहा तैयार किया जाय तो लाभप्रद

होगा । यह प्रयोग पिताजी की उपस्थिति में तो सम्भव नही था । इस लिए पिताजी की अनुपस्थिति मे रंग तैयार करने का प्रयोग किया । पत्तियो से हरा रंग तैयार करना आसान मालूम दिया । इसलिए एक वोरे मे ढेर सी पत्तिया लाकर एक वडे बर्तन मे उवालकर रंग तैयार करने में ४-५ घण्टे खर्च किये । काफी ईधन जलाकर भी जब रंग वनने का लक्षण नही दीखा तो देशी रंग तैयार करने का उत्साह ठण्डा पड गया । दूसरी वार पलाश के पत्तो से लाल रंग तैयार करने का प्रयत्न किया, पर वह भी असफल रहा । हिम्मत न हारकर दूसरी चीजे वनाने की वात सोचने पर सूझा कि पैंसिल बनाई जाय । नदी मे घूमते समय पत्थर मे एक ऐसा नरम हिस्सा दिखाई पडा कि जिससे लिखा जा सकता था । कुरेद-कुरेद कर वह काफी मात्रा मे एकत्र कर लिया । अव हमारे सामने सवाल यह आया कि इससे पैंसिल कैसे वनायी जाय ? सोच विचार कर तय किया कि इसे पीस कर गोद भिगो कर सलाइया बनायी जायं । इसके लिए काफी प्रयत्न किया । सलाइया वनाकर सुखाई गई । पर वह पैंसिल का काम देने मे असमर्थ रही । इस प्रकार अग्रेजो के व्यापार पर कब्जा जमाने की हमारी सम्पूर्ण योजना ठप्प हो गयी । जैसे शक्ति द्वारा अंग्रेजो को देश से निकालने के हमारे प्रयत्न विफल हुए वैसे ही स्वदेशी वस्तुएं वनाकर उनके व्यापार पर आधिपत्य जमाने के प्रयत्न भी असफल ही रहे । स्वदेशी की भावना साकार न हो सकी ।

इन प्रयत्नो मे असफल होने पर भी मै निराश नही हुआ । सोचता रहा कि कौन से उपाय किये जाय, कि अग्रेजो से हमे अपना स्वराज्य मिल जाय । मैं जव गाववालो से वाते करता तो वे हंसकर कहते कि "यह पागलपन है ।" अंग्रेजो को निकाल कर "स्वराज्य" प्राप्त करना कोई हंसी-खेल की वात नही है । अग्रेज वहादुर वडा शक्तिशाली है । देखते नही वे लोग कैसे लालबुन्द शरीर से मजवूत होते है । फिर उनके पास कितने शस्त्र और साधन है । इसी मे भलाई है कि उनका राज्य रहे और हम उनके राज मे सुख से रहे । वे लोग हमारे लिए कितना

करते है। अगर सरकार न हो तो चोर, डाकू हमे लूट लेंगे। देखो न, पास मे निजाम रियासत है। वहा अग्रेजी राज्य की सी सुरक्षा और सुविधा कहा है ?

मै लोगो को समझा सकू ऐसी मेरी शक्ति नही थी, पर लोगो की बात मानकर अपने विचारो मे परिवर्तन करना भी मेरे लिए संभव नही था, क्योकि स्कूली शिक्षा समाप्त होने पर मैं पढाई की भूख साहित्य द्वारा मिटाने लगा था और मुझे गुलामी अखरती थी। किसी भी तरह गुलामी दूर की जाय इस विचार का त्याग करना मेरे लिये कठिन था। देश की गुलामी दूर करने की भावना तीव्र होती गई। लोकमान्य तिलक के "केसरी" और गणेशकर विद्यार्थी जी के "प्रताप" से राष्ट्रसेवा की भावना को खूब वढावा मिला। और जव गाव या पास पडोस वालो से मुझे मार्गदर्शन की सम्भावना नही दिखाई दी तो मै लोकमान्य तिलक के पास पहुँचा। इस समय मेरी उम्र कोई १७ साल की होगी। भावना और उत्साह तो था, पर देशसेवा करने की योग्यता नही थी, क्योकि साहित्य पढकर ऊँचे-ऊँचे विचारो की उड़ाने भरने लगा था, परन्तु प्रत्यक्ष योग्यता नही थी। लोकमान्य महाराष्ट्र मे वहुत लोकप्रिय थे। उनकी देशभक्ति के प्रति देहातो मे भी आदर था। सोचा कि देशकार्य के लिये उन्ही का मार्गदर्शन उपयोगी होगा। मन मे यह भी कामना थी कि उनकी सेवा मे रहकर कुछ कार्य करूंगा।

सन् १९२० की वात है। वे भोजन करके टहल रहे थे और सरौते से सुपारी काट-काट कर खा रहे थे। मैंने आने का उद्देश्य वताया तो वे वोले—"तुम्हारी देश सेवा की भावना अच्छी है, पर किस तरह काम करने की सोची है ?"

"आपकी सेवा मे रहकर देश का कार्य करने का मेरा विचार है।"

"तुम्हारी पढाई कहा तक हुई है ?"

"मराठी की चार क्लास तक। आगे पढना तो चाहता था पर गाव मे इससे अधिक पढने की व्यवस्था नही थी। वाहर जाकर पढने की पिताजी ने इजाजत नही दी।"

"आजकल क्या करते हो ?"

"व्यापार"

"कैसा चलता है व्यापार ?"

"व्यापार तो अच्छा ही चलता है और कमाई भी अच्छी हो जाती है।"

"तव मेरी सलाह है कि तुम जो व्यापार कर रहे हो, उसे अच्छी तरह करके अधिक से अधिक आमदनी करो और जमनालाल वजाज की तरह देश का काम करनेवालो की सहायता करो। देशसेवा करने वालो की आर्थिक मदद करना भी देशसेवा ही है। जमनालाल जी कुछ दिनो पहले यहा आये थे तव मेरी अध्यक्षता मे उनका सम्मान किया गया था। वैसा सम्मान आज तक किसी भी व्यापारी का पूना मे नही हुआ। वे व्यापारियो के लिये आदर्श है। मुझे तो विश्वास है कि उनके द्वारा समाज की वहुत वडी सेवा होगी। इसलिए उनका आदर्श सम्मुख रखना ही तुम्हारे लिये श्रेयस्कर है। यदि तुम मेरे ही पास रहना चाहते हो तो मैं रख लूँगा पर पहले वारह साल तक तुमको पढाई करनी होगी, और फिर वारह साल तक अनुभव प्राप्त करना होगा। इससे तो जो कार्य तुम कर रहे हो उसे और अच्छी तरह से करके उससे जो कमाई हो उसे देशकार्य मे लगाओ, इस तरह तुमसे अभी से देशसेवा वन पडेगी। यह सेवाकार्य उतना ही महत्वपूर्ण है जितना मेरे पास रहकर चौवीस साल वाद कर सकोगे।"

उन्होने यह वात इतने प्रभावशाली ढग से कही कि मेरी अधिक वोलने की हिम्मत ही नही हो सकी। उनकी भव्य मुख मुद्रा और कही हुई वाते इस प्रकार हृदय पर अकित हो गई कि मैं उन्हे अव तक नही

भुला पाया हूँ। उस समय तो वहुत निराशा हुइ थी, लेकिन अव लगता है कि उनका कथन उचित ही था। मनुष्य को जो विशिष्ट अनुभव अपने परिवार, शक्ति और संस्कार से मिलते है उनका उचित विकास कर यदि उसका उपयोग देशसेवा मे किया जाय तो अधिक सेवा वन पड़ती है। इस तरह वचपन मे देशोद्धार और अंग्रेजो को वाहर निकालने के मेरे प्रयत्न असफल तो हुए, पर मन मे देशसेवा की लगन वनी रही। अन्त मे मैंने गृह-त्याग किया और महात्माजी के आन्दोलन और कार्यों मे लगा, लेकिन आज उन कल्पनाओ की स्मृति होती है तो अपनी अव्यावहारिक कल्पनाओ और योजनाओ पर हँसी आती है।

□ □

७
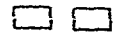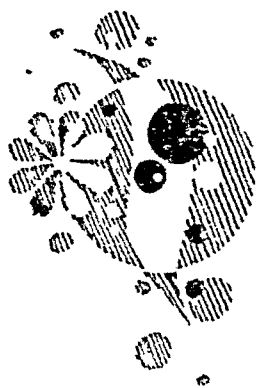
मैं भाऊ और भाऊसाहब कैसे बना ?

"भाऊ" कहते है, महाराष्ट्र मे भाई को। लेकिन भाऊ, भाऊ-साहब, काका या काका-साहब, नाना या नानासाहब, ये सभी किसी-किसी व्यक्ति के उपनाम बन जाते है और तब व्यक्ति उसी नाम से पुकारा जाने लगता है। प्रसिद्ध व्यक्ति का तो लोग मूल नाम भूल ही जाते है। चूंकि मैं भी महाराष्ट्र मे रहता हूं इसलिए मुझे भी यही उपनाम मिला और सो भी मिला, अपनी विमाता द्वारा, जिन्हे मैं "काकोजी" कहता था।

मा की मृत्यु के बाद मेरी नानीजी ने हमारा घर सम्भाल लिया था, इसलिए घर की सार-सम्भाल के बोझ से पिताजी बच गये थे। घर की व्यवस्था पहले की तरह ही चलने लगी। पिताजी के मन मे उस समय यह खयाल भी नही था कि वे दूसरा विवाह करेंगे और वे यही कहने लगे कि ४-५ साल मे ही वे मेरी शादी कर देंगे और घर सम्भालने के लिए बहू आ जाएगी। मेरी सगाई मा की मृत्यु के पूर्व ही हो गयी थी और मा की मृत्यु के समय मेरी पत्नी की उम्र ६ साल थी। लेकिन कारणवश पिताजी को अपने विवाह का निर्णय करना पडा और मा की मृत्यु के ३ साल बाद ही उनका दूसरा विवाह हो गया।

जैसे हर गाव मे होता है, हमारे गाव मे भी समाज दो दल मे बँटा था। दोनो दल एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करते रहते थे। गाव मे मेरी मा की फूफी की लडकी का विवाह था। पिताजी भोजन करने गये। भोजन के वाद अन्त मे पापड परोसे जाने लगे। पंक्ति मे विरोधी दल के सज्जन पापड परोस रहे थे। उन्होंने पिताजी को पापड़ नही परोसा और व्यंग्य किया कि पापड तो औरतोवालो के लिए है, रंडवो के लिए नही। स्वाभिमानी-वृत्ति के पिताजी को यह व्यंग्य चुभ गया। वे थाली से उठकर घर आ गये और विवाह का विचार उनके दिमाग मे घूमने लगा। उन्होंने निश्चय किया कि वे विवाह अवश्य करेंगे।

पिताजी की उम्र ४५ साल की थी। इस उम्र मे विवाह करने के लिए खर्च करना भी आवश्यक था। उस समय समाज मे वृद्ध-विवाह और कन्या-विक्रय चलता था परन्तु पिताजी के विचार इसके विरुद्ध थे। वे जिस विवाह मे कन्या-विक्रय होता वहा भोजन करने भी नही जाते थे। पर विरोधी पक्ष द्वारा किया गया व्यंग्य वे नही सह सके और जिस वात को वे ठीक नही समझते थे उसे भी करने के लिए तैयार हो गये। इस व्यंग्य को ससार-सुख की लालसा ने वढावा न दिया हो, यह कहना कठिन है।

यद्यपि मेरी उम्र अपरिपक्व थी पर साहित्य-वाचन ने मुझे प्रभावित कर रखा था। विचारो के क्षेत्र मे ऊँची-ऊँची कल्पनाओ की उडान भरने लगा था। मै अपने आपको समाज सुधारक मानता था। पिताजी यदि विवाह करना चाहे तो मुझे क्या करना चाहिए यह सोचने लगा। और मुझे लगा कि विवाह मे वाधक वनने की अपेक्षा भीष्म की तरह सहायक वनना ही मेरा कर्तव्य है। वचपन से कुछ साहसी व निर्लोभी तो था ही, इसलिए भीष्म की तरह सहायक वनने की ओर झुकाव रहा। वचपन से कुछ ऐसे ही संस्कार जमे थे। इसलिए चित्तौड के राजपुत्र भीम की तरह या भीष्म की तरह पिता के सुख के लिए त्याग करना ही मैने अपना कर्तव्य माना और पिताजी के लिए कन्या ढ़ूँढ़ने

की भी कोशिश की। दो-ढाई साल प्रयत्न चलता रहा। पर जब कन्या पक्ष का आदमी गाव मे आता तो दूसरे पक्ष वाले प्रतिकूल बाते कहकर काम नही बनने देते थे। अन्त मे राजस्थान मे जाकर पिताजी विवाह कर आये। इस काम मे भी गाव वालो ने बाधा पहुँचाने के लिये रुपया दुकान से न दूं ऐसा कहा, पर पितृ-भक्ति के आगे लोभ या स्वार्थ के वशीभूत होना मुझे ठीक नही जँचा। एकदिन पिताजी एक विमाता को लेकर आ ही पहुँचे।

भोली और भले स्वभाव की एक युवती ने माता का स्थान लिया। मैं उन्हे काकीजी कहने लगा और वे मुझे "भाऊ"। न मालूम उन्होने मुझे "भाऊ" शब्द से सम्बोधन पिताजी की प्रेरणा से किया या अन्त' प्रेरणा से, लेकिन वे "भाऊ" कहने लगी। मेरे प्रति भाई-सा स्नेह ही नही, परन्तु आदर का भाव भी रखने लगी। यो विवाह के पहले और बाद मे भी कई लोगो ने विमाताओ के व्यवहार के विषय मे कई प्रतिकूल बाते कही थी और विमाता के सौतेले लडके या लडकियो के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार की बाते मैने साहित्य मे भी काफी पढी थी। पर मुझे काकीजी की तरफ से किसी तरह के परायेपन का आभास नही मिला।

काकीजी के पिता और दो भाई राजस्थान से यही "हमारे गांव" रहने आ गये थे। काकीजी ने अपने पिताजी या भाई के प्रति पक्षपात रखकर मेरे साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार किया हो, ऐसा याद नही आता। हम पिता-पुत्र मे विचारो के मतभेद के कारण कभी मनमुटाव हुआ भी हो, लेकिन काकीजी ने मा का स्नेह ही दिया और भाई की तरह मानकर मेरे साथ उन्होने आत्मीयभाव ही रखा था। यहा तक कि जब भाई या पिताजी के खिलाफ मैने कोई बात कही तो उन्होने मेरा ही पक्ष लिया। उनमे लोभ, पक्षपात या स्वार्थवृत्ति नही थी। जहा तक याद पडता है, उन्होने किसी के साथ झगडा नही किया।

वे भोली और भले स्वभाव की थी। प्रारम्भ मे उन्हे घर के काम काज की अधिक जानकारी भी नही थी। उनकी मा की मृत्यु उनकी

छोटी उम्र मे ही हो गई थी और घर की स्थिति भी सामान्य ही थी, इसलिए रसोई मे बहुत कम चीजें बनाना उन्हे आता था। यहा आने पर मेरी नानीजी ने तथा पिताजी ने बहुत सी बातें सिखाई। फलत वे अच्छी रसोई ही नही, बल्कि पकवान बनाना भी सीख गई थी। उन्हे जो चीजें आती थी उनमे चने, मूंग की दाल और रावोडी का साग उन्हे बहुत प्रिय था। जब पिताजी घर मे नहीं होते थे तो वे अवश्य ये साग बनाया करती थी। पर मां के समय मे जो मितव्ययता और सग्रह था, वह काकीजी के समय मे नही रह सका। एक तो उनका स्वभाव बहुत उदार था और दूसरा अपनी हानि-लाभ का उतना खयाल नही होने से नौकरो की भी बन आई थी। वे नौकरानियो को छाछ देती तो कई बार उसमे मक्खन भी डाल देती और उन्हे कह देती कि चुपचाप चली जायें, क्योकि पिताजी का डर रहता था। पिताजी तो पहले से ही उदार थे। मैं भी उन दिनो कांग्रेस आंदोलन से सहानुभूति रखकर उसके लिए तथा अन्य सामाजिक कार्यों के लिए चन्दा देने तथा पुस्तको, पत्र-पत्रिकाओ पर अधिक खर्च करने लग गया था। इस तरह सभी खर्चीले इकट्ठे हो जाने से अच्छी आमदनी रहते हुए भी हम सग्रह नही कर पाये। आर्थिकस्थिति सुदृढ होने के ऐवज दिनो दिन कमजोर होने लगी। यो बाहरी दिखावे, खर्च आदि से तो ऐसा मालूम होता कि पहले से अधिक सम्पन्न है, पर वास्तविकता यह नहीं थी। मेरे विवाह मे पिताजी ने बहुत अधिक खर्च किया। बाहरी दिखावे से तो हम "लखपति" बने रहे, पर अन्दरूनी स्थिति ऐसी न थी।

काकीजी ने मेरा नाम "भाऊ" रखा। वही आगे चलकर 'भाऊ साहब' के रूप मे विकसित हो गया। बडे मुझे "भाऊ" तथा छोटे और बराबरी वाले "भाऊसाहब" कहने लगे।

मेरी विमाता ने लोगो को निराश ही किया। सौत का लडका समझ कर मेरे साथ परायेपन का व्यवहार कभी नही किया। खाने-पीने मे अपने बच्चो, भाई या पिता से अधिक मेरा ही खयाल रखा। इसलिए

मैंने मां से जो अपूर्व ममता पाई थी, वही विमाता से भी मिली । मैं मा और काकी मे जरा भी फर्क नही कर सका ।

काकीजी का देहान्त पिताजी के पहले ही हो गया था । उनके तीन पुत्रिया और एक पुत्र—कुल चार सन्ताने बची । चूँकि काकीजी ने अपनी सन्तति और मुझमे फर्क नही किया इसलिए मेरे भाई वहिनो मे मत-भेद या गलतफहमी पैदा नही हुई । मेरी दो छोटी बहिने जो काकीजी की मृत्यु के समय बहुत छोटी थी मेरे पास मेरी पुत्रियो की तरह बडी हुई । उनकी शादी और पढाई भी मेरे यही हुई । मैंने उन्हे पुत्रीवत् माना । वे भी मुझे पिता तुल्य ही मानती आ रही है ।
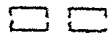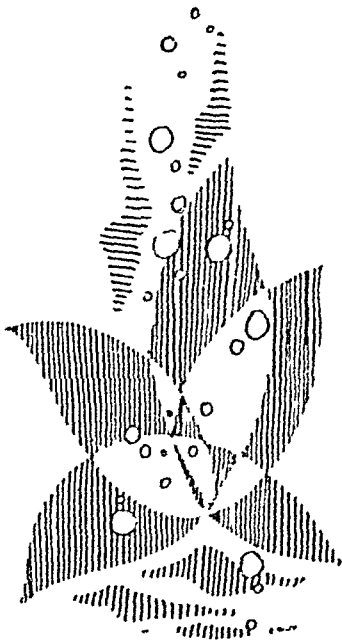
व्यक्तित्व निर्माण और साहित्य

वचपन मे विद्याध्ययन की इच्छा पूरी न हो सकी। इसकी पूर्ति मैं साहित्य वाचन द्वारा करने लगा। मैं जिस गाव मे रहता था वहा सिर्फ चार वर्ष तक की पढाई होती थी, वह तो प्राप्त कर ली थी। उच्च शिक्षा पाने के लिए गाव से चालीस मील दूर जाने की वात थी। इकलौती सन्तान होने के कारण माता पिता मुझे घर से दूर नही भेजना चाहते थे। मैने अधिक पढाई के लिए काफी कोशिश की, दो तीन वार घर से भागा भी, लेकिन मेरा प्रयत्न निष्फल रहा और मैं स्कूल कालेज की उच्च शिक्षा न पा सका।

नया जानने-सीखने की भूख वचपन से ही थी, इसलिए मैं साहित्य पढने लगा। घर मे पिताजी ने धार्मिक ग्रंथो का काफी वड़ा सग्रह कर रखा था। पर ये सव ग्रथ अधिकाश जैनधर्म के थे और उनकी भाषा हिन्दी और गुजराती थी। मैं अनायास ही मराठी के साथ-साथ हिन्दी और गुजराती भी सीख गया। किशोरावस्था मे धार्मिक ग्रन्थो के पढने से भले ही मैं धार्मिकतत्वो को विशेषरूप से न भी समझ पाया होऊं तो भी कुछ धार्मिक संस्कार तो मन पर अवश्य पडे। घर मे जो पुस्तके

या जो ग्र थ थे, वे पढ लेने के वाद गाव मे जो पुस्तके उपलब्ध थी, मै मागकर पढने लगा। पर उस छोटे से गाव मे मेरी वाचन-जिज्ञासा तृप्त नही हो पायी। इसलिए राजमलजी ललवानी के यहा से पुस्तके लाकर पढने लगा। वे हमारे गाव से १५ मील दूर रहते थे और मै उनके यहा जाकर हर सप्ताह आठ-दस किताबे ले आता। फिर मैं भी पुस्तके, पत्र-पत्रिकाए मँगाने लगा। पुस्तको के लिए पिताजी से छिपा कर पैसे ले लेता था और हर महीने सौ-सवासौ की पुस्तके और पत्र-पत्रिकाएँ मँगाता रहता। मुझे पढने का व्यसन हो गया था। उसके पीछे पागल सा था। और २५ साल की उम्र होने तक हिन्दी, मराठी और गुजराती की सैकडो ही नही, हजारो पुस्तके पढ डाली थी। इस व्यसन के कारण कई वार तो व्यापारिक कामकाज भी ठीक-ठीक नही कर पाता था, जिससे पिताजी नाराज होते। मेरा पढना उन्हे अखरने लगा था और उन्हे आगे चलकर जैसे कितावो से चिढ सी हो गयी।

हमारी कपडे की दुकान थी। मै कपडा तरतीव से लगाने का नाटक करता हुआ कपडे के थानो मे छिपाकर रखी पुस्तके पढता। पिताजी आते तव पुस्तके छोड काम करने लग जाता। कई वार यह चालाकी उनके ध्यान मे आ जाती। तब पिटाई होती। मेरा यह व्यसन उम्र के साथ-साथ वढता ही गया और पुस्तको की खरीदी मे तो मै तो आज भी संयम नही रख पाता। खरीदी हुई पुस्तके मैने अव तक कई वार वाटी भी तो भी वह फिर इकट्ठी हो ही जाती है।

जेल से वाहर आते समय काफी पुस्तके साथ आती थी। मेरे सामान्य ज्ञान को वढाने मे पुस्तको ने वहुत मदद की। जेल मेरी पाठ-शाला वनी थी। इस पढाई के व्यसन से मुझे जैसे अनेक लाभ हुए वैसे ही कुछ हानि भी हुई। प्रारम्भ मे कौन-सी किताव पढना और कौनसी नही, इसका कुछ विवेक नही था। हाथ लगी पुस्तक पढ़ जाता, जिससे सद्विचारो के साथ-साथ कुविचारो के प्रभाव से भी मै वच नही सका।

विचारों मे अस्थिरता वनी रही और ठीक निर्णय करने मे कठिनाई होती। वर्षों तक यह भी अच्छा और वह भी अच्छा ऐसी ही कुछ मन. स्थिति रही। लेकिन पढने के साथ-साथ लिखना शुरू किया, तव से मेरे विचारो मे दृढता आने लगी और आगे चलकर कौनसा साहित्य पठनीय है और कौनसा नही, इसका विवेक भी आया।

मानव जीवन के विकास मे सत्साहित्य का स्थान महत्वपूर्ण है। जीवन-विकास मे सत्संगति को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है और कई संत विचारको ने सत्सगति की महिमा अत्यधिक गायी है, लेकिन मुझे लगता है कि सत्संगति से सत्-साहित्य का महत्व कम नही है। साहित्य के द्वारा हमे हजारो वर्षों पूर्व के ज्ञानी तथा अनुभवियो के अनुभवो का लाभ मिल सकता है। सन्तो की संगति मे तो अच्छे गुणो के साथ-साथ दुर्गुणो का भी स्वाद मिलना सम्भव रहता है, क्योंकि सम्पूर्ण दोपो से मुक्त पुरुप का मिलना असम्भव है। पर साहित्य मे केवल गुणो और सद्विचारो के ही दर्शन होते है। मेरा अनुभव है कि साहित्य का महत्व सत्सगति से भी अधिक है।

ऐसी वात भी नही है कि सत्साहित्य के पढने मात्र से जीवन मे परिवर्तन आ जाता हो, यह वात भी नही है कि साहित्य के पढने से मन पर कुछ भी परिणाम नही होता। कुछ न कुछ परिणाम अवश्य होता है, यह मेरा अपना अनुभव है। मुझे राष्ट्रीय दृष्टि देने और अच्छे काम करने की रुचि उत्पन्न करने का श्रेय साहित्य को ही है। वचपन मे जिसे सत्सग कहा जा सके, वह मुझे मिला ही नही था। साहित्य का सभी पर अच्छा प्रभाव होता है, ऐसा भी नही कहा जा सकता। वैसा होता तो आज संसार मे अधिकाश लोग भले ही भले नजर आते पर वैसा है नही। इसलिए ऐसा मानना पडता है कि साहित्य का सव पर एक जैसा प्रभाव नही होता। होता है अवश्य, उन पर, जिनके सस्कार मूलत अच्छे होते है या जिनमे ग्रहणशील-वृत्ति होती है।

मुझे वचपन से अव तक जिन लेखको के साहित्य ने आकर्पित किया उनमे से विदेशी लेखक है टालस्टाय, विक्टर ह्यूगो, कार्लाइल, रस्किन, स्टिफनज्विग, दास्तोवस्की, वुकर-टी-वाशिंग्टन, अलवर्ट स्वाइत्जर और देशी लेखको मे है गांधीजी, विनोवा, केदारनाथजी, काका साहव कालेलकर, किशोरलाल भाई, श्रीमद् राजचन्द्र, धर्मानन्द कौशाम्वी, शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय, रवीन्द्रनाथ टैगोर, हरिनारायण आप्टे, प्रेमचन्द तथा गणेशशंकर विद्यार्थी। इनकी रचनाएँ मेरे लिए प्रेरणादायक रही है, और आज भी उन्हे वडे चाव से पढता हूँ और वार-वार पढने पर भी अघाता नही।

प्राचीन साहित्य मे जिन महापुरुषो के साहित्य का मुझ पर विशेष प्रभाव पडा, वे हैं कृष्ण, वेदव्यास, महावीर, वुद्ध, सुकरात, कन्फ्यूशियस, ईसा, मार्क्स, आरालियास, कवीर, नानक, हरिभद्र, हेमचन्द्र, तुलसीदास, ज्ञानेश्वर, रामदास, तुकाराम, आनन्दघन, यशोविजयजी आदि। मुझे आत्म-चरित्र, प्रवास-वर्णन, इतिहास, योग-मनोविज्ञान आत्म-विकास विषयक साहित्य मे तथा धार्मिक साहित्य मे विशेष रुचि रही है। उपन्यास और कथा-साहित्य, सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक साहित्य भी रुचि से पढता हूँ। पर काव्य मे मेरा विशेष प्रवेश अव तक नही हो पाया।

मै व्यापार तथा सेवाकार्य के साथ-साथ पढता तो रहा, पर जव से लिखने भी लगा तभी से मेरे विचारो मे स्थिरता और व्यापकता आयी। पहले कुशल लेखको की रचनाएँ पढते ही उनमे व्यक्त विचारो का मुझ पर सहज प्रभाव पड जाता था। वाद मे अन्तर आया। पढे विचारो को विवेक की कसौटी पर कसने लगा। लिखते समय उस विषय का विशेष अध्ययन करने से पक्ष और विपक्ष दोनो तरह के विचार पढकर विवेक-पूर्वक निर्णय करने की शक्ति आयी। अधिक और विविध साहित्य पढते रहने मात्र से विना पेंदे के लौटे जैसी जो मेरी स्थिति थी, उसमे परि-

वर्तन हुआ । लिखने का प्रारम्भ तो १९२३ में ही हो गया था । पर उसमें गहराई नहीं थी और न ही परिपक्वता थी । मैं तोता रटन की तरह बोलता भी था और कुछ न कुछ लिख भी लेता था । दूसरे के विचारों को अपनाकर भी उन्हें जैसे-तैसे व्यक्त कर लेता था । पत्र-व्यवहार मेरे लिखने के अभ्यास में सहायक बना । १९४२ में नागपुर जेल में था तब वहां से चि० राजेन्द्र के नाम पत्र लिखे थे जो आगे चलकर पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए । पर नियमित रूप में लिखने का प्रारम्भ हुआ १९४८ से, जब से "जैन-जगत" के सम्पादन का भार मुझ पर आया ।

"जैन-जगत' का सम्पादक बनना भी अकस्मात् हुआ । भारत जैन महामण्डल की ओर से "जैन-जगत" मासिक निकल रहा था । उसके कई सम्पादक थे । मुझे लगा कि वह मण्डल का प्रतिनिधित्व कर सके ऐसा पत्र नहीं है । इसलिए मैंने कार्यकारिणी की बैठक में कहा कि पत्र निकालना ही हो तो अच्छा निकाला जाय, नहीं तो बन्द कर दिया जाय । बन्द करने की बात श्री चिरंजीलालजी बड़जात्या को ठीक नहीं जँची । तब उन्होंने कहा कि आप ही इसका दायित्व ले लें । इस तरह मैं सम्पादक बना । मेरे साथी या सहयोगी थे जमनालालजी जैन । मेरे पास विचार तो थे, पर उन्हें प्रगट करने के लिए परिमार्जित या व्यवस्थित भाषा नहीं थी । मेरी शिक्षा मराठी में हुई थी और वह भी बहुत अल्प । हिन्दी और गुजराती में मराठी की तरह समझ तो लेता था, लेकिन हिन्दी और वह भी शुद्ध हिन्दी लिखना मेरे बस की बात नहीं थी । मेरी हिन्दी पर मराठी का बहुत अधिक प्रभाव था । मैंने परिश्रम करना शुरू किया । भाई जमनालालजी की भी मुझे काफी मदद मिली । भदन्त आनन्द कौशल्यायन व पूज्य विनोबाजी ने भी मुझे प्रोत्साहन दिया । इससे लिखने का अभ्यास बढ़ने लगा ।

"जैन-जगत' के संपादन के साथ-साथ कुछ पुस्तकें लिखने का मौका मुझे मिला । जब तक भाई जमनालालजी साथ रहे भाषा को

अशुद्धिया और मराठीपन का प्रभाव दूर करने का काम वे करते रहे। लेकिन जब १९५४ मे वे सर्वोदय साहित्य के काम मे लग गये तब से अशुद्धिया निकालने और मराठीपन का प्रभाव दूर करने के लिए मुझे स्वयं ही खटना पडा है। यद्यपि इस दिशा मे कुछ प्रगति हुई है पर अभी वहुत कसर है। मैं आज भी विद्यार्थी बना हुआ हूं। नयी बात सीखने का उत्साह कम नही है। लिखकर उसमे कई वार संशोधन करना पड़ता है और आज भी मैं अपनी रचना दो तीन वार परिष्कृत किये विना प्रकाशन के लिए नही भिजवाता।

"जैनजगत" का सम्पादन पचीस साल से कर रहा हूं। उससे मुझसे कुछ समाज की सेवा वन पडी या नही, कह नही सकता। किन्तु व्यक्तिगत दृष्टि से भी मैने काफी पाया। मेरे व्यक्तित्व के विकास मे लेखन का वहुत वडा योग है, इससे इंकार नही किया जा सकता। मुझ जैसा अनपढ आदमी साहित्यिक कहलाने लगा, यही उपलब्धि क्या कुछ कम है? अपने व्यस्त जीवन मे मैं साहित्य की ओर विशेप ध्यान दे सकूं, ऐसी स्थिति मेरी नही है, पर "जैनजगत" तथा "अणुव्रत" पत्र के दायित्व के कारण तथा अन्य कुछ पत्रो के सम्पादको तथा "आकाश-वाणी" वालो के भी आग्रह के कारण कुछ न कुछ लिखना हो ही जाता है। इसे मैं अपना भाग्य समझता हूं और कामना करता हू कि इस तरह कुछ न कुछ सीखते रहने का अवसर मुझे सदैव मिलता रहे।

□ □

९
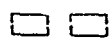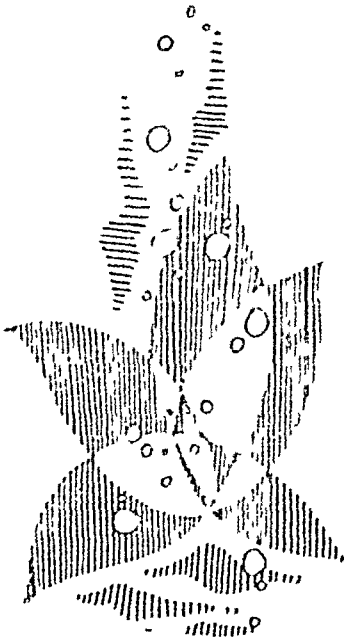
क्या ले गुरु सन्तोषिए, होंस रही मन माहिं

कहते है दत्तात्रेयजी मे ब्रह्मा, विष्णु और महेश की विशेषताएं थी और उनके २४ गुरु थे जिनमे पशु भी थे । उनसे भी उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था। वे जिसमे भी कुछ विशेषता देखते अपना गुरु बना लेते थे।

हर व्यक्ति जीवनभर कही-न-कही से कुछ-न-कुछ सीखता रहता है। जीवन के अन्तिम क्षण तक यह सिलसिला चलता रहता है। यह सिल-सिला अनेक वार तो अनजाने और अप्रत्यक्ष रूप मे जारी रहता है, मोटे तौर पर मालूम ही नही होता कि आदमी किसी से कुछ सीख रहा है। लेकिन कुछ सीखना तो ऐसा ही होता है जिसका ज्ञान व्यक्ति को होता है, उसका चित्र सामने रहता है और वताया भी जा सकता है कि किस आदमी से किस समय, क्या-क्या वाते सीखी ? मैंने भी अपने जीवन मे वहुतो से वहुत कुछ सीखा है। लेकिन मैं कुछ ऐसा विद्यार्थी रहा कि जो कुछ मुझे सीखने को मिला, वह या तो अधूरा रहा या उसका फिर पूरा लाभ नही उठा पाया। मेरा सद्भाग्य है कि गाधीजी जैसे विश्ववंद्य महापुरुष भी मुझे शिक्षक के रूप मे प्राप्त हुए।

जैसे आदमी वडो से सीखता है, वैसे ही छोटो से भी सीखता है। पर जिन-जिनसे शिक्षा मिलती है, उन सवको गुरु मानना तो हर एक के लिए संभव नही। क्योकि गुरु-शिष्य का प्रश्न व्यक्ति पर निर्भर करता है और यह पारस्परिक-स्वीकृति सापेक्ष है। गुरु विना घोर अधेरा कहा गया है। कवीर जैसे ज्ञानी ने भी "रामानन्द चेताये" कहकर अपने को उनका शिष्य माना था। गुरु के विना शिक्षा अधूरी रहती है। दवाएं वहुत हैं, पर वैद्य न हो तो सारी दवाये राख है। ज्ञान वहुत विखरा पडा है, पर विना गुरु सव ज्ञान कागज के टुकडे है।

जहा तक मुझे याद है, सर्वप्रथम पिताजी ने ही, मेरा चौथा वर्ष पूरा होते ही शुभ मुहुर्त देखकर, मेरे हाथ मे एक स्लेट-पेंसिल दी और एक से नौ तक अक सिखाना शुरू किया। उनकी आकृति सिखाने की पद्धति पर जव आज विचार करता हू तो अचरज होता है। उन्होने ० और चूल्हे या अंग्रेजी यू की आकृति से मुझे नौ तक गिनती सिखाई।

उन्होने एक गोल शून्य वनाकर कहा कि "०" वनाओ। मैंने शून्य वना दिया। फिर कहा कि इस पर एक रेखा खीच दो। मैने ० पर एक रेखा खीचकर १ वना दिया। अव उन्होने कहा कि "१" हो गया। मुझे भी इस तरह "१" सीख जाने का वडा आनन्द हुआ। यह मेरी वहुत वडी विजय थी। इसके वाद उन्होने कहा "ऐसा ᑕ चूल्हा वनाओ। मैंने बना दिया। इस पर उन्होने एक रेखा नीचे खीच दी। यह उनके शब्दो मे "२" था। इस तरह डवल चूल्हा वनाकर "३" वना दिया गया। चार सीखने मे मुझे थोडा समय लगा। उन्होने मुझे वैल के सीग निकालने को कहा। ४ ऊपर मुखवाला चूल्हा वनाकर उसमे सीधी रेखा खीचने से "५" वन गया। तीन की तरह ही डवल चूल्हा वनाकर "६" वन गया। ऊपर चूल्हे मे एक गोल विन्दी लगाने से "७" हो गया। आडा चूल्हा वनाने से आठ और दो से उल्टा चूल्हा खींचकर ऊपर आडी रेखा खीचने से "९" वन गया। इस तरह मेरी ९ तक की गिनती की पढ़ाई पूरी हुई। यह पढाई दोपहर को नीम के पेड के नीचे तीन

घण्टे मे हुई। जिन अंको को लिखने मे आज हमे तीन सेकण्ड लगते है, उनको सीखने मे मुझे तीन घण्टे लगे थे। ६० गुना समय। इससे अंदाज लगाया जा सकता है कि जिस दिन इस संसार मे कर्मभूमि का निर्माण हुआ होगा और जिस दिन जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने जनता को असि, मसि, कृषि, वाणिज्य आदि द्वारा जीना सिखाया होगा, रहने-सहने के लिए, रसोई पानी के लिए वस्तुओ का बनाना सिखाया होगा, उस दिन उन्हे कितनी शक्ति लगानी पड़ी होगी, कितना सोचना पडा होगा और जनता को भी क्या कम साधना करनी पडी होगी। आज लिपि-सुधार की वाते करना और संशोधन करना हमारे लिए भले ही सरल हो, लेकिन जिस-दिन इन अंको का, आकृतियो का आविष्कार जिन महापुरुष ने किया था, उनकी वैज्ञानिक सूझबूझ को नमन करना ही होगा।

दूसरे दिन मे वीस तक लिखना सीख गया। लिखना तो मैं जल्दी सीख गया, किन्तु गिनती सीखने मे देर लगी। एक दो से वीस तक पिताजी ने कई वार गिनती रटाना शुरु किया। मुझे भी सीखने की धुन तो थी ही। ५-७ रोज मे ही सही, वीस तक गिनना सीख गया। फिर पहाडे सिखाये गये। पिताजी की इस मेहनत का परिणाम यह हुआ कि जव मैं स्कूल मे भरती हुआ और परीक्षा ली गयी तव मैं सहज ही उत्तीर्ण हो गया। पिताजी घर पर पहाडे और हिसाव सिखाते। उन्होने गणित के कुछ ऐसे "गुर" सिखा दिये थे कि मैं मनो की मापतौल छँटाको मे तुरन्त निकाल लेता। यही कारण था कि पहली कक्षा मे होकर भी मै तीसरी-चौथी कक्षा के हिसाव कर लेता था। जव हमारी परीक्षा लेने के लिए इस्पेक्टर साहव आते थे तव सव विद्यार्थियो से उन्हे खडा करके मौखिक हिसाव पूछे जाते थे। जिसका हिसाव ठीक होता, वह नीचे वैठ जाता। यद्यपि जल्दी हिसाव करके वैठ जाना खुशी की वात होती और इससे तो कक्षा की शान वढती लेकिन मेरी हालत अजीव थी। इंस्पेक्टर साहव के मुँह से सवाल निकला नही कि मैं वैठा नही। इसके कारण

वाकी के लडको को भी जल्दी वैठना पडता, पर वे हिसाव नही कर पाते थे। इसलिए मुझे हिदायत दी जाती कि मैं जल्दी न वैठा करू पर हिसाव होते ही वैठने की जल्दी मे मैं हिदायत को भूल जाता। इस कारण इस्पेक्टर साहव के चले जाने पर कभी-कभी मार भी खानी पडी है। जहा तक मुझे याद है, मैं सदा पास होता रहा और कक्षा मे प्रथम ही रहा। कक्षा के वड़े-वडे लडको को मैं हिसाव सिखाता था, इसलिए मुझे स्व प्रेम करते थे। कुछ साथी जिनमे मेरे एक मामा भी थे, पिताजी के पास हिसाव सीखने आने लगे।

मेरे पिताजी स्कूल मे नही पढ़े थे। उन्होने यतियो से शिक्षा ग्रहण की थी। यतियो को "गुरासा" "गुरु साहव" कहा जाता था। यति गृहत्यागी होते है और भिक्षाचर्या द्वारा भोजन करते है, मदिर या उपाश्रय मे रहते है। चादर आदि वस्त्र पर्यूपण आदि के समय श्रावक दे ही देते है। अगर उन्हे कुछ रुपया मिलता है तो सामाजिक या धार्मिक कार्यों मे लगा देते है। दिन को वह खा-पी चुकने पर गाव के श्रावक-वालको को पढाया करते थे। वे आत्मीयता से पढाते थे, क्योकि पैसे की माया उनको न छूती थी। इस तरह, एक समय हमारी यति-सस्था वड़ी उपयोगी थी। उसके द्वारा जनसेवा के वहुत काम हुआ करते थे। पढाने के साथ-साथ वे दवाईया भी देते, प्रवचन करते। पहले की शिक्षा मे गिनती-पहाडे हिसाव और वहीखातो की जानकारी तथा सुवाच्य लिखावट पर वहुत ध्यान दिया जाता था। अंग्रेजी का उतना ही ज्ञान पर्याप्त समझा जाता था कि कही से तार आजाय तो समझ ले। पिताजी जोड तो इतनी जल्दी लगाते थे कि अचरज होता है। जोड जाचने का एक तरीका उन्होने वताया कि जोड के सारे अको को नो-नो तक जोडकर छोडते चलो और अन्त मे जो अंक रह जाय, वही अंक नीचे जोड के अंको को जोड़ने पर शेप रहे तो समझ लो कि जोड सही है। मान लीजिये, हमे १६+१४+१७+६+८ की जोड देनी है। इनकी जोड होती है ६१। इसे जाचने के लिए हम ऊपर के अको को

जोडे १+६+१+४+१+७+६+८ कुल ३४ हुए। नौ का भाग देने पर ७ बचते हे या यो भी कह सकते हे कि ३ और ४ मिलाकर ७ होते हे। यही ७ की सख्या ६+१ की भी है। इसलिए जोड ठीक हे। इससे जोड मे भूल की सम्भावना नही रहती। कटमिति का व्याज फैलाना, आकडा निकालना आदि की शिक्षा भी मुझे उनने ही मिली। दुकान का हिसाव-किताव भी वे मुझसे करवाने लगे थे, जिससे यह शिक्षा और भी पक्की हो गई। प्राप्त शिक्षा का व्यवहार मे उपयोग होने पर ही उसका सही आनन्द आता है।

सन् १९१२ मे ९ वर्ष की उम्र मे मैने चौथी की परीक्षा दी और ४ रुपये मासिक छात्रवृत्ति की स्वीकृति हुई। उस समय मिडिल स्कूल की फीस डेढ-दो रुपये थी। यही मेरी स्कूली शिक्षा खतम हो गई।

हिसाव-किताव के गुरु तो मेरे पिताजी थे, पर सामान्य ज्ञान, भूगोल आदि की शिक्षा एक दूसरे गुरुजी से मिली, जिनका नाम दाघू चिमन माली था। उनके अक्षर वहुत ही सुन्दर थे। उन्ही के कारण मेरे अक्षर सुवाच्य हो सके। कहते तो यह है कि वडे और विद्वान लोगो की लिखावट सुवाच्य नही हुआ करती और जो धीरे-धीरे सुवाच्य लिखता है, वह विद्वान् नही होता। यह कहा तक सत्य है मैं नही जानता। इतना कहा जा सकता है कि जव भाव तीव्रता से प्रसूत होते है, तव कलम पिछड-पिछड जाती है और उसे आगे घिसटना पड़ता है। सम्भवत इसीलिए विद्वानो और वडे लोगो की लिखावट खराव होती हो।

पिताजी की वृत्ति धार्मिक थी। वे सदा धार्मिक पुस्तके पढा करते थे। मैं भी अपने वचे हुए समय मे वे पुस्तके पढा करता था। धार्मिक पुस्तके प्राय गुजराती मे थी। मैं गुजराती भी पढने लगा और इस तरह यह भाषा मुझे मुफ्त मे ही मिल गयी। भावनगर का गुजराती "जैन" साप्ताहिक भी हमारे यहा आता था। आजकल उसमे हिन्दी का भी एक पृष्ठ रहता है। घर की पुस्तके खतम होने पर गाव मे से

ढूंढ-ढूंढ कर किताबे लाता और उन्हे भी पढ डालता। स्कूल छूटने पर तो किताबे पढने का चस्का और भी बढ गया। पास-पडौस के गावो से भी किताबे लाकर पढने लगा।

गाव मे प्राथमिक शाला से आगे की शाला नही थी। इसलिए आगे की पढाई रुक गई। इच्छा तो तीव्र थी, पर करता क्या? आज भी मैं अपने को विद्यार्थी ही समझता हूं। पूज्य विनोबा, काका साहब, मशरूवाला, पू० नाथजी, जाजूजी, भारतन कुमारप्पा आदि शिक्षा-शास्त्रियो से सीखने का सद्भाग्य मिला है। जमनालालजी बजाज का प्यार भरा हाथ तो मेरे सिर पर वर्षों तक रहा है। सत्-संगति और अनुभव से आदमी बहुत सीख सकता है।

बडो मे मिलनेवाली शिक्षा का आरम्भ स्वयं महात्माजी से हुआ था। इसका जिक्र दूसरे प्रकरण मे है। जिनका सम्पर्क मेरे जीवन मे विशेष परिवर्तन लाया वे थे जमनालालजी बजाज। वे मुझे पुत्रवत मानते थे उन्होने मुझे बहुत दिया। उन्हे गुरू तो नही कह सकता पर स्वेच्छा से उन्होने पिता का स्थान लिया था और अपने पुत्र को कैसे सिखाया जाता है इसका उदाहरण प्रस्तुत किया था। चूंकि मैं महाराष्ट्र मे जनमा और बडा हुआ, इसलिए महाराष्ट्रवालो को वादविवाद करने की विशेषता मुझमे भी आ गयी। मैं भी दलीले करने लगा था। इसलिए जमनालालजी मुझे अव्यावहारिक कहते थे। बार-बार टोकते। बार-बार उनका टोकना मुझे अच्छा नही लगा। मैंने कहा—"काकाजी, यदि मैं अव्यावहारिक या निकम्मा हूँ तो मेरा आपके पास रहना व्यर्थ है।" उन्होने कहा—"इसीलिए मै कहता हूँ तू अव्यावहारिक है। तुझे इतनी भी अकल नही कि सोच सके कि मैं तुझे क्यो अव्यावहारिक कहता हूँ। ले सुन।" उन्होने भवभूति की कथा सुनायी। भवभूति बडा कवि था और उसे राज दरबार मे पुरस्कार भी मिलता था, पर जब वह अपने पिता को यह बताता कि उसने अमुक काव्य बनाया है और

राजा ने उसे पुरस्कार दिया है तो सुनने को मिलता "जैसे तुम हो वैसा तुम्हारा राजा है। वह काव्य के गुण-दोष को क्या जाने ? देखो तुम्हारे काव्य मे यह दोप है।" भवभूति प्रयास करता कि उसका काव्य दोप-रहित हो जाय। करते-करते एकदिन ऐसा आया कि राज-दरबार मे उसे सवा लाख मोहरे पुरस्कार स्वरूप मिली। भवभूति वहुत खुश होकर घर गया। पिता को अपने सम्मान की वात वताई। पिता ने उसमे भी दोप निकाल दिया। भवभूति को ऐसा लगा कि पिताजी मुझसे ईर्ष्या करते है। इसलिए इनका वध ही कर डालना उचित है।

रात को तलवार लेकर मारने निकला। शरद पूर्णिमा थी। पिताजी वाटिका मे भवभूति की माता के साथ वार्ता कर रहे थे। माता वोली—"आज चन्द्र का प्रकाश कितना सुहावना है। चन्द्र सोलह कलाओ से प्रकाशमान है।" पिताजी ने उत्तर दिया—"यह भवभूति के काव्य की तरह ही प्रकाशपूर्ण निर्दोप और रमणीय है।" माता वोली—"दिन मे तो आप उसकी आलोचना कर रहे थे।" पिता वोले—"लडके से कह दिया जाय कि तुम कुशल हो गये तो उसकी तरक्की रुक जाती है और वह प्रशंसा, साधना मे वाधक वन जाती है। इसलिए पिता अपने पुत्र या शिष्य की त्रुटिया बताता रहे, इसी मे श्रेय है।" भवभूति तो यह सुनकर अवाक् रह गया। वह जाकर पिता के पैरो पर गिर पड़ा और क्षमा मागी। तुमको समझना चाहिए जो अपना अधिक प्रिय होता है उसे ही कहा सुना जाता है कि वह और उन्नति करे।

इससे पहले मेरे जीवन मे श्री वासुदेव विट्ठल दास्ताने आ चुके थे। अब मैं जाजूजी के पास शिक्षा ग्रहण कर रहा था। जमनालालजी, जाजूजी व दास्तानेजी की विशेपताओ पर सोचने लगा। दास्तानेजी अपने साथ कार्य करनेवालो का वहुत अधिक खयाल रखते थे। मा का प्यार देते पर जैसे अधिक लाड प्यार मे वच्चा बिगड जाता है, वैसी स्थिति हो जाती। उनके त्याग, परिश्रमशीलता, लगन आदि का प्रभाव

तो मुझ पर पडा, पर लगा कि कार्यकर्ता के हित की दृष्टि से उन्हे अनुशासन मे रखना चाहिए था। इधर जाजूजी मे मैंने दूसरी ही बात पाई। वे सिद्धान्त के आगे झुकना जानते ही नही थे। उन सिद्धान्तो के अनुसार कोई काम करता है तो ठीक है, अन्यथा चला जाय। वहा समझाने-बुझाने को स्थान नही था। पर जमनालालजी मे जहा माता का हृदय था वहा पिता का कठोर अनुशासन भी था। वे इस प्रकार कार्यकर्ता को अपनाते जिससे सिद्धान्त और व्यवहार का मेल बैठ सके। आगे चलकर जाजूजी कुछ मृदु जरूर हो गये थे पर मेरे समय मे तो वे कठोर ही थे। यू मैंने उनसे प्यार भी पाया और सीखा भी। उनकी न भुलाई जानेवाली सीख थी सार्वजनिक पैसे का मूल्य समझो और रुपये को गाडी का चक्का मानो। यानी सार्वजनिक पैसे के व्यय मे अत्यन्त सावधानी बरतो। व्यावहारिक शिक्षा उनसे बहुत मिली। मै उन्हे अपने शिक्षा-गुरु के रूप मे मानता हूँ। उनका वैराग्य सहज था। उन्हे मोह होता ही नही था। उनकी बुद्धि इतनी स्वच्छ थी कि उनके ९९ प्रतिशत निर्णय ठीक होते थे। काम निपटाने की उनकी शक्ति अद्भुत थी। किसी बात का निर्णय करने मे विलम्ब उन्हे असह्य था।

मै उनकी शिक्षाओ के अनुसार अपने आपको ढालने मे असमर्थ पाता। वे बिलकुल निस्पृह थे, सादगी और मितव्ययता मानो उनका स्वभाव थी। किसी से कभी किसी तरह की भी अपेक्षा उन्होने नही रखी। मुझे उनको अपना "आदर्श" मान लेने मे अपना हित जंचा। और मैंने उनका "आदर्श" अपने सन्मुख रखा। यह बात दूसरी है कि मै उस "आदर्श" तक नही पहुँच पाया। उन जैसी शक्ति मेरी नही थी, इसलिए उनका आदर्श सन्मुख रखकर भी उतना आगे नही बढ पाया।

मैं वर्धा गया तो वहा विनोबाजी, किशोरलालभाई, काकासाहब, आदि के संपर्क मे आया। दो बार जेल मे विनोबा के साथ रहा। नागपुर मे तो बिलकुल पास ही था। उनके गहरे चिन्तन, अध्ययन-

शीलता और वाणी के संयम का मन पर प्रभाव पड़ा। किशोरलालभाई ने जीवन की दृष्टि के विषय मे नई बात बताई। मै जैनियो के संस्कारो मे पला था और गांधीजी तथा उनके अनुयायियो के विचारो से प्रभावित था। कषाय-मुक्ति की जो प्रक्रिया बताई गई है तदनुसार विकारो या कषायो के दमन पर जोर देता था। नागपुर जेल मे हेमचन्द्राचार्य का योगशास्त्र पढ रहा था। इस विकार-निर्मूलन के संबंध मे मैने अपनी डायरी मे कुछ नोट लिखे थे। उन पर स्व० किशोरलालभाई से चर्चा चली। उन्होने प्रचलित विचारो से अलग ही विकार-विजय का प्रक्रिया बतायी। वह थी विकारो की शुद्धि। विकार के दमन की अपेक्षा विकारो की शुद्धि के प्रयत्न से विकारो पर विजय पाना अधिक आसान व सम्भव है। क्रोध आता है। यदि उस क्रोध को हम अपने दोषो के प्रतिकार के प्रयत्न की ओर मोड दे तो वह साधना मे बाधक नही बनता। लोभ की बात लें। लोभ अपने स्वार्थ के लिए नही, पर पदार्थ के लिए करते-करते वृत्तिया को शुद्ध करने जायं तो लोभ की बुराई से मुक्ति मिलती है। उनके इन विचारो के पीछे पूज्य नाथजी की प्रेरणा थी और जब आत्मविकास सम्बन्धी उनके विचारो से चलने का प्रश्न आया, तब उन्होने कहा कि अच्छा हो, मै इस विषय मे पूज्य नाथजी से चर्चा करूँ। यो मेरा परिचय पूज्य नाथजी से १९३९ के नमक सत्याग्रह के समय विलेपार्ले मे आया था, किन्तु जब किशोरलालभाई के साथ की चर्चा के बाद विचारो को आचार मे बदलने की बात आई, तो मैं उनके अधिक निकट आकर उनके विचारो की अधिक जानकारी प्राप्त करने लगा। इस बीच उनकी साधना क्षेत्र मे क्रांतिकारी विचारो वाली पुस्तक "विवेक और साधना" भी प्रकाशित हुई जिसने मेरे विचारो पर प्रभाव डालना शुरु किया। फिर भी पूर्व संस्कारो के अनुसार जीवन चलता रहा। भावनावश प्रवाह मे बहकर, प्रतिष्ठा के मोह के कारण जीवन मे ऐसे प्रयोग किये जो अपनी योग्यता व शक्ति की सीमा के परे के थे। जिसका परिणाम भी भुगतना पड़ा। और जब १९५२ मे व्यव-

साय त्याग कर पूरा समय सेवाकार्य मे देने का निर्णय कर व्यवसाय त्यागा तो जो समस्याएँ पैदा हुई, उसमे पूज्य नाथजी का रास्ता ही अधिक व्यावहारिक व श्रेयस्कर रहा। फिर से व्यवसाय शुरू किया और आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त किया और स्वाभिमानपूर्वक परिवार निर्वाह करने के दायित्व को संभालते हुए सेवाकार्य करने का उनका मार्गदर्शन मेरे लिए कल्याणप्रद बना। उन्होने मेरे विचार दोषो को दूर कर जीवन विकास का व्यावहारिक मार्ग सुझाया। अपनी शक्ति और पात्रता के अनुसार जनसेवा का कार्य करना चाहिए। कार्य करने की ओर त्याग की सामर्थ्य बढे उस मात्रा मे सेवा कार्यों का दायित्व लेना चाहिए। सेवाकार्यों मे भी जहा प्रतिष्ठा की प्रतिस्पर्धाओ का जोर हो, वैसे काम न कर, जहा अपनी जरूरत समझी जाय और काम लेना आवश्यक हो वही कार्य के लिये जाये। हम कोई बडे सेवक है, इसका प्रदर्शन करने के लिए नही, पर सच्ची सेवा करने के लिये ही काम अगीकार किये जाये। प्रसिद्धि से बचकर अपना और दूसरो का कल्याण हो, वही मार्ग अपनाया जाय।

अनेक महापुरुषो तथा साथियो के सपर्क से जो कुछ भी सीखने मे आया उसमे यदि किसी ने ठीक जीवन की दिशा बताई हो तो वे पूज्य केदारनाथजी ही है। राष्ट्रीय नेताओ मे लोकमान्य तिलक, बापूजी, जमनालालजी, जाजूजी, किशोरलालभाई, दास्तानेजी, काकासाहब, आदि से जो पाया, वह महत्वपूर्ण नही था। पर प्रत्यक्ष जीवन को अधिक उपयोगी मार्गदर्शन पूज्य केदारनाथजी से ही मिला। मै उन्हे गुरु कहने का साहस इसलिए नही करता कि मैं अब तक अपने आपको उनका शिष्य कहलाने का पात्र नही मानता, पर यह निस्सदेह कह सकता हूं कि मैने उन्ही से अधिक पाया है। उन्होने स्वेच्छा से पिता का स्थान ग्रहण किया और बाप बेटे की जितनी चिन्ता रखता है, उतनी ही चिन्ता पूज्य नाथजी मेरी रखते रहे। उन्हे भी पिता-पुत्र का

नाता अमान्य नही है । धार्मिक क्षेत्र मे भी मेरा कई सन्तो और आचार्यों से सम्पर्क आया, पर मुझे अधिक प्रभावित किया आचार्य श्रीतुलसी ने । उनकी सगठन शक्ति और दूसरो से कार्य करवा लेने की अद्‌भुत कला से मैं अत्यधिक प्रभावित हूं। वैसे ही व्यवसाय क्षेत्र मे भी अनेको से मैने शिक्षा प्राप्त की, अनेको से सीखा । सभी का उल्लेख करना सभव नही । मेरा जीवन जो कुछ भी आज है, उसे बनाने मे अनेको का योगदान है ।

□ □
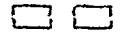
समाज-सुधार के प्रयत्न

वचपन से ही समाज-सुधार की प्रवृत्तियो मे मेरी दिलचस्पी थी। यह् कहना कठिन है कि इसके मूल मे कारण साहित्य के प्रति रुचि थी या कार्यों से प्राप्त होनेवाली प्रतिष्ठा। पर जव सामाजिक प्रवृत्तियो मे रुचि लेने लगा तो स्वाभाविक ही समाज-सेवा करने वालो से सम्पर्क वढा। उन दिनो खानदेश मे जामनेर के राजमलजी ललवानी, भुसावल के पूनमचन्दजी नाहटा, इच्छापुर के पीरचन्दजी चौधरी आदि समाज-सुधार के कामो मे लगे रहनेवालो मे थे। इनमे से प्रथम परिचय पूनम चन्दजी नाहटा से हुआ। यह परिचय एक शादी मे हुआ था। मैंने समाज-सुधार विपयक साहित्य पढा था। उनसे चर्चा की। उन्हे मेरी चर्चा अच्छी लगी। उन्होने ललवानीजी से मिलने के लिए कहा। मै उनसे मिला। उनसे ऐसी मित्रता हुई कि वे सामाजिक कामो मे प्रारम्भ मे प्रेरक और वाद मे साथी वन गये। ललवानीजी और नाहटाजी दोनो खानदेश मे ओसवाल जैन समाज-सुधार मे अग्रणी थे। उन्होने विवाह शादियो मे फिजूलखर्ची न कर विवाहो के अवसर पर समाजहित के कामो मे दान दिलवाने, मृत्यु-भोजन आदि का विरोध कर अन्य

कुरीतियो को त्यागने तथा समाज शिक्षा के काम शुरु कराने में काफी रस लिया। खानदेश मे विवाह के दूसरे दिन सघ-पूजा का कार्यक्रम होता है। उसमे वराती और घराती दोनो अपने मेहमानो के साथ उपस्थित रहते है। रिवाज तो यह था कि उस समय कन्यापक्ष वालो को अपनी ओर से भोजन का आमंत्रण देने की प्रार्थना की जाती जिसे सिघ-पूज जो संघ पूजा का अपभ्रंश है, पर उस कार्यक्रम को उन्होने ऐसा रूप दिया कि संघ की सेवा के विषय मे विचार और काम हो। इस अवसर पर समाज सुधार पर भाषण होने लगे और दान की रकम लिखाई जाने लगी।

वह परम्परा अव भी खानदेश मे चल रही है। प्रत्येक विवाह मे दान स्वरूप रकम निकाली जाती है। वह विविध शिक्षा तथा सेवा-सस्थाओ और समाचार-पत्रो को वाट दी जाती है। मैंने भी अनेक विवाहो मे व्याख्यान दिये थे। विवाहो मे सुधार के अतिरिक्त खानदेश मे जो महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार हुआ, वह था मोसर—मृत्यु-भोज, वन्द करवाने का।

मेरी काकीजी—विमाता की मृत्यु के वाद भोज की तिथि पचो ने निश्चित कर दी थी, आमंत्रण भिजवा दिये गये थे। उसे बन्द करवाना था। उन दिनो मैं जलगाव मे रहता था। राजमलजी के दामाद श्री दीपचन्दजो सावद्रा और भतीजे श्री मोतीलालजी ललवानी मेरे पास आये और कहा कि आपके यहा मोसर तो होना नही चाहिए क्योंकि आप तो इसके विरोधी है और आपने कई जगह पिकटिंग की है। इसलिए वे मुझे लेकर जलगाव से फतेपुर पहुँचे। मेरे पिताजी स्वय मृत्यु-भोज मे शामिल नही होते थे, पर परम्परागत सामाजिक प्रथा को निभाने के लिए, परिवार की प्रतिष्ठा के लिए यह भोज कराने का उन्होने निश्चय किया था। वे इस वात पर अडिग थे कि यह कार्य तो होगा ही। आसपास के पचो को बुलाकर सभी वातो का निश्चय कर

लिया गया था। उन्होने कहा—यह कार्य बन्द कैसे हो सकता है, इससे मेरी प्रतिष्ठा को हानि पहुँचेगी, मै उसे कैसे वर्दाश्त कर सकता हूँ।" सावद्राजी व ललवानीजी से उन्होने कहा, "आप यदि पहले आते तो मैं पंचो को नही बुलाता। सावद्राजी तथा मैंने प्रतिष्ठा की समस्या का हल तो यह निकाला कि आप दान देकर यहा जो पचायत का स्थान नही है उसे वनाने मे योग दे। केवल दो दिन के जीमने-जिमाने की अपेक्षा वह स्थायी स्मृति की चीज होगी। इसमे उससे अधिक प्रतिष्ठा है। फिर समस्या यह रही कि दिये हुए आमंत्रण कैसे लौटाये जायं। जहा-जहा आमंत्रण दिये थे वहा-वहा जाकर पचो को एकत्र किया और आमत्रण वापिस लाये। फिर फतेपुर के पंचो को एकत्र किया। उन्होने भविष्य मे मृत्युभोज न करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया और मेरी काकीजी का मोसर रुक गया। यह असाधारण वात थी। पर सावद्राजी और लल-वानीजी के अथक प्रयत्न से ही यह बात हो सकी थी।

उन दिनो मोसर का इतना अधिक रिवाज था कि राजमलजी ललवानी के पिता के मोसर तीन जगह हुये थे—जामनेर, वम्वई और भोपालगढ मे। उस अवसर पर उपस्थित हजारो सेवको को सोने की एक-एक गिन्नी दक्षिणा मे दी गयी थी। जव राजमलजी के यहा एक गिन्नी दक्षिणा मे दी गयी तो उनके वहनोई केशरीमलजी गुगलिया ने दो गिन्निया दक्षिणा मे दी थी। इसलिए लाखो का खर्च मृत्युभोज मे होता था। इसे बन्द कराने के लिए प्रवल प्रयत्न करने पडे। कई जगह धरने दिये गये। तीन-चार जगह मैंने प्रमुख रूप से भाग लिया था। तव इतनी उत्तेजना फैली थी कि मार-पीट होने की आशंका हो गयी थी।

हमारी तहसील मे तोडापुर नामक एक गाव है। वहा चादमल नामक एक भाई तम्बाखू का धंधा करते थे। गरीबी के कारण उनका विवाह नही हो सका था। अत उन्होने एक मुसलमान औरत को रखेल

वना लिया था। वे उसके हाथ का भोजन नही करते थे, जल भी नही पीते थे। अपने से अलग, दूसरे घर मे रखते थे। थे अक्खड। गाव के सेठजी से उनकी वनती नही थी। एक मोसर मे वे आये और उन्होने कासे मे पैसा डाला। सेठजी ने इस पर आपत्ति की। पंचायत वैठी। सेठजी ने कहा कि इन्होने मुसलमान औरत को रखैल वना रखा है। चांदमल वोले—"इसमे मैंने कोई अपराध नही किया। मेरी शादी होती नही थी, इसलिए मैंने ऐसा किया है। यदि समाज शादी करवा दे तो मै उसे अलग कर दूंगा। मैंने आज तक उसे अलग रखा है। मै उसके हाथ का पानी तक नही पीता, भोजन भी नही करता।"

एक तरह से यह पुराने और नये विचारो का संघर्ष था। भुसावल की ओसवाल पंचायत वहुत शक्तिशाली मानी जाती थी। पंचायतवालो को यह मान्य नही था कि पचायत को एकत्र किये विना और पचायत की स्वीकृति के विना कोई भी काज हो। पंचायत की स्वीकृति के लिए पचो को एकत्र करने और उन्हे राजी कर काम करने मे विवाह-कारज मे लोगो को वहुत मुश्किल होती थी। कई वार पच ऐसा भी निर्णय देते थे कि उसके पालन मे कठिनाई पडती थी। परिवार पर अन्याय भी होता था। शादी की मिठाईयो के लिये कितनी शक्कर उपयोग मे लाई जाय जैसी वातो से लेकर प्रत्येक रीति-रिवाज मे पंचो की उपस्थिति आवश्यक मानी जाती थी। पचायत सामाजिक भूलो के लिए दण्ड भी देती थी। जाति-वहिष्कार का हथियार उन दिनो वडा भयानक और कष्टप्रद था। किसी भी वहिष्कृत व्यक्ति के यहा जातिवाले शादी-गमी या किसी भी सामाजिक काम मे शामिल नही होते थे। उसके साथ पूरे समाज का रोटी-बेटी व्यवहार वन्द हो जाता था। अधिक कठिनाई तो उन लोगो को होती थी जो नम्र तथा शांत स्वभाव के थे। उनकी नरमी का लाभ विरोधी उठाते थे और उन्हे तंग करते थे। पचो के डण्डे के जोर पर झुकाने की घटनाएँ भी उन दिनो घटती थी।

सेठजी की आपत्ति थी—भले ही ये उसका बनाया भोजन न करे, पानी भी न पीये, पर नाल तो भ्रष्ट हो ही गयी। इंद्रिय-स्पर्श के कारण यह दोषी तो ठहरे ही। पंचायत मे सेठजी का प्रभाव था, निर्णय उनके पक्ष मे ही हुआ। चांदमल को जाति-बहिष्कृत कर दिया गया। चांदमल के पास एक डण्डा हमेशा रहता था, उठे और डण्डा पीटकर बोले, "ठीक है, पर सेठजी याद रखना कि जिस रास्ते से आप जावेंगे, आगे मिलूँगा ही।" और वे तेजी से उठकर निकल गये। सेठजी घबराये। राजमलजी के पास आकर बोले, "राजमलजी, उसे वापिस बुलाइये यह बदमाश मुझे घर तक सुरक्षित नही पहुँचने देगा।

राजमलजी ने पहले ही सेठजी तथा अन्यो को चादमल को जाति-बहिष्कृत न करने के लिए बहुत समझाया था। पर वे नही माने थे और उन्हे जाति-बहिष्कृत करने पर ही तुले हुए थे। अब डण्डे के भय ने उन्हे फैसले मे परिवर्तन करने को विवश कर दिया था। चादमल को वापिस बुलवाया गया और कहा गया कि उन्हे जाति-बहिष्कृत नही किया जायेगा। वे सिर्फ शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा कर आवे। चादमल का उत्तर था—"मेरे पास यात्रा के खर्च के लिए पैसे नही है।" सेठजी ने अपने पास से एक सौ एक रुपये यात्रा के लिए देकर अपना पिण्ड छुडाया। चादमल और सेठजी जन्म भर एक ही गाव मे रहे। फिर कभी कोई बखेडा नही हुआ।

एक इससे भिन्न किस्सा सुनिये। एक गरीब भाई की लडकी विधवा हो गयी। उस पर उसके जेठ ने बलात्कार किया। बेचारी अनाथ विधवा करती भी क्या? उसे गर्भ रह गया। ससुरालवालो ने उसे बाप के यहा पहुँचा दिया। इस पर पंचायत हुई। गाववालो ने डराया कि जाति बहिष्कृत करेंगे। बेचारा गिडगिडाया कि ससुरालवाले रखते नही आप ही बताइए कि मैं क्या करूं?

पंच बोले—"हम कुछ नही जानते, इस लडकी को यदि तुम अपने

यहा रखोगे तो जाति-वहिष्कृत कर दिये जाओगे।" उसने लडकी को किसी के हाथो वेचकर पंचो से पिण्ड छुडाया।

ऐसी सव वातो से धीरे-धीरे पंचायतो और उनके कामो के प्रति लोगो मे घृणा घर करने लगी और मृत्युभोज, रीतिरिवाजो की स्वीकृति लेने या वृद्ध-विवाह आदि के प्रति जहा संभव हुआ प्रतिरोध किया जाने लगा। गाधीजी के आन्दोलन के कारण हुई जागृति ने भी सामाजिक सुधार को प्रोत्साहन दिया था।

भुसावल मे जव धरना दिया गया तो उत्तेजना काफी फैली, पर कोई अप्रिय घटना नही घटी। भुसावल मे पंचायतवालो का सुदृढ़ गढ़ तो था, पर पचायतवाले थे वडे सभ्य और भले लोग। इसलिए किये गये शात धरने का उन्होने कोई प्रतिकार नही किया। पर नसीराबाद मे कुछ अधिक उत्तेजना रही। जिनका मोसर था वे खानदेश के प्रसिद्ध धनी व्यक्ति थे और प्राय खानदेश के सभी पुराने विचारो के लोग उस मोसर मे उपस्थित थे। धरना देनेवालो की संख्या २५ के लगभग थी। ये शाति के साथ भोजन करने वालो से प्रार्थना करते थे कि वे भोजन न करे। वीच-वीच मे मृत्युभोज विरोधी गीत भी गाये जाते। मोसर मे आये हुये कई भाईयो को यह सव वहुत वुरा लगा। उन्होने धमकियाँ दी और कहा कि पुलिस को वुलाकर जेल भिजवा देगे।

पर वहा जो भी आये थे वे इस तैयारी से ही आये थे कि कुछ वर्दाश्त करना पडे तो करेगे। मृत्युभोज समर्थको ने पुलिस से शिकायत की कि ये लोग पिकेटिग के द्वारा लोगो का रास्ता रोकते है। पुलिस आयी, थोड़ी देर कार्यवाही देखी और उन्हे कह दिया गया कि इनका ऐसा करना कानून के अन्तर्गत है, हम इन्हे रोक नही सकते। तब मार-पीट की धमकी दी गयी। गालियो की वौछार तो पहले से ही हो रही थी। उन दिनो पिकेटिग या सत्याग्रह मे सामनेवाले को कष्ट देने की वात कोई भी सोचता नही था।

धरना देनेवालों मे अपूर्व उत्साह था। साथ ही साथ स्थानिक जनता की सहानुभूति भी उन्ही की ओर थी।

मृत्युभोज का अन्तिम धरना हुआ तोडापुर मे। वह अंतिम इसलिए था कि फिर खानदेश मे मोसर या मृत्युभोज बन्द ही हो गये। इस धरने मे समाज के काफी प्रतिष्ठित लोग शामिल थे। जैसे राजमलजी ललवानी जामनेर, पूनमचन्दजी नाहटा भुसावल, पूनमचदजी राका नागपुर, भीकमचन्दजी जैन जलगाव, दीपचन्दजी सावद्रा जलगाव आदि आदि।

मैं उन दिनो जलगाव रहता था। जलगाव से मोटर मे १० वजे रवाना हुआ और ११। वजे तोडापुर पहुँचा। देखा तो धरना देनेवालो को पुलिसवालो ने डोरी वाध कर रास्ते मे आगे वढने से रोक रखा है। भोजन करनेवाले विना किसी रोक-टोक के दूसरे रास्ते से आ-जा रहे थे। मै मोटर से उतरते ही पुलिस के पास पहुँचा और वोला—"तुमने यह रास्ता क्यो रोक रखा है ? यह डोरी किसने वांधी ?"

उन्होने कहा—"सव-इस्पेक्टर के कहने से।"

मैंने कहा, "या तो लिखित आदेश बताओ या रास्ता खोल दो। आप सार्वजनिक रास्ता वन्द करके गैरकानूनी काम कर रहे है।"

वे घवराये। एक सिपाही इंस्पेक्टर के पास गया। इंस्पेक्टर आया। मैने उसे भी यही वात पूछी कि "सार्वजनिक रास्ता किसके हुक्म से रोका गया है ?" वह मेरे प्रश्न से और पूछने के तरीके से कुछ घवराया, पर वोला कि "मैंने यह जागीरदार साहव के हुक्म से किया है।

मैंने कहा, "या तो उनकी लिखित आज्ञा लाओ या रास्ता खोल दो।" उसने रास्ता खोल दिया। हम भोजन के स्थान के पास धरना देने लगे। उन दिनो वम्वई राज्य मे काग्रेसी सरकार थी। रात को सभा हुई, जिसमे मोसर का निषेध किया ही गया, साथ ही पुलिस की

गैरकानूनी हरकतो पर प्रस्ताव पास कर गृहमंत्री के पास भेजा गया। पुलिस के सब-इस्पेक्टर को सख्त चेतावनी दी गयी और उसकी वढोत्तरी रोक दी गयी। फिर प्राय मोसर वन्द ही हो गये।

इससे भी अधिक कठिनाई पडी पर्दे की प्रथा को हटाने मे तथा हरिजनो से सम्पर्क वढाने मे। मेरी पत्नी ने पर्दा करना स्व० सेठ जमना लालजी वजाज के सम्पर्क मे आने के समय से ही छोड़ दिया था। फिर भी वह पिताजी के सम्मुख पर्दा रखती थी। हम जव वर्धा थे, तव कोई प्रश्न ही उपस्थित नही हुआ। पर जव हम कुछ दिनो के लिए अपने गाव फतेपुर मे आये और वहा पूनमचन्दजी राका आये तो सभा मे मेरी पत्नी विना पर्दे आयी। यह पिताजी से वर्दाश्त नही हुआ। उन्होने उसे घर मे नही आने दिया। हमे रात अपने मित्र के यहा काटनी पड़ी। और दो-तीन साल तक फतेपुर मे हमे पिताजी से अलग ही रहना पडा।

मै उन दिनो गाधी सेवासंघ की ओर से ग्रामसेवा का काम करता था। उसमे अछूतोद्धार भी था। मैं और मेरे साथी अछूतो को पढाने जाते थे। इस वात के लिए पिताजी को कोई आपत्ति नही थी क्योकि वे भी छूआछूत मे वहुत विश्वास नही करते थे। पर गाव के कुछ लोग तो इस वात को अधर्म समझते थे। वे मुझे और मेरे साथियो को बहिष्कृत करने की बात करने लगे। पिताजी को यह अच्छा नही लगा। उन्होने मुझे बुलाया और समझाकर कहा कि मै भले ही दूसरे काम करूँ, पर अछूतो के यहां जाकर उनके बच्चो को पढाने का काम न करूँ। मैंने कहा, "जव छूआछूत को आप ठीक नही समझते तो फिर मेरे वहा जाने मे आपको आपत्ति क्यो है?"

वे वोले, "मुझे आपत्ति नही है। पर गाव के लोग तुम्हे वहिष्कृत करे, यह मैं वर्दाश्त नही कर सकता।" मैंने कहा—"आपको इसमे डरने का कोई कारण नही है, फिर वे आपको तो वहिष्कृत करेंगे नही, करेंगे तो मुझे ही करेंगे। आप मेरी चिन्ता न करे।" मैं पिताजी के साथ

अत्यन्त धैर्य और शाति के साथ बाते कर रहा था, पर मेरा अडिग निश्चय देखकर वे उत्तेजित हो उठे । उन्होने मुझे पीटना शुरू कर दिया । मेरे कपडे फाड डाले । मैं शांत ही बैठा रहा । लोगो ने आकर मुझे छुडाया । तव पिताजी पीटने भी लगे तो भी मैंने मौन ही रखा । यूँ वचपन मे तो पिताजी की मार कई वार खायी थी । पर यह मार तो मुझे २७ साल की उम्र मे पडी थी, और मैं एक सार्वजनिक कार्य-कर्ता था ।

दूसरे दिन उन्होने मुझे बुलाया और आखो मे आसू लाकर वोले—"मैंने गुस्से मे तुझे पीट दिया । तू शात रहा । मुझे रंज है । "मैंने पिताजी को आगे नही वोलने दिया । मैं जानता था कि उनका मुझ पर कितना अगाध प्रेम था और वे मेरे प्रति क्या भाव रखते थे । उन्होने जो कुछ किया वह किसी दवाव के कारण किया था । इसलिए मेरे मन मे उनके प्रति जरा भी रोप नही, वल्कि आदर ही था । उनके और मेरे विचारो मे भेद था, पर अन्त तक मेरे मन मे उनके प्रति आदर रहा । उनके कई गुण थे, जिन्हे मैं आज याद करता हूँ ।

समाज-सुधार के कामो मे मैं कोई क्रातिकारी प्रचारक नही रहा हूं । जो काम मै स्वयं नही कर सकता, उसे करने के लिए दूसरे से नही कहता । मैं जाति-पाति के भेद, दसा-वीसा पाचा-ढाया, नही मानता था । और न आज ही मानता हूं । अपने छोटे भाई ईश्वरलाल का विवाह जैन समाज के गणमान्य नेता स्व० कुन्दनमलजी फिरोदिया की पुत्री से दसा-वीसा का भेद मिटाकर किया । अव तो इस दिशा में और भी प्रगति हुई । पर दसा-वीसा विवाह की फिरोदियाजी साहव ने ही पहल की । उनके सुपुत्र हस्तीमलजी का विवाह ईश्वरलाल के विवाह से पहले हुआ था ।

विधवाओ के प्रति वचपन से ही संवेदनशीलता का भाव रहा है । हमारे गाव की एक सम-वयस्क और विशेप आत्मीयता रखने वाली

युवती वाल-विधवा हो गयी थी । उसका मन पर असर रहा और सोचने लगा कि उसका जीवन कैसे कटेगा । यद्यपि मैं विधवा-विवाह का प्रवल प्रचारक नही रहा, तो भी उसका समर्थक रहा हूं और कई विवाहो से सहयोग दिया । विधवा विवाह को उत्तेजन देने की नही, पर वर्दाश्त करने की वात मानता हूं । संयम पर निष्ठा होने से आया हुआ वैधव्य सयमपूर्वक पालन कर कोई आत्म-कल्याण करे तो उसे मैं ज्यादा अच्छी वात समझता हूं, किन्तु किसी वहिन से संयम संभव न हो, और वह विवाह करना चाहती हो तो उसे मैं अहितकर भी नही मानता ।

जाति-पाति मे मैं हिन्दू-मुसलमान का भेद भी नही मानता और मैंने लक्ष्मीचन्दजी जैन और फातिमा का विवाह करवाने में योगदान दिया था । वहिन फातिमा या उसके परिवार की अहिसा की निष्ठा ने मुझे इस विवाह मे योगदान देने को प्रेरित किया था । चार सौ वर्ष पूर्व के सुप्रसिद्ध जैन कवि वनारसीदासजी ने भी हिन्दू-मुसलिम एकता पर आध्यात्मिक प्रकाश डाला है ।

भले ही आज ऐसे समाज-सुधार के कार्य वहुत नगण्य मालूम देते हो, पर आज से पचास साल पहले ये सव कार्य क्रांतिकारी समझे जाते थे और विना वहुत क्राति किये भी उस जमाने के सुधारक क्रातिकारी माने जाते थे ।

वचपन मे समाज-सुधार के लिए जो उत्साह था, उसके लिए दूसरो की नाराजी सहन करने की हिम्मत थी । आज उसका अभाव दिखाई पडता है । पहले नाचनेवालियो के नाच वन्द करवाने के लिए धरना भी दिया था पर वे ही नाच आज "कला" के नाम पर प्रगति के द्योतक वन गये है । सभ्य समाज को आज उनमे कोई वुराई नही दिखाई देती। इसे प्रगति कहे या क्या कहे ? चलनेवाले अनिष्टकर कामो मे पहले योग देने मे जो संकोच था वह दूर हो गया है और उन्हे अनिष्टकर

कहने का साहस भी आज सुधारक खो बैठे है। समाज के लिए अनिष्ट-कर वातो को रोकने का प्रयत्न करना तो दूर रहा। इस दोष का मैं अपने को भी अपराधी मानता हूं चाहे यह समझौता वृत्ति बुढापे के कारण आयी हो या "कहने का कोई परिणाम नही होगा" इस विवशता के कारण आयी हो, पर आ गई है जरूर। इस वात से इन्कार नही किया जा सकता।

□ □
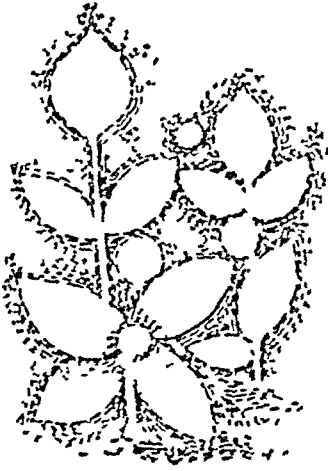
११

बा–बापू का प्रथम सम्पर्क

सन् १९२५ की वात होगी। मैं वापू के पास सावरमती गया ताकि वापूजी से अपनी परीक्षा करवा लूँ। अपनी कमजोरियां या दोपो की जानकारी प्राप्त कर लूँ और जीवन के विकास के लिए समुचित मार्ग-दर्शन प्राप्त करूँ। मै घर का व्यापार छोड जलगाव मे रहकर महाराष्ट्र मे खादी की दुकाने चला रहा था।

उन दिनो महाराष्ट्र मे खादी का काम करना कुछ कठिन-सा था और खादी की दुकाने प्राय घाटे मे चलती थी। खादी-प्रेमियो द्वारा उसकी पूर्ति हो रही थी। चूँकि मै वनिये का वेटा था, घाटे की वात, फिर चाहे खादी की दुकान मे ही क्यो न हो, मुझे ठीक नही लगी। इसलिए विना घाटे होने दिये वल्कि उसमे मुनाफा भी हो ऐसा प्रयास करने से कई जगह की दुकाने मेरी देखरेख मे ही चलने लगी। इससे खादी की विक्री का काम केवल स्वावलम्वी ही नही हुआ, वल्कि विक्री भी काफी वढी।

सेवा के लिए किये जानेवाला काम स्वावलम्बी हो या मुनाफे मे चले, यह बात मेरे साथियो मे मेरी टीका का कारण बनी। मेरा क्या दोप है, यह मै बापू से जानना चाहता था।

मै जब साबरमती पहुँचा तो बापूजी ने मुझे अपने पास रखा और मेरा कार्यक्रम वना दिया।

सबेरे ३-४५ वजे उठकर, निपटकर उनके साथ लालटेन लेकर प्रार्थना-सभा मे जाना। प्रार्थना कर उन्हे वापिस लाना। ६ वजे तक उनके पास रहकर उनके व्यक्तिगत काम करना। ६ बजे सुरेन्द्रजी के साथ संडास-सफाई के काम मे लगना। गढे खोदकर उनमे मल व मूत्र डालकर, ऊपर से मिट्टी डालना। ७-३० वजे स्नान। वहा से आकर बा के साथ रसोडे मे काम करना।

बापूजी ने मुझे वता दिया था कि तुम्हे वा को सन्तुष्ट करना है, यही तुम्हारी कसौटी है। वा की कसौटी पर जो ठीक उतर जाता है, उस आदमी को मैं सर्टिफिकेट दे देता हूं कि वह कही भी जाकर काम कर सकता है।

वा को सन्तुष्ट करना आसान नही था। वे सफाई का वहुत ध्यान रखती और काम कोई भी हो, उन्हे निर्दोपरूप से किया हुआ ही अच्छा लगता था। यदि चौका धोने मे कही कुछ कमी रह जाती तो वे स्वयं सोड़ा डालकर ब्रश से फर्श घिस कर धोती। दाल-चावल ठीक से बीन कर और धोकर पानी पकाने के लिए तैयार रखना होता। धोते समय एक दाना भी धोने के स्थान पर न गिरे इसका ध्यान रखना होता। यो तो मै रसोई बनाना जानता था और मौका पडने पर जैसी-तैसी रसोई वना भी लेता था, पर वा के पास जैसा-तैसा काम नही चल सकता था, खासकर फुल्के बनाने मे वडी सावधानी रखनी पडती थी। गोलाई ठीक हो और महीन भी, फिर वे वरावर फ़ूले हो। अच्छे फुलके बनाना सीखने मे पन्द्रह-बीस दिन लग गये। अन्त में मैंने वा को अपने काम से सन्तुष्ट कर ही लिया।

रसोडे के काम मे सुवह-शाम मिलाकर करीव पांच घण्टे लग जाते। परोसते समय कोई चीज नीचे न गिर जाय इसका भी ध्यान रखना पडता था। रसोई के वर्तन विलकुल साफ माजने होते और चोका धोकर साफ करना होता। शेप समय वापू के पास विताता और वे जो काम वताते वह करता।

मै वापूजी के पास अपनी कमियो को जानने और कुछ नयी वाते सीखने आया था। कई दिन वीत गये, पर वापू ने एक शब्द भी मुझे नही कहा। मैने एक-दो वार कहा भी—"वापूजी, मुझे आप कुछ वतावे, उपदेश दे।"

एकदिन जव संध्या की प्रार्थना से लौटे तव वापू ने मुझे अपनी खाट के पास बुलाया और लेटे ही लेटे वोले, "ऋषभदास, तुमने कहा कि मै कुछ उपदेश दूँ या सिखावन दूँ सो मैने सुन लिया। मैने तुमको कुछ नही कहा। आज वताता हूं। अन्नमय प्राण इसीलिए कहा गया है कि विना अन्न के मनुष्य जीवित नही रह सकता। फिर भी विना अन्न के ७०-७५ दिनो तक मनुष्य जीवित रह सकता है। पर जल के विना इतने दिन जीवित नही रहा जा सकता और हवा के बिना चन्द मिनिटो मे ही जीवन समाप्त हो जाता है। स्थूल से सूक्ष्म अधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षा की वात भी ऐसी ही है। मैने तुमको अपने पास रखा है उसका उद्देश्य है मेरे निकट रहकर इस वातावरण से तुम शिक्षा ग्रहण करो। स्थूल उपदेश अन्न की तरह है। अन्न से जल सूक्ष्म होता है और जल से हवा अधिक सूक्ष्म होती है, पर उसका महत्व जीवन के लिए अधिक है। इसलिए मै क्या करता हूँ, किससे क्या बात करता हूं या आसपास जो वातावरण है उसी से जो सीखोगे वही अधिक महत्वपूर्ण होगा।"

वापूजी की बात विलकुल सच थी। बापू से मिलनेवाले आते-जाते रहते, उन्हे वापू जो कुछ कहते या उनसे जो बातचीत होती उसमे सीखने जैसा वहुत रहता था। एकदिन तो उनके और भावनगर के

दीवान प्रभाशंकर पट्टणी के बीच जो बातचीत हुई उससे वहुत कुछ सीखने को मिला। वापूजी की सफलता का रहस्य उस वातचीत मे मिला।

शाम को प्रार्थना के बाद दोनो प्रार्थना-स्थल पर वैठे बातचीत कर रहे थे। मै लालटेन लेकर वापू को वापिस ले जाने के लिए उनकी प्रतीक्षा मे था। दोनो की बात सुनी।

सर प्रभाशंकर पट्टणी वोले—"मै देख रहा हूँ, आपके साथी एक-एक करके आपको छोडकर जा रहे है। जिन्हे आप भाई कहते थे उन शौकतअली मोहम्मदअली ने भी साथ छोड़ दिया। कई लोग तो आपको गालियां देकर या टीका-टिप्पणी करके नेता वन रहे है। आपके स्वराज्य आन्दोलन का भविष्य तो मुझे वहुत ही अंधकारपूर्ण दिखाई दे रहा है। चारो ओर निराशा फैल रही है।"

गाधीजी ने वडी मृदुता से जबाव दिया—"मैं निराश नही हूँ। मैंने एक हजार कार्य-कर्ताओ को खादी-कार्य के निमित्त देहातो मे वैठाया है। वे ३-४ साल मे खादी का काम करते-करते काफी वढ जावेगे और जव मैं फिर से आन्दोलन शुरू करूँगा तो उनकी संख्या दस हजार तक हो जावेगी। आप देखेंगे कि आन्दोलन शुरू होने पर मेरे पीछे हजारो नही, लाखो लोग आवेंगे। मैं ठीक समय की राह देखता हुआ अपनी शक्ति बढा रहा हूँ। कार्यकर्ताओ को तैयार करने मे लगा हुआ हूँ।"

उस दिन गांधीजी के आन्दोलन और अन्य आन्दोलनो के भेद को मैं जान सका। वापू का ढंग था कि जब लोग आन्दोलन या प्रचार से थक जाते तव वे उन्हे रचनात्मक कार्यों मे लगाकर पुराने कार्य-कर्ताओ को काम देकर, नये लोगो को काम करने के लिए प्रशिक्षित करते और जव जनता मे नये सिरे से आन्दोलन का टेम्पो बनता तव फिर आन्दोलन शुरू कर देते, जिससे आन्दोलन मे आये कार्यकर्ताओ को शांति के समय काम मिलता और वे अधिक साथी जुटा पाते।

जनता की ओर से प्राप्त दान का वे खेती की तरह उपयोग कर उसे बढाते और लोगो मे यह विश्वास पैदा करते कि वे उस दान का अपने लिए कम से कम उपयोग कर उसे रचनात्मक सेवा-कार्यों मे लगाकर उसे अधिक से अधिक बढाते है। चर्खा-संघ के द्वारा लाखो को रोजी देने मे करोड से अधिक की पूँजी नही लगी थी। आज करोडो की लागत से बने कारखाने से कुछ हजार लोगो को भी काम नही दे सकते।

कुछ समय के बाद महाराष्ट्र चर्खा-संघ के एजेण्ट का बापूजी को पत्र मिला कि मेरी वहा जरूरत है, यदि मेरी शिक्षा पूरी हो गयी हो तो मुझे भिजवा दिया जाय।

बापूजी ने मुझे यह बात बताई और कहा कि मेरी कसौटी पर तुम खरे उतरे हो, अब तुम जा सकते हो। यद्यपि बा-बापू के पास मे और भी कुछ समय रहना चाहता था, किन्तु कार्य के दायित्व ने मुझे वापिस लौटने के लिए विवश किया। मैंने बापूजी से कहा—"मेरे लिए आपकी आज्ञा ही मुख्य है।"

मैं जब जिनके पास रहा हूँ तब अपने आपको पूरा समर्पित करके ही रहा हूँ। इसीलिए मैंने बापू से पूछा "मुझे कब जाना है? उन्होने ही समय निश्चित कर दिया। तब मैं बोला "बापू, मै आपके पास कुछ मार्गदर्शन लेने आया था कि मुझे अपने विकास के लिए क्या-क्या करना चाहिए।"

वे बोले—"ऋषभदास, हिमालय की दस हजार फीट से अधिक ऊँची सतह पर वनस्पति नही होती। वह ठण्डक से जल जाती है। जैसे वस्तु गर्मी से जलती है वैसे ही सर्दी से भी। यह ही अपने विषय मे भी समझना। जैसे अहकार से उन्नति मे बाधा पडती है वैसे अधिक विनम्रता से भी। सुपीरियारिटी कांपलेक्स की तरह इनफिरियारिटी कांपलेक्स भी त्याज्य है।"

मेरा वापिस लौटने का समय निकट आया। मै विदा लेने बापू के पास पहुँचा। आखो मे आसू थे। मैं नमस्कार के लिए झुका। बाप

वोले—"ऋषभदास, मैं तुम्हारी वेदना समझता हूं। तुम मेरे पास और अधिक रहना चाहते थे। तुम्हे मुझे छोड़कर जाना अच्छा नही लग रहा है। तुम्हे दु ख हो रहा है, पर मुझे भी कम दु ख नही है। जब शकुन्तला, कण्व ऋषि के आश्रम से जाने लगी तो कण्व को भी शकुन्तला से कम दु.ख नही हुआ था। मेरी भी वही हालत है।" उनका हृदय भर आया, फिर वे वोले, "तुम आश्रम को अपना घर ही समझो। जव भी तुम्हारा जी चाहे खुशी से अपना घर समझ कर आ सकते हो।"

वापू के यह शब्द वहुत धीमे स्वर से उनके मुंह से निकले थे और चेहरे पर जो भाव प्रकट हुए थे, उन्हे मै आज भी नही भुला पाया हू। पैतालीस साल पहले का वह दृश्य आज भी स्मृति-पटल पर उभर आता है। जव वा से विदा लेने गया तो उनकी मन्द मुस्कान के साथ उनके मुँह से निकले "आवजो" शब्द आज भी कानो मे गूंजते है। वा, वापू का यह प्रथम सम्पर्क मेरे जीवन की अमूल्य निधि है।

☐ ☐

१२
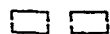
व्यवसाय : निजी और पारमार्थिक

७-८ वर्ष की उम्र मे ही मैं स्कूल से बचे समय मे दूकान के छोटे-मोटे काम करने लग गया था। पढाई मे स्कूल के समय से अधिक समय नहीं देता, फिर भी दर्जे मे, प्रथम रहता था। दूकान मे माल ठीक से लगाना, माल आने पर उसे जाचकर आक लगाना, ग्राहक को माल बताना, उसे फिर व्यवस्थित रखना आदि काम करने लग गया था। दस साल की उम्र मे पिताजी की अनुपस्थिति में माल भी बेचने लग गया था। प्रारम्भ से ही ग्राहक के साथ मीठी बात करना और उसे संतोष देना मेरा सहज स्वभाव था। मैं ग्राहक के साथ सद्-व्यवहार करता और उनको आदरपूर्वक बुलाता। मेरे सद्व्यवहार से ग्राहक खुश रहते थे। पिताजी ने बही-खातो की भी जानकारी दे दी थी और मैं बही-खाते भी लिखने लग गया था। ११ साल की उम्र मे मेरी पढाई पूरी हो गई तब पिताजी के साथ माल खरीदने जाने लगा। आगे की पढाई करूं इसलिए मुझे छात्रवृत्ति भी मिली थी। पर हमारे गांव मे तो चार दर्जे मे आगे की पढाई व्यवस्थित नही थी। स्कूल इन्सपेक्टर मुझ से बहुत खुश थे। उन्होंने कहा—"तुम पढाई के लिए

जलगॉव आओ, मैं तुम्हारी पढाई की व्यवस्था करवा दूँगा। एक रोज रात को घर से जलगॉव चल दिया। सवेरे पिताजी को मालूम होते ही उन्होने पीछा किया और रास्ते से ही मुझे लौटा लाये। उस समय उनकी सात सन्तानो मे से मैं अकेला ही था। मेरे छोटे भाइयो की अकाल मृत्यु हो गई थी इसलिए मुझे पढाई के लिये बाहर भेजने का माता-पिता साहस नही कर सके। रास्ते मे उन्होने मुझे समझाया कि अबसे १० साल पढाई करने पर बी० ए० होगे। बी० ए० होने वाले को ५० रुपये माहवार की नौकरी भी मुश्किल से मिलती है। तुम जानते हो अपने व्यापार से आज भी तुम इससे बहुत ज्यादा कमा सकते हो, इतने वर्ष पढाई मे लगाने से जो खर्च होगा और कमाई डूबेगी इससे तो हमें किसी पढे-लिखे को नौकरी मे रखकर तुम्हारी पढाई घर पर कराना अधिक लाभदायक है। इसलिये तुम घर चलकर दूकान का काम संभालो। पिताजी का कहना ठीक था, व्यापार मे उस समय मे भी अच्छी आमदनी कर सकता था, फिर भी पढाई की इच्छा तीव्र थी। लेकिन पिताजी के आगे मेरी नही चली। घर आने पर उन्होने कपड़े की दूकान मेरे नाम कर, उसका दायित्व मुझे सौप दिया। यह सन् १९१५ की बात है।

अब मे माल खरीदने भी अकेला जाने लगा। माल जलगॉव और बम्बई दो जगहो से लाना होता। हमारे गॉव मे बम्बई की हुण्डी नही मिलती थी, इसलिये कई बार हजारो रुपये साथ लेकर बम्बई जाना पडता था। मुझे अच्छी तरह याद है कि मै पहली बार पॉच हजार रुपये धोती मे बाँधकर बम्बई आया था और करीब दस हजार रुपये का माल खरीद कर लौटा। मैंने जब दूकान का काम संभाला उस समय प्रथम महायुद्ध चल रहा था। जो माल खरीद कर लाया जाता उसके भाव बढते ही जाते थे। इसलिये मुझ मे अधिक माल खरीदने का दोष आ गया। लडाई के जमाने मे तो दिनोदिन भाव बढते रहने से जरूरत से ज्यादा माल खरीदने से लाभ होता रहता था,

मैं कचहरी गया। उस क्लर्क ने मेरे पडौसी का हिसाव तो जांच लिया पर मुझे वह बुला ही नही रहा था। मुझे हिसाव बताकर उसी दिन माल खरीदने बम्वई जाना था। जब उस क्लर्क ने हिसाब जाचने के लिए मुझे नही बुलाया तो मैंने तहसीलदार से शिकायत की और कहा कि मुझे आज शाम बम्बई जाना है। कृपा कर क्लर्क से कहे कि वह मेरा हिसाव जाच ले। तहसीलदार ने वुलाकर क्लर्क से कहा। क्लर्क मन मे नाराज तो हुआ, पर करता क्या? अफसर का हुक्म मानना ही पडा। लेकिन उसने दस प्रतिशत के हिसाब से मुनाफे पर गिनकर टेक्स लगाने का स्टेटमेण्ट बनाया। मैंने कहा कि यह ठीक नही है। जव मेरे पास साल के प्रारम्भ मे कितना माल था, उसकी लिस्ट है, बिक्री-खरीदी का हिसाव है और वर्ष के आखिरी स्टाक की लिस्ट है, तो आपको वही मुनाफा पकड़ना चाहिए जो वहीखातो मे निकलता है। उसने कहा—'नही, हमारी सबके लिए यही मुनाफा गिनने की पद्धति है' मै फिर अफसर के पास गया। अफसर ने मेरी बात मान ली और मेरे कहे मुताबिक मुनाफा गिनकर उस पर टैक्स लगाया गया। परिणाम स्वरूप हमारा टैक्स पिछले साल से भी कम हुआ। याद पडता है १७४ रुपये या ऐसी ही कुछ रकम टेक्स के रूप मे भरने का नोटिस आया, जबकि मेरे पडौसी जिन्होने रिश्वत दी थी उन्हे हम से करीब सौ रुपये ज्यादा टेक्स लगा।

मैंने गाव मे करीब दस वर्ष व्यापार किया और व्यापारी तथा ग्राहक दोनो ही मुझसे सन्तुष्ट थे। व्यापार भी अच्छा चल रहा था। परन्तु व्यापार मे मैं अपना मन पूरी तरह नही लगा सका। देश मे आन्दोलन चल रहा था। नागपुर कांग्रेस मे गया था। तभी से खादी भी पहनने लगा और आन्दोलन से मै अपने आपको अछूता न रख सका। व्यापार पिताजी पर छोड़ बीच-बीच मे आन्दोलन और गाधीजी के कामो मे भाग लेने के लिए कुछ दिन घर छोडकर भुसावल और सावरमती गया। अन्त मे १९२३ मे घर छोडकर खादी के कार्य मे लग

गया। जब घर छोड़ा तब मै जो कुछ था वह पिताजी के पास छोड़कर, सिर्फ पत्नी के बदन पर जो जेवर थे, वे ही लेकर निकला। सर्वप्रथम जलगाव मे खादी की दुकान की। भाई राजमलजी ललवानी से इस कार्य के लिये मैंने चार हजार रुपये कर्ज के रूप मे लिये थे। उन दिनो जलगाव मे आचार्य जवाहरलालजी का चातुर्मास था। वे जैनो मे प्रगतिशील आचार्य थे और खादी के प्रबल समर्थक थे। इसलिए मेरी खादी की दुकान अच्छी चल पडी। उन दिनो जलगाव मे एक दूसरा भी खादी भडार चलता था तथा खादी-बोर्ड की ओर से समिति भी काम करती थी। खादी का काम उन दिनो घाटे का काम समझा जाता था, पर मै तो खादी का काम बिना घाटे के ही चला रहा था। इन्ही दिनो खानदेश मे खादी कार्य को व्यवस्थित करने स्व० जमनालालजी ने दौरा किया, वे जलगांव आये। उन्हे मैने अपने यहां भोजन के लिए बुलाया था। खानदेश के नेता दास्तानेजी और देवकीनन्दन भी साथ आये। जमनालालजी की सलाह से खादी-बिक्री के काम एकत्र कर मेरी देखरेख मे चलाने का निश्चय हुआ। खादी भण्डार बडे पैमाने पर शुरु किया गया। श्री अमृत महादेव जोगी जैसे कुशल विक्रेता के सहयोग से मै जलगाव खादी-भण्डार चलाने लगा। उसमे पहले साल मे कुछ मुनाफा ही हुआ। तो दास्तानेजी ने भुसावल का खादी-भण्डार भी हमे सौप दिया, जो हर साल हजार, आठसौ रुपयो का घाटा करता था।

हम खादी-फेरी, खादी-प्रदर्शनी द्वारा बिक्री बढाने लगे। मेरे साथी जोशीजी खादी लेकर पास-पड़ौस के शहरो मे खादी की फेरी करते। इसी प्रकार खादी लेकर वे अकोला गये थे। वहा किशोरलालभाई मश्रुवाला के बडे भाई नानाभाई मश्रुवाला खादी के बडे प्रेमी थे। वे, रतीलालभाई, ब्रिजलालजी बियाणी आदि ने हमे अकोला मे भण्डार खोलने के लिए कहा। हमने उन्हे पूँजी और एक साल के घाटे की

व्यवस्था के लिए कहा। उन्होने शायद ३०० रुपये तक घाटे की व्यवस्था भी कर दी थी पर घाटा नही आया ओर वह भण्डार स्वावलम्बी वन गया। सेठ जमनालालजी जव जलगाव आये थे, तव उन्होने मुझे पत्नी सहित वर्धा आने का निमंत्रण दिया था। जव १९२५ के दिसम्वर मास मे गांधीजी वर्धा आये तव उन्होने मुझे वहां बुलाया। मै वर्धा गया। वर्धा मे भी सेठजी के मुनीम पूनमचन्दजी वाठिया की देखरेख मे खादी भण्डार चलता था। वहा सेठजी ले गये। मालूम हुआ कि वहा भी भण्डार घाटे मे चलता है। खादी-भण्डार घाटे मे चले यह वात मुझे कुछ अजीव सी लगती थी। पर वास्तविकता यही थी कि उस समय अधिकतर खादी-कार्य सहायता पर चलते थे। वहुत कम खादी-भडार स्वावलम्वी थे। सेठजी ने खादी-भण्डार घाटे मे चलने की वात कही तो मैंने आश्चर्य प्रगट किया, सहसा उनके मुँह से निकल गया—"क्या तुम इसे विना घाटे चला सकते हो?"

मैंने कहा—"विना व्याज पूँजी दीजिए।"

उन्होने विना व्याज के पूँजी ही नही, वल्कि ३ साल तक जगह का किराया भी नही लेने की वात कही तो वह भण्डार भी हमारी व्यवस्था मे आ गया। हमारे अन्तर्गत चलनेवाले भण्डारो मे केवल घाटा ही नही रुका, वल्कि विक्री भी वहुत अधिक वढ गई थी। जिस महाराष्ट्र मे खादी के लिये विरोध था, वह खादी वहा लोकप्रिय होने लगी। उन दिनो ऐसी मोटी और खुरदरी खादी वनती जिसका विकना मुश्किल हो जाता तो हम वडे आदमियो को फेरी के लिए बुलाकर उनसे विकवाते। दशहरा, गांधी-जयन्ती, दीपावली या यात्रा और सभाओ के अवसर पर प्रदर्शनिया लगाते। वहा हजारो रुपयो की खादी विक्री होती। वर्धा के वाद नागपुर के टिकेकरजी की सहायता से सीतावर्डी मे खादी-भण्डार शुरु किया और डा० पटवर्धन की सहायता से अमरावती मे। खादी-भण्डारो के लिये पूँजी का प्रश्न आया तो गाधीजी से प्रार्थना की गई

कि वे महाराष्ट्र का दौरा करे । जहा-जहा वे जावे वहा एकत्र होनेवाली रकम का उपयोग महाराष्ट्र चर्खा-संघ द्वारा खादी-भण्डार खोलने और खादी-कार्य मे किया जाय । गाधीजी ने स्वीकृति दी और १९२६ मे दौरे की शुरुआत गोदिया से हुई । गोदिया मे वापूजी को जो थैली मिली, उससे वहा भण्डार खोला गया । इस काम मे चतुर्भुजभाई जसानी का सहयोग महत्वपूर्ण था । गोदिया-भण्डार भी हमारी व्यवस्था मे चलने लगा ।

गाधीजी से दौरे मे मैंने हर सभा मे खादी-विक्री के लिए ५ मिनिट मागे थे, जिसमे १५० से लेकर २५० रुपये तक की खादी वेच देना था । उन दिनो मे खादी के काम मे इतना तन्मय था कि किस चीज का क्या मूल्य है—यह मैं वस्तु को देखकर ही कह देता चूँकि खादी-भण्डार चर्खा-सघ के नियत्रण मे चलते थे, अत विकी हुई प्रत्येक वस्तु का विल देना आडिट की दृष्टि से आवश्यक होता था । पर प्रत्येक ग्राहक को विल देने मे विक्री वहुत कम होने का संभव देख मै पैसे लेकर वस्तु दे देता और अन्त मे माल के स्टाक से मिलान कर उसी विक्री के हिसाव से विल काट देता । मेरा ऐसा करना गलत है ऐसा मेरे साथियो का कहना था । इसलिए दास्तानेजी को इस विषय मे वापूजी से वात करनी पड़ी । उन्होने हम दोनो की वात सुनकर कहा—"दास्ताने ! चूँकि तुम वकील हो, कानून की दृष्टि से इस वारे मे सोचते हो, वैसे तो मै भी वकील हूँ पर व्यापारी परिवार मे जन्मा हूँ, इसलिए व्यापार की वात जानता हूँ । तुम्हारा कहना ठीक होने पर भी व्यावसायिक दृष्टि से ऋषभदास का करना ही ठीक है, क्योकि यदि वह प्रत्येक वस्तु का विल फाडकर दे तो विक्री वहुत कम होगी । यहा तो थोडे समय मे अधिक काम करना है और वह पहले पैसे लेकर वाद मे चीज देता है, इसलिए उसमे गड-वडी होना सम्भव नही है । माल विक्री का हिसाव एक विल वनाकर करना अनुचित नही है ।"

इस बात का अनुभव पूना मे आया। उस बात को लेकर बापूजी ने दूसरे दिन खादी कार्यकर्ताओ की सभा मे कहा था—"आप मुझसे खादी-कार्य कैसे किया जाय यह जानना चाहते है, इसके लिए मै ऋषभदास की मिसाल देता हूँ। जैसे वह खादी-कार्य को व्यापारिक दृष्टि से करता है वैसा काम होना चाहिये। खादी-कार्य आखिर है तो व्यापार ही। वह उसमे तन्मय हो गया है। मेरे साथ महाराष्ट्र के दौरे मे वह खादी बेचता था। मैने उसे पाच मिनिट का समय दे रखा था। मेरे हाथ मे खादी देता, मै कीमत पूछता वह बिना आंक देखे बोलता, दस रुपये आठ आना। मै रुपये लेकर चीज बेच देता। पर कल आपने देखा होगा कि यहां के कार्यकर्ताओ ने खादी मेरे हाथ मे रखी, मैने कीमत पूछी—वह उस पर मूल्य देखने लगा। इतना समय मेरे पास कहा था? मै चल दिया। ऋषभदास व्यापारी का बेटा है, इसलिए उसको यह काम व्यापारिक दृष्टि से करने मे कठिनाई नही है। इसी तरह कार्यकर्ता तल्लीनतापूर्वक व्यापारिक दृष्टि से काम करेंगे तो निस्सन्देह महाराष्ट्र खादी मे दूसरे प्रदेशो से पीछे नही रहेगा। क्योकि महाराष्ट्र मे तो मधुमक्खियो के छत्ते की तरह लगनशील व परिश्रमी कार्यकर्ताओ का समूह है। यहा कार्यकर्ताओ की कमी नही है, कमी है व्यावहारिक दृष्टि से काम करने की।"

महाराष्ट्र मे जगह-जगह खादी-भण्डार खोलकर फेरी, प्रदर्शनो द्वारा बिक्री काफी मात्रा मैं बढी। यह कार्य १९२७ तक जलगाव मे चलता था फिर महाराष्ट्र मे खादी का उत्पादन चादा जिले मे होने लगा, इसलिये बिक्री केन्द्र वर्धा ले जाया गया और मै वहा गया। उस समय मेरे नियत्रण मे १४ भण्डार विभिन्न शहरो मे चलते थे।

खादी-कार्य के पीछे देश के देहातो मे रहनेवाले लोगो को रोजी देने की भावना थी। इसलिए उसमे मै तथा अनेक कार्यकर्ता बहुत कम, केवल गुजारे लायक लेकर ही काम करते थे। मै उन दिनो ४० रुपया

प्रतिमाह निर्वाह के लिए लेता था। स्वभाव मिलनसार होने से आने-जाने वाले मेहमान रहते थे। इसलिए इसमे से खर्च पूरा न होता तो पत्नी के जेवर वेचकर उससे खर्च पूरा करता था। सेठ जमनालालजी मुझे पुत्र की तरह मानते थे। मेरे सुख-दुख का खयाल रखते थे इसलिये उनका आग्रह था कि मै ४० रुपया महावार से अधिक लूं। एकवार तो उन्होने राजाजी से मेरी शिकायत की, पर मुझ पर धुन सवार थी कि मै कम से कम लेकर अधिक सेवा दूँ। इसलिए उनके प्रस्ताव को भी मैंने स्वीकार नही किया। मेरी वडी पुत्री सौ० विमल का जन्म १९२८ मे हुआ। तव खर्च की कमी न पडे इसलिए सेठजी ने पूज्य जाजूजी से कहा था कि मुझे २०० दोसौ रुपये दुकान से दिलवा दे। उन दिनो मै जाजूजी के नियंत्रण मे काम करता था। उन्होने मुझे दो सौ रुपये की चिट्ठी दी। मैने देखा "वच्छराज-कोष' से दो सौ रुपये की सहायता के लिये वह चिट्ठी थी। मै रुपये नही ले सका, चिट्ठी वापिस दे आया और एक जेवर वेचकर काम चलाया।

खादी के साथ मेरी तन्मयता की एक घटना यहा देने जैसी है। उन दिनो खादी वहुत इकट्ठी हो गई थी। फेरी करके उसे वेचना जरूरी था। इसलिए मै अपने दो साथियो को ले अमरावती गया। हम लोग कंधो पर खादी रख घर-घर फेरी करते थे। एकरोज सवेरे दैवयोग से हम वेश्याओ के मोहल्ले मे पहुँच गये। खादी के गट्ठर पीठ पर लादे और खादी के नमूने हाथ मे लिये हम जा रहे थे। उन वहिनो ने हमे आग्रहपूर्वक वुलाकर हमसे खादी खरीदी। पर उसके वाद कोई ग्राहक नही मिला। कोई खादी खरीदता ही नही था। साथियो के मन मे यह वात जम गई कि आज प्रथम "वौहिनी" वेश्या के हाथ से हुई इसलिए हमे ग्राहक नही मिल रहा है। मैं यह वात उनके मन से निकाल देना चाहता था, इसलिएं जहां धनवान और वडे लोग रहते है, उस क्षेत्र मे गये। हम पजावराव देशमुख के यहां भी पहुँचे। उन दिनो वे कांग्रेस के

विरोधियो मे से थे। उन्होने भी मुश्किल से २-४ रुपये का खद्दर लेकर पिण्ड छुडाया। पता चला शहर से दूर ११ मील पर केम्प मे एक सिन्धी इंजिनियर है, वह खादी-प्रेमी है। हम ७॥ वजे रात को वहां पहुँचे। उन्होने सर्वप्रथम हमे खाने को पापड और पीने के लिए पानी दिया। वाद मे खादी देखी और करीव दो सौ रुपये की खरीदी। हमने ६॥ वजे खद्दर देकर विल दिया और चेक लिया। सव थककर चूर-चूर हो रहे थे। वापिस खद्दर के गट्ठर पीठ पर ले जाने की शक्ति हममे नही वची थी। हमने इंजिनियर से कहा कि हम खादी अभी यहा छोड जाते है, सवेरे ले जायेंगे। उन्होने हमे खद्दर रखने के लिये रूम और ताला दिया। वही खद्दर रखकर ताला लगाकर हम निवास पर लौटे। मेरे साथी वता रहे थे कि नीद मे—मैं थकावट के कारण कराहते हुये—मां मां हे प्रभू! हे प्रभू! वडवडा रहा था। यही स्थिति मेरे अन्य साथियो की भी थी।

उन दिनो अनेक लोग इस प्रकार गाधीजी के रचनात्मक कामो मे निस्वार्थभाव से लगे हुए थे। तभी अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थिति मे भी खादी का कार्य वढा और उसका विस्तार हुआ। उन दिनो देश के लिए त्याग करने की भावनायें अनेको मे पाई जाती थी।

मैंने जो कुछ कार्य किया उससे मुझे जो लाभ और शिक्षा मिली, वह अद्भुत थी। परिश्रम की आदत और कठिन परिस्थिति मे काम करना, अनेक समस्याओ को सुलझाना आदि सीखा। वडे-वडे लोगो से सम्पर्क हुआ, उन्होने मुझे वहुत कुछ दिया, इसलिए दिखाई देनेवाला पारमार्थिक व्यवसाय व्यक्तिगत दृष्टि से भी मेरे लिये वहुत लाभप्रद हुआ।

१९२९ की वात है। पारिश्रमिक लेकर काम करने के प्रति अरुचि हो गई। वात यह थी कि मैंने वर्षों तक खादी का एकनिष्ठा से पूरी शक्ति के साथ कार्य किया। एक-दो साथी उस कार्य मे विना कुछ पारि-

श्रमिक लिये जब काम करने लगे तो देखा कि उन्हे योग्यता के बिना भी पारिश्रमिक लेकर काम करनेवालो से अधिक प्रतिष्ठा दी जाती है, उनकी बात ज्यादा प्रभावशाली होती है। तब मेरे मन ने विद्रोह किया और मैंने पारिश्रमिक लेकर काम न करने का विचार किया। मैंने अपनी योजना सेठ जमनालालजी के सामने रखी। वे मेरी कार्यशक्ति से मुझसे भी अधिक परिचित थे। उन्होने सम्मति दी। योजना थी कि निर्वाह के लायक कमाई कर शेष समय सेवाकार्य मे लगाया जाय। मेरा खयाल था कि सादगी और स्वाभिमानपूर्वक परिवार की जिम्मेदारियां निभाने के लिये व्यवसाय मे मेरे समय का बहुत कम हिस्सा देना काफी होगा और काफी समय मैं सेवाकार्य को दे सकूँगा।

मेरी यह योजना तब से आजतक इसी प्रकार चल रही है। मैं इस योजना के कारण अधिक धन संग्रह भले ही न कर पाया होऊं परन्तु परिवार की जिम्मेदारी ठीक से निभाई और परिवार के लोग स्वाभिमानपूर्वक सादगी किन्तु सुख-सुविधा पूर्वक रह सके।

बीच-बीच मे कई बार उतार-चढाव की स्थिति आयी पर भगवान ने जिस तरह से निभा दिया उसके लिए कृतज्ञता प्रगट किये बिना नही रह सकता। मेरे जीवन के व्यवसाय क्षेत्र का प्रथम अध्याय १९२९ मे पूरा होता है। दूसरा अध्याय १९३० से शुरू होता है, पर नमक सत्याग्रह तथा कानून-भंग आन्दोलन शुरु होने से वह अध्याय १९३४ के बाद शुरु हुआ।

□ □
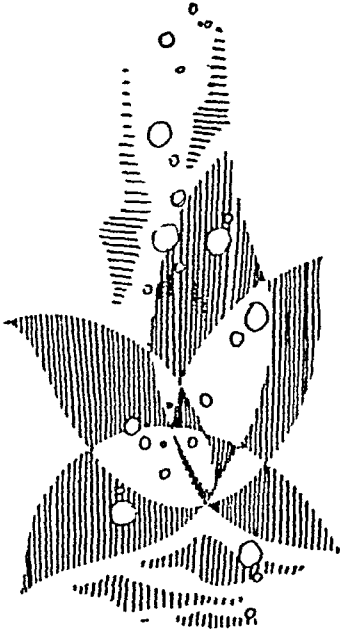
१३

नमक सत्याग्रह

यद्यपि १६२४ से गांधीजी और अनेक साथी केवल खादी, हरिजन-सेवा, हिन्दी-प्रचार आदि रचनात्मक कामों मे लगे हुए थे तथापि १६२१ मे स्थगित आजादी की लडाई को आगे बढाने की ओर से महात्माजी उदासीन नही थे। वे उसकी तैयारी कर रहे थे और अवसर देख रहे थे। साइमन कमीशन मे ब्रिटिश सरकार ने एक भी भारतवासी को नही लिया, इससे भारत मे सर्वत्र क्षोभ का वातावरण पैदा हो गया था। भारत के राष्ट्रीय नेताओ ने उस कमीशन का बहिष्कार करने का निश्चय किया। जहां-जहां साइमन कमीशन गया, उसके विरोध का बडी दृढता से मुकाबला किया गया। जुलूसो पर लाठिया बरसायी गयी, जिसमे नेताओ को भी नही बख्शा गया, उन्हे पीटा भी गया और लाला लाजपतराय जैसे महान नेता की तो लाठी की मार से ही मृत्यु हुई और जवाहरलालजी को बचाने मे गोविन्दवल्लभ पन्त ने ऐसी चोट खाई कि उनका आधा अंग बेकार हो गया। देश का राजनैतिक वातावरण गरम हो उठा। क्रांतिकारी नवयुवक हिंसा का पथ अपनाये हुये थे।

गाधीजी भी देश की नाडी टटोल रहे थे। वे ऐसा आन्दोलन छेड़ना चाहते थे कि जिसमें सारी जनता सहजभाव से भाग ले। वहुत सोच विचार के वाद नमक पर टेक्स उठाने की वात सरकार से कही गयी और घोषणा की गई कि यदि नमक पर से यह कर नही उठाया गया तो कानून-भंग किया जायेगा और नमक वनाया जायेगा।

इस मामूली सी दिखनेवाली वात पर काफी चिन्तन-मनन हुआ। महात्माजी ने अपने साथियो और सभी आश्रमवासियो के साथ गहरी चर्चा की। तय हुआ कि नमक-कानून तोडने के लिए गाधीजी सावर-मती आश्रम से सूरत जिले के दाडी गाव तक पदयात्रा करें। उस समय गाधीजी ने कहा "यह प्रयाण स्वराज्य प्राप्ति के लिए है, और स्वराज्य प्राप्ति किये विना मैं आश्रम मे वापिस नही लौटूँगा।"

बापूजी ने आश्रमवासियो से स्पष्ट कहा "जिनकी सर्वस्व त्याग की तैयारी हो उन्हे ही इस सत्याग्रह मे शामिल होना चाहिए। शामिल होने के पहले अच्छी तरह सोच विचार कर लेना चाहिये और घरवालो से भी सलाह मशविरा कर लेना चाहिये। जिनकी अपने आपको होम देने की तैयारी हो, केवल उन्हे ही अपने नाम लिखाने चाहिये। जिनकी पूरी तैयारी न हो वे हिम्मत के साथ निस्संकोच साफ-साफ इंकार कर दें, यह मुझे अच्छा लगेगा।"

वापूजी के साथ सत्याग्रह मे शामिल होनेवालो की सूची वनने लगी। उन्होने सभी से इसका निश्चय करने को कहा "वे भी स्वराज्य लेकर ही घर लौटेंगे, जव तक स्वराज्य नही मिलेगा तवतक वे स्वराज्य के कामो मे ही लगे रहेंगे।" इस पदयात्रा मे भाग लेनेवाले ७९ लोग थे। कूच १२ मार्च को होनेवाला था। वातावरण मे बडी उत्तेजना थी। लोगो का अनुमान था कि बापूजी को इस महाभि-निष्क्रमण के पहले ही पकड लिया जायगा। उन्हे एक भी कदम आगे वढने ही नही दिया जायगा। ११ मार्च की शाम की प्रार्थना

अद्‌भुत थी। सावरमती के तट पर जनसागर उमड पडा था। वापूजी ने खडे होकर ज्योही संकेत किया कि भीड निस्तब्ध हो गयी। एकदम गम्भीरता छा गयी। उन्होने प्रार्थना के वाद कहा—"या तो मैं स्वराज्य लेकर वापिस लौटूँगा, अन्यथा इसे मेरी अन्तिम प्रार्थना समझे।" लोगो की आखो मे आसू थे। उस रात कई लोग घर नही गये। सवेरे वापू जल्दी निकलनेवाले थे। लोगो को डर था कि पुलिस उन्हे पकड ले जायगी और वे उनके अंतिम दर्शन से वंचित रह जायेगे। रास्तो पर और पेडो पर लोगो की भीड थी, पुलिस नही आयी। दूसरे दिन सवेरे की प्रार्थना के वाद गांधीजी ने दाडी-यात्रा आरम्भ की। राम के वनवास गमन जैसा दृश्य था। हजारो लोग उनके पीछे-पीछे दौडे चले जा रहे थे।

गांधीजी ने ६ अप्रेल को सारे भारत मे जगह-जगह सत्याग्रह करने का आदेश दिया था। हर जगह सत्याग्रह छावनिया वन गयी थी। जमनालालजी को वम्वई उपनगर का दायित्त्व सौपा गया और विलेपार्ले की राष्ट्रीय शाला मे छावनी पडी। लोगो मे उत्साह तो था ही, पर उपनगर मे जमनालालजी ने अच्छे साथी जुटाकर अच्छा संगठन वना लिया था। विलेपार्ले की छावनी के प्रथम सेनापति जमनालालजी और मंत्री किशोरलालभाई मश्रुवाला तथा गोकुलभाई भट्ट वने। ६ अप्रेल को सत्याग्रह हुआ और वे पकड लिये गये। मैं उन दिनो फतेपुर गाधी सेवा संघ की ओर से ग्रामसेवा का काम कर रहा था। सत्याग्रह की वात चली तो मैंने जमनालालाजी को पत्र लिखा और विलेपार्ले आने की इच्छा व्यक्त की। पत्र का उत्तर पाते ही मैं घर से चल पडा। पत्नी साथ थी। मेरी सवसे वडी लडकी विमला उस समय डेढ साल की थी। वहा आकर मैं जानकीदेवीजी के साथ काम मे लग गया। पहले मुझे छावनी के हिसाव का काम सौपा गया। मैं वही करने लगा। जमनालालजी के वाद वालासाहव खेर सेनापति और स्वामी आनन्द और

वान्द्रेकर मंत्री वने। काम वडे उत्साह से आगे वढा।' स्वयंसेवको की टुकडिया जगह-जगह कानून तोडकर नमक वनाने लगी। कानून भंग करके वनाया हुआ वह नमक लोग वहुत अधिक, कीमत दे-देकर नीलाम मे खरीदने लगे। जो लोग नमक वनाते या वेचते उन्हे पकड़ कर जेल पहुँचा दिया जाता। स्वयंसेवको और अच्छे, स्वयंसेवको की भर्ती की समस्या छावनी के कार्यकर्ताओ के समक्ष आयी। मेरा महाराष्ट्र तथा विदर्भ मे काफी परिचय था। जहा-जहा समुद्री-किनारा नही है वहा नमक कैसे वनावे, महाराष्ट्र तथा विदर्भ के कार्यकर्ताओ के समक्ष यह प्रमुख समस्या थी, वह मेरे द्वारा हल हुई। महाराष्ट्र व विदर्भ से काफी स्वयंसेवक आये। धन की तो वहा जरा भी कमी नही थी। छावनी तथा सत्याग्रह के लिए लोग वडे उत्साहपूर्वक धन दे रहे थे। विलेपार्ले की छावनी मे व्यवस्थित काम चल रहा था। व्यवस्थित टुकडिया नमक लाने के लिए नमक पकाने के स्थानो पर जातीं। वम्वई के आसपास कई स्थान थे जहा नमक वनाया जाता था। वहा से स्वयंसेवक नमक लाते। पुलिसवाले उन्हे मारते या पकड-पकड-कर जेल ले जाते। स्वामी आनन्द, खेर और वांद्रेकर पकडे गये। तव धर्मानन्दजी कौसाम्वी सेनापति वने और मार्कण्डेराय मेहता और मैं मंत्री वने।

जव-तक पुलिसवाले स्वयंसेवको को जेल नही ले जाते थे तो उन्हे काम मे वनाये रखने के लिए हमने छावनी मे विविध प्रवृत्तियां शुरू की। जगह-जगह छावनी की शाखाएं खोलकर वहा सत्याग्रह के साथ-साथ रचनात्मक कार्य भी शुरू किया। छावनी मे वहिने भी काफी थी, जिनका नेतृत्त्व गोमती वहिन मश्रुवाला और जानकीदेवी वजाज कर रही थी। हमारा कार्यक्षेत्र उपनगर से वढकर थाना जिले के घनसोली विभाग तक फैल गया। नमक-सत्याग्रह के साथ-साथ ताडी और दारू की दुकानो पर धरना भी दिया जाने लगा। जगह-जगह सभाए होती।

हमने अच्छे वक्ता जुटाये थे। वे वोलते और गिरफ्तार कर लिए जाते। माता जानकीदेवीजी मे भी अद्‌भुत उत्साह था। वे हिन्दी, गुजराती, मराठी और मारवाडी भाषा मे व्याख्यान देने लगी। उनके व्याख्यानो से काफी जोश फैला। विलेपार्ले मे केदारनाथजी, वैरिस्टर केशवराव देशपाडे जो वडौदा राज्य के वडे अधिकारी थे और जिन्होने गंगानाथ विद्यालय, काका साहव, मामा फडके आदि की सहायता से चलाया था, धर्मानन्दजी कैसाम्वी, सूरजी वल्लभदास, कमला वहिन सोनावाला, रमणीकराय मेहता, दिलखुश दीवानजी, आचार्य रवडे आदि से मेरा घनिष्ठ सम्पर्क आया और काम करने का अच्छा अवसर मिला। छावनी को अन्त तक पूज्य नाथजी का मार्गदर्शन मिलता रहा। स्वयसेवको मे वैश्य विद्याश्रम सासवणा के विद्यार्थी विशिष्ट थे। उन्होने विद्याश्रम मे वहुत अच्छी शिक्षा और राष्ट्रीय विचार पाये थे। अनुशासन मे रहकर उन्होने वहुत प्रशंसनीय काम किया। क्योकि मैं मराठी अच्छी वोल लेता था, इसलिए इन स्वयंसेवको के साथ मेरी आत्मीयता वहुत अधिक थी और मैं स्वयसेवको का अधिक ख्याल रखता था।

एकवार एक सज्जन जो छावनी को काफी आर्थिक सहायता देते थे, वोले—जो स्वयंसेवक देहातो से आये है और जिन्हे दूध पीने की आदत नही है उन्हे तो दूध न दिया जाय मगर जो शहर के है, जिन्हे दूध पीने की आदत है उन्हे दूध दिया जाय। यह बात मुझसे वर्दाश्त न हो सकी। मैंने कहा—"जो भोजन छावनी मे वनता है वही सवके लिये समान रहेगा। यहा अच्छा भोजन खाने के लिए स्वयसेवक नही आये। वे आये है राष्ट्र के लिए त्याग करने, कष्ट सहने और प्राण देने। इसलिए हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि जो हम खाते है वही उन्हे खिलावे।" स्वयंसेवको से मैंने वड़ा प्रेम पाया। वे चाहे जैसी जोखिम उठाने के लिए तैयार रहते थे। पुलिस उनकी मुट्ठियो से नमक छुडाने

त्राहि त्राहि मच गई। स्वयंसेवक पुलिस के डण्डो के साथ-साथ घोड़ों की टापों से भी घायल होने लगे। १० बजे तक लगभग ७०० घायलो को स्ट्रेचर पर छावनी में लाया गया। छावनी का मैदान घायलो से भर गया। यो चिकित्सा की व्यवस्था तो थी पर इतने अधिक घायल एक साथ आ गये थे कि जिसको जो प्रतिकार सूझा वही करने लग गया। अधिकाश घायलो के सिर और बदन से रक्त बह रहा था।

इस धावे के सरदार थे श्री नरहरिदासभाई परीख। उनके सिर पर ऐसी चोट पडी थी कि खून से लथपथ थे। यह दृश्य देखते ही केन्द्रीय असेम्वली के स्पीकर विट्ठलभाई पटेल की गम्भीर मुद्रा और अधिक गम्भीर वन गयी। सेठ कस्तूरभाई भी स्तब्ध खडे थे। नरहरि भाई को होश आते ही वे फिर से धावे के लिए तैयार हो गये। समय पूरा हो जाने से उसदिन सत्याग्रह वन्द रखा गया।

विलेपार्ले टुकडी के सरदार भाई ढवण थे। विलेपार्ले टुकड़ी ने अच्छी वीरता दिखाई थी। ढवणजी को जब स्ट्रेचर पर लाया गया तो वे वेहोश थे। जानकीदेवी, जो पानी का घडा लेकर खडी थी, उनकी आखो पर पानी छिड़कने लगी। होश मे आते ही भाई ढवण अपनी पत्नी की ओर इशारा कर जानकीदेवीजी से वोले—"जानकीवाई, याच्या कड़े लक्ष्य ठेवा" और वोले—"मैं दुबारा जाऊँगा।" वे इसी तैयारी के साथ आगे बढ़ रहे थे कि वापिस नही लौटेगे। यो तो सभी ने अद्‌भुत वीरता दिखाई थी पर मोहन नामक स्वयंसेवक ने तो कमाल ही कर दिया था। प्रथमबार जब वह आगे वढा तो पुलिस ने उसे तार की वाड के परे फेक दिया। वह फिर आगे वढा तो पुलिस ने ऐसी मार मारी कि उसकी अंगुलियो की हड्डियां टूट गयी। जब तीसरी वार आगे बढ़ा तो पुलिस ने ऐसी मार मारी कि उसका हाथ ही टूट गया और कमर मे करारी चोट आयी।

हमने लोगो को यह कहते सुना है कि आजादी प्राप्त करने मे हमने

खून नही वहाया, स्वतंत्रता देवी को पर्याप्त मात्रा मे खून नही चढाया गया। ऐसा कहनेवाले वे ही लोग है जिन्होने आजादी के लिए होनेवाले इन आन्दोलनो मे प्रत्यक्ष भाग नही लिया। भाग भी लिया, पर लोगों के वलिदानो को प्रत्यक्ष नही देखा था। दूसरे लोग यह कहने का साहस नही कर सकते कि भारत ने आजादी प्राप्त करने के लिए कुछ बलिदान नहीं किया। १९३० की लड़ाई मे जो एक तरह की अहिंसक लडाई थी छोटे-वडे सभी स्त्री-पुरुपो ने अहिसक रहकर भी जो सहन किया था वह अद्‌भुत था। सामान्य लडाई मे दोनो पक्ष एक दूसरे को हराने के लिए शक्ति आजमाते है। दाव-पेच लडाते है। दोनो पक्ष पूरी शक्ति के साथ एक-दूसरे से लड़ते है। पर यहा तो एक पक्ष शक्ति भर आक्रमण करता था। दूसरा उसे मात्र सहन करता था। लडाई अजीव थी, किन्तु व्याव-हारिक दृष्टि से अल्प खून खरावी से ही अधिक परिणाम लानेवाली थी। जोश मे होश खोकर मारनेवाले स्वयंसेवको को पीटते अवश्य थे, पर उनकी आत्मा जाग्रत होती तो वे रोते भी थे।

मुझसे विलेपार्ले छावनी मे जो कुछ काम वन पडा उसका अधिकाश श्रेय बुजुर्गों के मार्गदर्शन, जमनालालजी, जानकीदेवीजी की प्रेरणा और साथियो के सहयोग का है, निस्सदेह विलेपार्ले की छावनी ने सर्वत्र अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। वहा के काम की सराहना पं० मोतीलालजी जैसे नेता ने भी की थी। उस समय मेरी उम्र केवल २७ साल की थी। पंडितजी के सम्मुख तो मै वच्चा ही था, पर आम सभा मे उन्होने कहा था कि—"देखो, इस लड़के ने कैसी वहादुरी से यहा का काम चलाया है, मै इसका अभिनन्दन करता हूँ।"

जमनालालजी को भी मेरे काम से सन्तोप था जिसे उन्होने जानकी देवीजी को लिखे पत्रो मे तथा जेल मे मिलने आनेवालो से वातचीत मे प्रगट किया था। मैं जगह-जगह भापण भी देता था। और वे काफी जोशीले भी होते थे और क्यो न देता, जब वहिनो मे भी जोश था। मैं एक युवक कैसे पीछे रह सकता था।

के लिए वडी वेरहमी से मुठ्ठी पर डण्डे मारती तो मार खाते, पर नमक नही छोडते थे। अहिसक लड़ाई का यह अद्भुत दर्शन था।

देशपाण्डे जी और कौसाम्वीजी का सम्पर्क पूज्य नाथजी के सम्पर्क की तरह मेरे लिए अत्यन्त लाभप्रद रहा। उनसे कई वातें सीखने को मिली। कौसाम्वीजी की आपवीती और बुद्धलीला संग्रह पढे रहने के कारण उनके प्रति वचपन से ही आदर था। पर प्रत्यक्ष सहवास मे उनकी सरलता, नम्रता, सादगी और विद्वत्ता से अत्यन्त प्रभावित हुआ। स्पष्टवक्ता थे, भाषा मे माधुर्य था। वे रूसयात्रा करके लौटे थे। इसलिए वहा के विचारो का उनपर उस समय अधिक प्रभाव था। धर्मानन्दजी पकडे गये तो अब्दुल्ला सेठ सेनापति वने। वड़े भले स्वभाव के थे। मुस्लिम व्यापारी थे।

हमारे स्वयसेवको की वहादुरी की कीर्ति चारो ओर फैल गयी और जव धारासणा मे नमक के डेपो लूटने का कार्यक्रम वनाया गया तो वहा एक टुकडी वैश्य विद्याश्रम के आचार्य ढवण के नेतृत्त्व मे भिजवाने का निश्चय हुआ। स्वयंसेवक जानते थे कि वहा जाना मौत का सामना करना था। सिर फुडवाना, अपने हाथ पैर तुडवाकर आना तो निश्चित्त था फिर भी वहा जाने के लिए स्वयसेवको मे होड लग गई। निश्चय किया गया कि सशक्त स्वयंसेवको को ही भेजा जाय। सवेरे की गाडी से स्वयंसेवक जानेवाले थे। जानकीदेवी जी को आशीर्वाद देने के लिये कहा गया। वे वोली "भाईयो, जीतकर आओगे तो अमर हो जाओगे और मरोगे तो आकाश के तारो की तरह चमकोगे।"

उन्होने आवेश मे तो यह कह दिया, पर वाद मे बेचैन हो गयी। कहने लगी "मैंने स्वयसेवको को जोश दिलाने के लिए ऐसा कह तो दिया पर वाद मे दु:ख हुआ, क्या मेरा कमलनयन इस टुकडी में होता तो भी मेरे मु ह से यह शब्द निकलते ?"

उनसे विलेपार्ले नही रहा गया। वे वोली ''''''अपने को भी धारापणा चलना चाहिए।" जानकीदेवीजी के साथ सेठजी की वहिन केशरवाई पोद्दार थी और मैं भी था। हम लोग रात की गाडी से चले। वलसार उतरे और धाराषणा के लिए मुंह-अंधेरे निकल पडे। अधिक लोग धारापणा न पहुँच सके इसलिए जगह-जगह पुलिस का पहरा था। तागेवाला होशियार था और साथ मे स्त्रिया थी इसलिए किसी न किसी तरह हम ६ वजे से पूर्व धाराषणा पहुँच गये।

वहा हजारो की भीड थी। स्वयंसेवको को धारापणा नमक डेपो पर हमला वोलने का आदेश दिया गया और साथ मे जो कटीले तार नमक डेपो के चारो ओर लगाये गये थे उन्हे काटने के लिए औजार दिये गये और साथ मे नमक भर भर कर लाने के लिए थैलिया भी दी गयी। श्री सरोजनी देवी और श्री अव्वास तैयवजी ने स्वयसेवको को सम्वोधन किया और स्वयंसेवको की टुकडिया रवाना हो गयी। उधर पुलिस को भी डण्डे लेकर निहत्थे स्वयसेवको की टुकडियो के सिर फोडने के लिये तैयार किया गया था। उनका सरदार था आटिया नामक पारसी अफसर जो क्रूरता के लिए विख्यात था। क्रूर सिपाहियो को छाटकर उन्हे शराब पिलाई गई जिससे वे निहत्थे स्वयसेवको को वेरहमी से पीट सके। ज्यो ही स्वयसेवक आगे बढे, सिपाहियो ने जानवरो की तरह उन्हे वेरहमी से पीटना शुरू किया। अधिकतर स्वयंसेवक डण्डा खाते ही बेहोश हो-हो जाते। जो बेहोश नही होते वे आगे वढते। बेहोश स्वयंसेवको को स्ट्रेचर पर लिटाकर लाने की भी व्यवस्था थी। उन्हे स्ट्रेचर पर लिटाकर लाया जाता। कुछ स्वयंसेवको की वेहोशी दूर होते ही वे फिर दौड पडते। डण्डो की भयानक मार के वावजूद स्वयंसेवक आगे वढते जाते। तब पुलिस के मुखिया ने उन पर घुडसवारो को दौडने का आदेश दिया। घुडसवार पुलिस ने स्वयसेवको पर ऐसा भयानक हमला किया कि चारो ओर

यह सव होते हुए भी मेरे सम्वन्ध में कुछ लोगो मे एक गलतफहमी हुई। साथियो, मित्रो और नेताओ का कहना था कि मैं पीछे रहकर आन्दोलन चलाऊं। गिरफ्तार होकर जेल जाने की जल्दी न करूं। वाहर रहकर काम करने मे उस समय अनेक कठिनाईयां थी और कठिनाईयो से घवराकर जेल जाने की उत्सुकता मैं उस समय इसलिए भी नही दिखा सका कि जमनालालजी का कहना था कि "यदि मुझे यह समाचार मिले कि तुमको गोली लगी और तुम्हारा वलिदान हुआ है तो मुझे अधिक खुशी होगी।" इसीलिए मै वाहर रहकर ही जोखिम के काम करता रहा। विलेपार्ले की छावनी का काम सरकार चालू रहने देगी यह सम्भव नही था। इसलिए वम्वई रहकर काम करने लगा। कुछ मित्रो ने इसे मेरा डरपोकपन समझा। सम्भव है कि मेरे द्वारा हुये काम ने मेरी प्रतिष्ठा वढा दी हो। इससे कुछ मित्रो के लिए ऐसा प्रचार करना आवश्यक हो गया हो। पर मै निश्चिन्त था, क्योकि देश के लिए अधिक कष्ट सहने और त्याग करने की उस समय मुझमे प्रवल भावना थी और वैसा करने की उत्कट इच्छा। उपयुक्त समय आने पर जव उससे भी कठिन स्थिति में मेरे कुछ साथी मुझे जेल मे मिले तो उन्हे आश्चर्य हुआ। मेरे और आचार्य रवडे के भापणो के लिए हम दोनो को एक साथ पकडा गया था और मैं थाना जेल मे जनवरी १९३१ तक करीब चार महीने रहा। जेल-जीवन मेरे लिए अत्यन्त लाभदायक और हितकारी सिद्ध हुआ।

□□
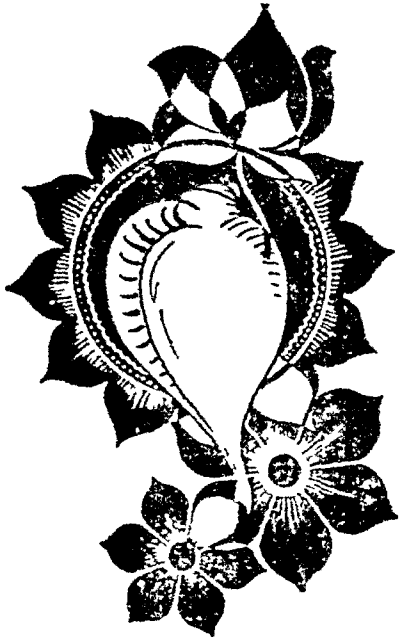
१४

ग्रामसेवा और १९३२ का सविनय कानून-भंग आन्दोलन

नमक सत्याग्रह मे भाषण देने के लिए थाणा मे मुझे और आचार्य रवडे को छह मास की सजा हुई और हमको थाणा जेल मे ले जाया गया। आचार्य रवडे तिलक राष्ट्रीय विद्यालय पूना के प्रिंसिपल थे। हमे थाणा जिले के जिस देहात मे व्याख्यान देने के लिये सजा हुई थी उसमे वे वक्ता थे और मैं सभापति।

थाणा जेल मे प्रवेश करते ही वाहर आन्दोलन चलाने की चिन्ता से मुक्ति पाकर जेल मे आराम से रहने को मिल गया। हमे 'वी' क्लास मिला था। थाणा जेल मे कताई, स्वाध्याय और जेल मे आये अन्य सत्याग्रहियो से वातचीत, यही कार्यक्रम रहता था। यहा जो भी समय वीता वह आन्दोलन के अति श्रम की दृष्टि से वडा ही आरामदायक और शिक्षाप्रद था। परन्तु पूरे छह महीने जेल नही भुगतनी पडी, गांधी-अर्विन समझौता हो जाने के कारण साढे चार महीनो के बाद हम रिहा हो गये। मैं रिहा होते ही गाव मे जाकर ग्रामसेवा के काम मे लग गया।

विलेपार्ले छावनी मे कई स्वयसेवको से मेरा अत्यन्त निकट सम्पर्क था और वे आत्मीय से बन गये थे। इसलिए कुछ स्वयंसेवको को मै मेरे साथ फतेपुर गाव मे ग्राम-सेवाकार्य के लिए ले आया। तांड-गुड कार्य के प्रमुख कार्यकर्ता गजानन नाईक, वालकृष्ण कोलते, नागवेकर, खानविलकर आदि कई कार्यकर्ता मेरे साथ काम करने लग गये थे। हम ग्रामसेवा मन्दिर के द्वारा गाधीजी द्वारा निर्दिष्ट विभिन्न रचनात्मक कार्य करने लगे। चूँकि देहातो मे स्वास्थ्य का प्रश्न उन दिनो वडा ही विकट था। डाक्टर पूरी तहसील मे २-३ स्थानो पर ही थे। १२५ गावो मे स्वास्थ्य सम्वन्धी इतना अज्ञान था कि संक्रामक रोग आते ही सैकडो लोग बिना उचित उपाय के मर जाते थे। विशेषत वीमारी के मौसम थे—वारिश शुरु होने के वाद आपाढ एव श्रावण और वर्षा के वाद आश्विन तथा कार्तिक के महीने। आपाढ व श्रावण मे दस्त, पेचिश, हैजा तथा टाइफाइड और आश्विन कार्तिक मे सर्दी, जुखाम, मलेरिया, इंफ्लुएंजा आदि वीमारिया होती थी। हम इन वीमारियो के उपचार और दवाइयो की जानकारी लेकर वम्बई के मित्रो से औषधिया मगवाकर वीमारो को मुफ्त दवाइया बाटते थे। इससे लोगो को काफी राहत मिली। सवेरे ८ से ११ वजे तक वीमारो का ताता लग जाता था। ग्रामसेवा मन्दिर के लिए स्थान मेरे मित्र श्री धनराजजी भरडेचा ने दिया था। नीचे सस्था चलती थी और ऊपर की मंजिल मे मैं रहता था। उस समय हम ४-५ व्यक्ति काम करते थे। गावो मे चिकित्सा सहायता के अतिरिक्त चर्खा-कताई, वाचनालय, व्यायामशाला, अछूतोद्धार आदि भी थे। गाव के कई लडके ग्रामसेवा मदिर मे चलने वाले कामो मे योगदान देते थे। सबेरे-शाम प्रार्थना होती थी।

हम इन प्रवृत्तियो के साथ-साथ काग्रेस के विचारो का प्रचार भी करते थे। काम करते समय अनुभव हुआ कि ग्राम-सुधार का काम आसान नही है। लोगो मे आलस्य, अविश्वास, फिजूलखर्ची, मत्सर और चरित्रहीनता काफी मात्रा मे घर कर रहे है और उसे कम करने

के लिए वर्षों तक सतत प्रयत्न आवश्यक है। हम अछूतोद्धार के लिए भी प्रयत्न करते थे। उस समय लौनी नामक गाव मे गरीबदास नामक हरिजन साथी मिला था जो बहुत ही भला और सात्विक वृत्ति का वारकरी सम्प्रदाय का भक्त था। उसे बुनाई का काम सिखाने तथा खादी बुनाई के लिए कर्घा भी खरीदकर दिया था। महाराष्ट्र मे वारकरी लोग तुलसी की माला गले मे पहनते है और विठोवा के भक्त होते है। वे मद्य-मांस का सेवन नही करते। गरीबदास मेरे जामनेर जाने पर वहा रहने आये और वहा हरिजन छात्रालय के व्यवस्थापक का काम करने लगे थे। मैं जामनेर आनेपर भी हरिजन सेवा के काम मे अधिक दिलचस्पी लेने लगा। वहा रहने वाली केशर नाम १८ साल की युवती जो पढी लिखी थी, पर इसका पति अशिक्षित था और उससे मारपीट करता था। इसलिए उससे तलाक दिलवाकर उसे वर्धा महिलाश्रम मे पढने भेजा और मैं उसका पालक बना। उसने वहां काफी तरक्की की और उसका विवाह सौराष्ट्र सवर्ण सर्वोदयी कार्यकर्ता से हुआ।

यद्यपि हम गाव के लोगो से बिना कुछ लिये सेवा करते थे। यहा चलनेवाला काम गाधी सेवा सघ की ओर से था। गाव पर किसी प्रकार बोझ न डालकर भी हम ग्रामवालो को ग्राम-सुधार के कामो मे विशेष रूप से आकर्षित नही कर पाये। गावो के बारे मे साहित्यिक ऐसी कल्पना देते है कि गाववाले बहुत सरल, सीधे, चरित्रशील, भले और परोपकारी होते है पर ग्राम्यजीवन मे प्रवेश करने पर अज्ञान, आपसी झगडे, दलबंदिया, चरित्रहीनता, व्यसन, फिज़ूलखर्ची, मत्सर आदि दुर्गुणो के दर्शन हुए। गन्दगी का तो कोई ठिकाना ही नही था। गाव से बाहर जाते समय नाक दबाये बिना बाहर जाना सम्भव नही था क्योकि गाववाले गाव के चारो ओर मल-मूत्र द्वारा बहुत ही गन्दगी फैला देते थे। वर्षा शुरू होते ही गन्दगी बेहद बढ जाती, जिससे अनेक बीमारिया होती। बीमारी का एक कारण यह भी था कि नदी मे वह गन्दगी वह

कर आती और नदी का पानी रोग के कीटाणुओ से युक्त हो जाता। कई लोग पीने के लिए नदी का पानी काम मे लाते। १५०० व्यक्तियो की बस्तीवाले गाव मे २-३ ही पाखाने थे। गन्दे पानी के निकास की व्यवस्था न रहने के कारण गलियो मे गन्दा पानी बहता रहता। पीने के पानी का कोई अच्छा प्रबन्ध नही था। घरो के पीछे बाड़ो मे पशुओ के रहने से उनकी गन्दगी भी मच्छरो को बढाती। लोग अक्सर मलेरिया से बीमार होकर कई लोग कम उम्र मे ही मौत के शिकार होते।

जो गन्दगी बीमारी बढाती है उसका खाद के रूप मे उपयोग किया जाय तो अभिशाप की जगह वरदान बन सकती है और किसानो की उपज बढाकर उन्हे खुशहाल बना सकती है, ऐसा समझाने पर भी हम गाववालो के विचारो मे परिवर्तन न ला सके बल्कि मल-मूत्र का उपयोग खाद के लिये करने का किसानो ने उल्टा विरोध किया।

सामाजिक दृष्टि से बाल-विवाह, मृत्युभोज, जन्मोत्सव आदि का जोर रहता। ऐसी शादिया होती जिसमे वर-वधू को गोद मे लेकर की गई हो। विवाह के बाद बहुत छोटी उम्र मे ही गृहस्थी शुरु हो जाती और कुछ स्त्रिया ४० साल की उम्र मे ही बूढी-नजर आती और सूखी हड्डियो का ढाचा ही रह जाती। बच्चे भी कमजोर और जल्दी बीमारी के शिकार होते। मौत के मुंह मे जानेवाले बालको की संख्या भी आज के अनुपात मे बहुत अधिक थी। उनकी बीमारियो का योग्य इलाज नही हो पाता। उनदिनो अनाज प्रचुर मात्रा मे होता और सस्ता था। सैकडो बोरियां अनाज जमीन मे गाड कर रखा जाता था जो सूखे के समय निकाल कर बेचा जाता था। कई बार तो ज्वार तीन रुपये बोरी बिकती थी। पर स्वास्थ्य की दृष्टि से क्या खाना उपयुक्त है और क्या नही, इसकी जानकारी लोगो मे नही थी। परम्परा से चला आया भोजन बनाया और खाया जाता जिसमे स्वास्थ्य से स्वाद का ही ध्यान अधिक रहता। इसलिए लोगो का स्वास्थ्य बहुत अच्छा नही रहता था।

हा, उन दिनो जीवन आज से अधिक परिश्रमी था। जिससे स्वास्थ्य ठीक रहने मे कुछ मदद होती थी। देहातो मे प्राय. लोग चार-साढे चार वजे उठकर काम मे लग जाते थे। खासकर अनाज कटने की मौसम मे तो लोग वहुत ही व्यस्त रहते। गर्मी के मौसम मे काम कुछ कम रहता तो दोपहर के समय सभी विश्राम करते, पर कई वड़े वूढे तो उस समय भी वैठे-वैठे डोरी वांटने का काम करते थे। पूरे वारह महीने लोगो को काम नही रहता था।

उन दिनो चाय का चलन देहातो मे वहुत ही कम था। छाछ प्राय: सभी खुशहाल किसानो के यहां होती और वे पास-पडौस के गरीवो को वांट भी देते थे।

देहातों मे अधिकांश रास्ते उन दिनो ऊवड-खावड होते थे और वैल गाड़िया या घोडे की सवारी अधिकतर होती थी। वह रेल, मोटर या हवाईजहाज जैसी सुखदायक नही होती। खास कर वारिश के दिनो मे कीचड मे गाडिया धंस जाती तो चार-चार, छै-छै वैल जोतकर निकाली जाती। उस समय का जीवन आज की अपेक्षा अधिक श्रमपूर्ण और शारीरिक कष्ट का था।

स्त्रियो को भी घर मे वहुत मेहनत करनी पड़ती थी। सवेरे जल्दी उठकर चक्की पीसती, वाद मे झाड़ू निकालती। महाराष्ट्र मे गोवर का पानी आगन मे छिडका जाता है, वह छिडकती। कुए से पानी निकालना, नहाना, कपडे धोना, रसोई कर खेत मे काम के लिए जाना आदि सव काम वे करती। रसोई वनाने का काम काफी कष्टप्रद था। धुंए से आंखे खराव हो जाती थी आज की तरह गैस की सिगडी या स्टोव जैसे सुविधाजनक साधनो का चलन उस समय नही था। फिर स्त्रियो में नई वात या सुधरे तरीके से काम करने या सीखने की भी इच्छा कम ही होती थी। वे अपने पुराने ढर्रे से काम करती रहती। जिससे वुद्धि का उपयोग कम होता था। लडकियो की पढाई होती ही नही थी।

मध्यम वर्ग या व्यापारियों के यहा की स्त्रिया भी काफी परिश्रमी होती थी। मेहनत या परिश्रम का काम करने मे किसी को शर्म नही मालूम देती। यही उस समय की विशेषता कही जाय, तो थी।

देहातो का आर्थिक जीवन अधिकाशत: फसल पर ही अवलम्बित रहता था। यदि वर्षा समय पर आती और फसल अच्छी होती तो ठीक नही तो लोगो का जीवन अत्यन्त कष्टमय वन जाता। परन्तु चीजे इतनी सस्ती थी कि कोई भूखा नही मरता था। भीख मागनेवालो को भी भरपेट मिल जाता था। हा, सूखा पडने पर स्थिति कुछ विषम वन जाती थी। खानदेश मे सूखा वहुत कम पडता था। परन्तु अहमदनगर या नासिक जिलो मे अकसर अकाल पडता रहता था। वे लोग कईवार रोजी-रोटी ढूंढने उधर जाते। जिले मे नहरे भी वहुत कम थी। जो किसान मितव्ययी और निर्व्यसनी होते उनकी तो स्थिति अच्छी रहती पर व्यसनी और आमदनी से अधिक खर्च करनेवाले किसान की जमीन कर्ज मे निकल जाती। हमारे यहा के पटेल ने कुछ वर्षों मे ही दो ढाई सौ एकड अच्छी उपजाऊ जमीन व्यसन मे खो दी थी। किसानो मे खाद वनाने एव व्यसन छुडाने की कोशिश भी हमारी ओर से होती थी।

कुछ महीने ही यह काम चल पाया कि १९३२ का आन्दोलन आ गया। वह आन्दोलन जनता ने शुरु करने के पहले ही सरकार ने अपनी ओर से दमन शुरु कर दिया था। लार्ड इर्विन के स्थान पर लार्ड वेलिंग्टन वायसराय वनकर आये। वे भारत मे पहले वम्वई तथा मद्रास के गवर्नर के रुप में काम कर चुके थे और अंग्रेज अफसरो के भारत विरोधी रवैया को समर्थन देनेवालो मे से थे। भारत के अंग्रेज अफसरो को गाधीजी के साथ उदार मतवादी लार्ड इर्विन का किया गया सम-भौता अच्छा नही लगा था। जव लार्ड वेलिंग्टन आये तो उन्होने ऐसी नीति अपनाई थी कि वह समभौता टूट जाय। वेलिंग्टन की राह मिलते

ही अंग्रेज अफसरो ने ऐसा दमन-चक्र चलाया जिससे जनता दव जाय, फिर सिर न उठा सके।

गाधीजी गोलमेज परिपद के लिये गये परन्तु वहा जो कुछ हुआ वह असंतोपजनक ही था। इधर भारत मे सरकार दमन-नीति के अनुसार खासकर वंगाल तथा उत्तरप्रदेग के नेताओ को जेल मे डाल रही थी। गांधीजी के यहां आते ही थोडे दिनो मे वातावरण गरम हो गया और लार्ड वेलिग्टन ने अनेक संस्थाओ को गैर-कानूनी करार देकर कार्यकर्ताओ को जेल जाने के लिये विवग किया। जनवरी के प्रारम्भ मे वम्वई प्रांत की अनेक संस्थाएँ गैर-कानूनी करार दी गई उसमे हमारा ग्रामसेवा मंडल भी था। मकान मालिक को किसी तरह आच न आवे इसलिए हमने ग्रामसेवा मंडल को मंदिर मे स्थानान्तरित कर दिया। ८ जनवरी को पुलिस सव-इंस्पेक्टर आये और मुझे गिरफ्तार कर जामनेर ले गये।

जव मुझे पुलिस इस्पेक्टर गिरफ्तार करने आये तो गाव तथा पास-पडोस के लोग एकत्रित हो गये और उन्होने मुझे अत्यन्त दु खपूर्ण अन्त करण से विदा दी। मैने उन्हे समझाया कि इसमे दु ख जैसी कोई वात नही है, यह तो खुगी की वात समझनी चाहिये। काफी लोग गाव से वाहर दूरतक पहुँचाने आये थे। लोगो का मुझपर वहुत स्नेह था।

जामनेर से सावदा ले जाकर वहा मेरी मेजिस्ट्रेट के सामने पेगी हुई और मुझे गैरकानूनी संस्था चलाने के अपराध मे १६ मास की सजा हुई। वहा से मै जलगांव लाया गया और वाद मे जनवरी की १२ तारीख को मैंने धुलिया जेल मे प्रवेग किया। इसवार राजनैतिक कैदियो को अधिक सताने की नीति सरकार ने अपनाई थी। इसलिए अधिकाग लोगो को "सी" क्लास ही दिया गया जहा कैदियो के साथ सख्ती वरती जाती और खानपान निम्नस्तर का होता। जलगाव सव-जेल मे कई खानदेग के पूर्व-परिचित कार्यकर्ता साथ हो गये थे और जव धुलिया पहुँचे

तो काफी संख्या मे कार्यकर्ता और साथी मिल गये थे। विनोबाजी उन दिनो खानदेश का दौरा कर रहे थे इसलिए वही पर गिरफ्तार हुए और वे भी १९३२ के आन्दोलन मे धुलिया-जेल मे ही लाये गये थे।

मैं धुलिया जेल मे सिर्फ दो-ढाई महीने ही रह पाया और मेरा तवादला विसापुर हो गया। यद्यपि धुलिया मे विनोवाजी का सत्संग, खानदेश के मित्रो का स्नेह, जमनालालजी का भी बिसापुर से धुलिया आ जाना आदि बहुत से आकर्षण थे परन्तु सत्याग्रही के नाते किसी चीज की सरकार से मांग न की जाय इस भावना के कारण मैंने मेरा तवादला रुकवाने का प्रयत्न नही किया। प्राप्त परिस्थिति को अच्छा मानकर सन्तोप से विसापुर जाना कर्त्तव्य माना।

जव तक धुलिया जेल मे रहा, मेरा एक आदर्श सत्याग्रही के रूप मे रहने का प्रयत्न रहा। मुझे चक्की पीसने का काम दिया गया वह मैंने खुशी के साथ किया। पीसने मे मेरे साथी थे जलगाव के किसनलालजी घुपड जो मेरे पुराने मित्र थे। वे शरीर से भी काफी सुदृढ थे। उनके मुकावले मे मैं काफी कमजोर था। उन दिनो मेरा वजन १०४ रत्तल था और स्वास्थ्य की दृष्टि से चक्की चलाने का परिश्रम करने योग्य नही माना जाता था लेकिन पिसाई का काम दिया गया। हम दोनो ३५ रत्तल पिसाई ६ घन्टे मे कर देते थे। कडे परिश्रम के कारण हमे जो खाना मिलता वह कम पड़ता था। अध-भूखो रहना पडता था। कई साथियो ने रेशनिग वढाने के लिये शिकायत की तो जेल के वातावरण मे काफी उत्तेजना आ गई थी। जेलर श्री वैष्णव तुनुकमिजाजी होने से उसने परिस्थिति को और भी विकट वना दिया था किन्तु विनोवाजी के कारण मामला निपट गया। एक-दो दिन काफी उत्तेजना रही।

हम लोग वडी वैरक मे रहते थे और विनोवाजी सेतस मे। किन्तु वे हर रविवार को वडी वैरक मे आकर गीता पर व्याख्यान देते थे।

उनकी प्रसिद्ध कृति "गीता-प्रवचन" इन व्याख्यानो का संग्रह है जिसे साने गुरुजी ने लिपिवद्ध किया था। विनोवाजी तथा अनेक सज्जनो के सहवास से कष्टमय जेल जीवन केवल सह्य ही नही वना, अपितु सत्याग्रहियों मे त्याग की अद्भुत मस्ती भी आई।

जव पहले दिन ज्वार की कांजी आई तो मैं उसे देखकर पी भी नही सका था। भोजन भी सवेरे दो ज्वारी की रोटिया और १० औस दाल। शाम को दो रोटिया और ८ औस भाजी। दाल दस औस तो दी जाती थी पर उसमे दाल को ढूंढना कठिन होता, पतला पानी रहता और सब्जी का भी यही हाल था। कही उसमे प्याज या आलू का टुकडा भाग्य से मिल जाता तो अचरज की वात समझी जाती। पत्ती-शाक मे घास भी रहता था इसलिए पहले दिन एक रोटी भी नही खा सका। पर जव चक्की पीसने लगा तो यह खुराक कम पडने लगी। काजी भी जितनी मिल जाती, पी जाता, हफ्ते मे चार रोज ज्वार की रोटी, दो रोज वाजरे की और एकदिन रविवार को गेहूँ की रोटी, गुड और आधा औंस तेल मिलता था। "सी" क्लास होने के कारण कपडे जेल के मिले थे जिन्हे सिर्फ, रविवार को अच्छी तरह से धोने का अवसर मिलता था।

जव विसापुर हमारी वदली हुई तो साथ मे वेलजीभाई पचोरावाले, नासिकवाले विडकर वालकृष्ण, रमाकान्त देशपाडे जलगाव वाले मेरे साथी वचे जो विसापुर से छूटने तक साथ मे वडे प्रेम से रहे।

१५

दूसरी जेल यात्रा

तारीख ३ अप्रेल १९३२ को हम धुलिया से विसापुर भेज दिये गए। विसापुर जेल की काफी अपकीर्ति थी और लोगो ने वहा की भयानकता का वर्णन करके मुझे डराने की कोशिश भी की थी। कहा गया कि वहा की जलवायु अच्छी नही है और पेचिश, टाइफाइड, मलेरिया आदि वीमारियां अधिक होती है। लेकिन सच्चे सत्याग्रही को आये हुए कष्टो को धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिए, इसलिए बिना किसी प्रकार का असन्तोप या भय के मैं वीसापुर पहुँच गया। मनमाड-दोड रेलवे मार्ग पर अहमदनगर और दौड के मध्य विसापुर पडता है। वहा उस समय १६०० वन्दी थे जो कटीले तारो से वनी कच्ची वैरको तथा तम्बूओ मे रखे गये थे। वम्वई प्रान्त मे उस समय गुजरात और कर्नाटक प्रदेश भी शामिल थे जिससे वहा के सत्याग्रही भी थे। १९३२ के आन्दोलन मे अधिकाश लोगो को "सी क्लास" मिला था और विसापुर मे सभी "सी क्लास" के ही कैदी थे। इनमे सभी प्रान्तो के प्रमुख कार्यकर्ता और नेता होने से विसापुर राजनैतिक कार्यकर्ताओ का शिविर वन गया था।

वहां क्रूरता तथा सख्ती के लिए प्रसिद्ध विवन नामक सुपरिटेण्डेण्ट था जो पहले यरवदा मे जैलर था। स्वभाव से उद्धत और सख्त। पर विसापुर मे उसके स्वभाव मे अन्तर दिखाई दिया। वह बताता था कि उसमे गाधीजी के कारण यह परिवर्तन हुआ।

धुलिया जेल से विसापुर का भोजन अच्छा था। दाल भी अच्छी मिलती और सब्जी मे पत्ती की सब्जियो मे आलू, गोभी, लौकी, बेगन आदि मिलते थे। लेकिन भोजनालय की व्यवस्था ठीक न होने से कई बार बहुत सी सब्जी या दाल फेंक दी जाती तो बहुत बार कुछ लोगो को उचित प्रमाण मे नही मिलती थी। लोगों की यह भी शिकायत थी कि दाल और सब्जी बाटनेवाले ऊपर का तैल अपनी बैरक मे भिजवा देते थे। नमक, प्याज आदि की चोरी भी होती थी। प्रसिद्ध कार्यकर्ता भी जेल मे छोटी-छोटी बात के लिए गडबडी करते पाये गये। मनुष्य की कसौटी का एक स्थान जेल भी है वहा उसकी वृत्ति की परीक्षा ठीक-ठीक हो जाती है। वस्तुओ के अभाव मे मनुष्य संयम रख पावे, तभी वह सच्चा सयम माना जा सकता है।

ये शिकायते दूर करने और सबको उचित मात्रा मे खाद्य वस्तुएं प्राप्त हो इसलिए चार व्यक्ति इस कार्य के लिये सत्याग्रहियो के सुझाव से नियुक्त हुये। रविशंकर महाराज, रावजीभाई, मोहन लाल कामेश्वर-पड्या और मैं, काम का विभाजन ऐसा था - रावजीभाई राशनिंग ठीक से तुलवाकर लाते और रोटिया अच्छी बनवाने की ओर ध्यान देते। मोहनलाल पंड्या इस बात का ध्यान रखते कि रसोडे की कोई चीज न चुराई जाय और बीमारो को बचे चावल मे से दे। रविशंकर महाराज दाल, शाक आदि बनाते और मै भोजन तैयार होने पर समानरूप मे बंटवाने का काम करता। १६०० कैदी थे। सबको समान रूप से मिले यह काम कठिन मालूम दे तो भी हिसाबी व्यक्ति के लिए वह आसान ही था। मैने हिसाब लगा रखा था कितने पीपे दाल या भाजी

होती है और प्रत्येक पीपे मे कितनी भाजी रहती है, हिसाव गिनकर कह देता कि आज १३ ओस दाल और १० ओस भाजी दे दो। किसी की शिकायत न आवे इसलिए कुछ दाल या भाजी सुरक्षित रख छोडता था। प्रथम बार सब राशन वैरको मे वट जाने पर वची भाजी हिसाव से हर वैरक मे भिजवा देता। इस नई व्यवस्था से लोगो को वहुत अधिक भाजी और दाल मिलने लगी। जिसे वे खा नही पाते थे। तव हमने जेल के अधिकारियो से वात कर रोटी, दाल और सब्जी के स्थान पर अलग-अलग प्रकार की चीजे उसी राशनिंग मे वनानी शुरू की।

हफ्ते मे दो वार चने की दाल मिलती थी। हमने उसको पिसवा कर दाल की जगह "वेसन" जिसे महाराष्ट्र मे "पीठला" कहते है, देना शुरू किया, तो दाल का आटा बचने लगा। अत हम किसी दिन दाल-ढोकली देते। रविवार को गुड, तेल मिलता था। उससे हमने लड्डू वनाने शुरू किये। उन दिनो १ रुपया चौदह आने मासिक का प्रत्येक कैदी को राशन मिलता था, लेकिन उसमे हम अनेक प्रकार के पदार्थ तैयार करने लगे तो साथियो को तो सतोष हुआ ही, साथ ही जेल-अधिकारियो को भी आश्चर्य होने लगा। हम ज्वार, बाजरे तथा चने का आटा मिला कर नमकीन रोटिया जिन्हे गुजराती मे "ढेबरा" कहते है, वनाने लगे, तो कभी कुछ, कभी कुछ। यह तरीका इसलिए भी सफल हुआ कि राशनिग पूरा तोलाकर रावजीभाई लाते थे और पड्याजी चोरी न हो इसका ध्यान रखते थे। विभिन्न पदार्थ बनाने का काम रविशंकर महाराज करते थे और समान बंटवारे का काम मे करता था। रविशकर महाराज मे दूसरो से प्रेमपूर्वक काम करा लेने की कुशलता थी और स्वयं भट्टियो के पास बैठकर खूब परिश्रम करते थे। अराजनैतिक कैदी रसोडे का काम करते थे। उनके साथ रविशकर महाराज स्वयं काम करते और उनसे प्रेम से करवा भी लेते थे। मैं तो ६ वजे जाता जब दाल, भाजी या बांटने की सब चीजे तैयार हो जाती

और १०॥ बजे तक बाटने का काम पूरा कर लेता। शाम को ४ बजे से ५॥ बजे तक राशनिंग बांटने का काम पूरा हो जाता। तीन घण्टे रसोड़े के अतिरिक्त बाकी समय अध्ययन मे बीतता। हमारा यहा अच्छे-अच्छे लोगो से सत्संग हुआ। चार-पाच व्यक्तियो का हमारा एक समूह था। विसापुर मे प० बेचरदासजी का सत्संग बडा आनन्दप्रद रहा।

पं० बेचरदासजी का सरल किन्तु परहित-रत स्वभाव मेरे लिए सदा आकर्षण की वस्तु रहा है। जैन समाज मे वे क्रातिकारी विचारक माने जाते है। महाराष्ट्र के कवि तुकाराम की उक्ति के अनुसार जैसे "सत फ़ल जैसे कोमल होते है वैसे ही समय आने पर वज्र से भी कठोर बन जाते है।" पडितजी मे अपने विचारो की दृढ़ता और उसके लिए सहन करने की वृत्ति हैं। उन्होने अपने विचारो की दृढता के लिए समाज का भीषण विरोध भी सहन किया। लेकिन अपने विचारो से विचलित नही हुए। ऐसे सिद्धान्तनिष्ठ विद्वान् का सत्सग लाभदायक रहा। वैसे जेल यात्रा मेरे लिये सदा ही श्रेयस्कर रही है। बचपन मे शिक्षा-प्राप्ति की अधूरी इच्छा की पूर्ति का स्थान जेल बनी। शिक्षा-प्राप्ति का प्रयत्न तो सदैव चलता रहता है, पर अध्ययन के लिए निश्चित और फुरसत का समय तो मैं जेल मे ही पा सकता था। जेल मे मैं अपने लिए जो वस्तुएं मागता उसमे पुस्तकें ही अधिक होती, और जेल से छूटते समय पुस्तके और नोट-बुको का काफी सग्रह हो जाता था। यो कहने के लिए मैं देश की आजादी-हित जेल गया था, पता नही उसमे मेरी जेलयात्रा कितनी उपयोगी रही, किन्तु जेलयात्रा से मैं व्यक्तिगत रूप से अत्यन्त लाभान्वित हुआ। मेरे जीवन का अधिक से अधिक अच्छा और उपयोगी समय जेल मे ही बीता।

रविशंकर महाराज जैसे सन्त के साथ ११ महीने काम करने का अवसर मिला, मैं उनकी महानता पर मुग्ध था। वे सरल सीधी भाषा मे अपने जीवन के जो अनुभव सुनाते वे हृदय को छू जाते थे। जिस

व्यक्ति ने चोर-डाकुओ का हृदय-परिवर्तन किया, उनकी श्रेष्ठता की अनुभूति, सम्पर्क मे आनेवाले को सहज मे हो जाती है। उनके व्यवहार से सच्चे धर्माचरण का अनुभव प्राप्त होता है। यही कारण है कि उनके सरल और सीधे शब्दो का दूसरो पर सीधा प्रभाव होता है। वे अत्यन्त परिश्रमी और विनयशील है। धुलिया जेल मे विनोवा और विसापुर मे रविशंकर महाराज के सत्संग ने मुझे सतत जाग्रत रखा। जेल-जीवन मे यदि मेरे द्वारा कोई अनुचित कार्य नही वन पडा, तो उसका श्रेय ऐसे सन्तो को ही देना होगा।

वलवन्तसिहजी, वेलजीभाई, वीडकर, वालकृष्ण रमाकान्त देशपाडे आदि विसापुर जेल मे साथी थे जिनके कारण मेरी जेल-यात्रा सानन्द कटी। वेलजीभाई स्वय हमेशा अपने स्नेही जनो और साथियो को सुख पहुँचाने के लिए सदा तत्पर रहते थे और मेरा तो वे वहुत ही ध्यान रखते थे। वे उम्र मे मुझसे वडे थे, इसलिए सेवा लेने का अधिकार तो मुझे नही था, परन्तु उन्होने मेरी वहुत सार-सभार रखी और सेवा की। वे जेल के वाद खडवा जाकर रायचन्दभाई नागडा के साथ रहे। पर जव-जव उनसे मिलना होता है उनमे मै अपने प्रति अपूर्व आत्मीयता पाता हूं। वीच-वीच मे पत्र भी लिखकर याद कर लेते है। जेल मे हमारे साथी वीडकर तो उन्हे मा कहते थे।

देशपाडे खानदेश मे खादी और रचनात्मक कार्य करनेवाले निष्ठावान कार्यकर्ता रहे। जिन्होने रचनात्मक कार्यो मे अपना जीवन विताया और वहुत अधिक सहन किया। उन्होने केवल व्यक्तिगत रूपसे ही नही वरन् परिवार को भी उनके देशकार्य के लिये वहुत सहन करना पडा। जो एक करुण-कथा है।

वलवन्तसिहजी, गांधीजी के साथ सावरमती रहते थे और गुजरात के कैदियो के साथ आये थे। यद्यपि उन्होने गाधीजी की अहिंसा अपना ली थी, पर क्षत्रिय होने के नाते लडना सहज स्वभाव होने से वापूजी से

भी अन्त तक लडते ही रहे। उनकी गाधीजी के प्रति अपूर्व निष्ठा थी पर जवतक वात समझ मे न आ जाय तवतक उन्होने कभी हां मे हां नही मिलाई। वड़े स्पष्टवक्ता है। उनमे गाय और खेती के प्रति अद्‌भुत प्रेम है। गांधीजी जीवित थे तव भी और आज भी गौसेवा और खेती का काम रहे है। लोग कहते है विना झगड़े के उनके साथ महीनो रहना आसान नही है। पर मुझे तो इससे विलकुल उलटा अनुभव हुआ। हम महीनो तक साथ रहे और प्रेमपूर्वक रहे। वाद मे भी हमारी मैत्री सतत वढ़ती ही गयी। यह वात नही कि उनके और मेरे विचारो मे मतभेद न हुआ हो। मतभेद होने पर भी जितना उन्होने मुझपर प्रेम प्रगट किया, उस मुकावले मे मैं न तो उनपर प्रेम ही कर पाया और न उनके कामो मे सहयोग ही दे सका। फिर भी हमारे प्रेम और आत्मीयता मे कभी कमी नही आई। १९३२ के वाद जब गाधीजी ने वर्धा और सेवाग्राम को अपना कार्यक्षेत्र वनाया तो वे उनके साथ वहां आये और वही काम करते रहे। आजकल वे राजस्थान मे गौ-सेवा का काम तन्मयतापूर्वक कर रहे है।

हमारी वैरक मे कर्नाटक के श्री तिमप्पा नायक भी रहते थे। वे सच्चे गाधीवादी थे और आज भी है। उनकी सौम्य और विहंसती मुखमुद्रा भुलाई नही जा सकती। उन्होने मुझे कन्नड भाषा सीखने को इसलिए कहा था कि कन्नड़ भाषा मे वड़ा ही समृद्ध जैन साहित्य है। इच्छा होते हुए भी मैं कन्नड़ भाषा नही सीख सका। फलत. कन्नड जैन साहित्य पढने से वंचित रह गया।

मोहनलाल पंड्या को गाधीजी ने "डुंगली-चोर" की उपाधि दी थी, क्योकि खेड़ा सत्याग्रह मे सरकार ने उन्हे प्याज की चोरी के अपराध मे सजा दी थी। वे वड़े ही सहृदय व्यक्ति थे। ग्यारह महीने तक रसोड़े के द्वार पर दोनो वार उनके दर्शन होते थे। वे वडे प्रेम से अपने जीवन के अनुभव सुनाते थे। वे सरदार वल्लभभाई पटेल के अभिन्न साथी और गांधीजी के भक्त थे। उनकी देशसेवा का प्रारम्भ हिसात्मक कार्यो द्वारा

हुआ था। वाद मे गाधीजी के सम्पर्क से अहिंसा का रास्ता अपना लिया और अन्त तक अहिंसक मार्ग द्वारा सरकार से लडते रहे।

जिनकी स्मृति भुलाई नही जा सकती, ऐसे एक सज्जन और भी विसापुर जेल मे थे वे थे सुरेन्द्रजी। मैं सावरमती मे जव वापू के साथ रहने गया तव उन्होने मैला-सफाई का काम सुरेन्द्रजी के साथ करूं ऐसा आदेश दिया था। मैं जव तक सावरमती मे रहा, सुरेन्द्रजी के साथ सवेरे ६ वजे तक मैला-सफाई का काम करता रहा। काम के सिवाय वे वात नही करते थे। कोई पूछता था तो भी कम से कम शव्दो मे ही उत्तर देते। मैंने उनसे सदा मृदु, मित, सत्य और हितकारी भापा ही सुनी। उनका भापा-संयम अनुकरणीय था।

यो तो जेल मे अनेक सन्त-पुरुप और नेता थे। वम्वई कांग्रेस के नेता श्री एस० के० पाटिल, श्री गणपतिशंकर देसाई आदि भी वही थे। मैं श्री पाटिल के न तो निकट ही जा सका और न उनसे अधिक संपर्क ही वढा सका। हा, गणपतिशंकर देसाई के विचारो मे मेल खाने के कारण संपर्क वढ़ा।

यो तो जेल-जीवन शारीरिक सुख सुविधा की दृष्टि से घरेलू जीवन से भिन्न था, पर प्राप्त परिस्थिति मे सन्तोप करने की वृत्ति के कारण मेरे लिए वह कभी दु खदायी नही वना। मैंने घरवालो की जेल मे विशेप चिन्ता नही की। उन दिनो जीवन त्याग की भावना से ओतप्रोत था और खतरा उठाने का साहस भी। आज मैं अपने आप मे उतना साहस नही पाता। सम्भव है उम्र भी इसका कारण हो। पर उस समय का जीवन आज से भिन्न था। उस समय जीवन मे साहस और त्याग की भावना प्रवल थी, तो आज अनुभव और समझौतावादी वृत्ति का प्रभाव अधिक है।

हमारा भोजन खर्च करीव एक आना प्रतिदिन के लगभग आता था इससे ही कल्पना तो की जा सकती है कि इस मूल्य मे मिलनेवाला

अन्न कैसा होगा, पर अपने प्रयत्न से हम लोगो ने उसे रुचिकर बनाया था और स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये व्यायाम का सहारा लिया था। इसलिए मैं न तो बीमार ही हुआ और न वजन ही घटा। जेल से लौटा तब शक्ति और स्फूर्ति लेकर ही लौटा था। जामनेर से फतेपुर रात को अकेला पैदल पहुँचा था। यो तो सिर्फ १४ मील की ही यह यात्रा थी, मेरे मित्र श्री राजमलजी ने वाहन ले जाने को कहा, किन्तु मैं दस बजे रात को जामनेर से फतेपुर अकेला ही पैदल गया और सबेरे करीब ५ बजे घर पहुँचा। रात को अकेले पैदल चलने के मूल मे मिल जाय तो भूत के दर्शन की इच्छा भी थी, क्योकि रास्ते मे कई ऐसे स्थान बताये जाते है जहा लोग भूतो का वास कहते थे। पर न तो उस रात को भूत के दर्शन हुए और न अबतक ही। इसलिए भूतो के अस्तित्व पर मै विश्वास नही कर पाया।

□□

१६
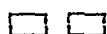
सेवा के लिये व्यवसाय

जेल-कार्यकर्ताओ के साथ मिलना-जुलना होता, उनके विचार और सुख-दु ख की वाते जानने को मिलती । मैंने देखा कि कार्यकर्ताओ को स्वाभिमानपूर्वक सेवा करने मे उनकी आर्थिक स्थिति वाधक वनती है । यद्यपि देश मे पूरा समय और शक्ति लगाने वाले कार्यकर्ताओ की अत्यधिक आवश्यकता है, पर गृहस्थ कार्यकर्ता के लिए स्वाभिमानपूर्वक जीवन निर्वाह की व्यवस्था समाज नही कर पाता । जमनालालजी जैसे उदार हृदय धनिको की समाज मे कमी है, जो कार्यकर्ताओ की सार-संभाल ले । तव सेवाकार्य कैसे चले ? यदि उन्हे जनाधारित वनाना हो तो कार्यकर्ता की सेवा का उचित मूल्याकन कर जनता स्वेच्छा से धन दे या किसी संस्था द्वारा यह प्रवन्ध हो । जैसे आज सन्त या साधुओ के लिए आदर है और उनकी जीवनचर्या चलाने मे वहुत कठिनाई नही पडती । वैसे ही सेवाकार्य करनेवाले कार्यकर्ता के विषय मे भी हो, वैसा न होने से कार्यकर्ता को वहुत सहन करना पडता है । कईयो के जीवन मे दीनता आ जाती है ।

जेल मे कई कार्यकर्ता ऐसे थे जिन्हे घर के लोगो के निर्वाह की चिन्ता थी उन्हे जेल मे कोई वस्तु, पुस्तके, नोटबुक या दवाई मंगवाने की आर्थिक सुविधा नही थी। खानदेश के एक कार्यकर्ता को जब दवाई के लिए कइयो से कहना पडा और पूर्ति नही हुई तव यह बात मुझे खटकी। मैंने दवाई मंगवा दी। मूल्य भी कोई अधिक नही था। दस रुपये से कम ही था, पर मुझे कार्यकर्ता की असहाय अवस्था पर तरस आया। सोचने लगा कि ऐसी स्थिति मे सेवाकार्य कैसे चले। क्या कोई ऐसा रास्ता नही निकाला जा सकता कि कार्यकर्ता गाव की जरूरतो की पूर्ति या उत्पादन का काम कर समाज की सेवा करे। ग्रामसेवा कार्य मे अनुभव आया कि निस्वार्थ सेवाकार्य करने पर भी लोगो मे गलतफहमी रहती ही है। हम ग्रामसेवा का कार्य करते थे। ग्रामवासियो से अपने लिए कुछ न लेने पर भी वे ऐसा मानते थे कि हम कही से कुछ पाते ही होगे। बिना स्वार्थ कोई काम कैसे कर सकता है? लेकिन जव हम समाजसेवा करते समय ऐसा काम करे, जो उनके लिए आवश्यक हो और उस कार्य से उचित मुनाफा लेकर हम उससे सेवाकार्य का खर्च निकाल सके तो परावलम्वन से वचेगे ही पर सम्भव है शंकाओ से भी मुक्ति पा जाय। इसलिए देहात की जरूरतो को पूरा करने के लिए आवश्यक चीजो की दुकानो की कल्पना मेरे मन मे आयी। उनमे ऐसी चीजे बेची जायँ जो समाज और राष्ट्र के लिए हानिकर न हो।

जेल से छूटने पर मैंने अपने साथियो से इस कल्पना की चर्चा की। वालकृष्ण कोलते ने इस कल्पना को वहुत पसन्द किया और उसे सफल बनाने मे अपनी पूरी शक्ति के साथ काम करने का निश्चय प्रगट किया। बालकृष्ण कोलते वैश्य विद्याश्रम का विद्यार्थी था और विलेपार्ले की छावनी मे स्वयंसेवक था। वृत्ति से सात्विक तथा भावनाशील होने के साथ-साथ पुरुषार्थी और व्यवहारकुशल था। मेरे प्रति उसकी निष्ठा असीम थी। उस जैसा साथी जिसने सम्पूर्ण समर्पण किया हो, मैंने अव

तक नही देखा । उसकी १९३२ के प्रारम्भ मे जेल जाने की इच्छा तीव्र थी पर मेरे ही कहने से वह पीछे रहकर रचनात्मक कार्य करता रहा। मेरे परिवार का वह अंग ही वन गया था। उसने इस योजना को सफल वनाने के लिये अपनी पूरी शक्ति ही लगा दी और हमने वहा एक ऐसी दुकान शुरु की जिसमे जीवनोपयोगी चीजे उचित दामो पर ग्राहको को मिले। हमने थोक और खुदरा मे जो मूल्य का अत्यधिक फर्क रहता है उसमे कुछ हद तक कमी की। दुकान मे भी भाव एक रहता था। व्यसन की कोई वस्तु नही वेची जाती जैसे सिगरेट, वीड़ी, तम्वाखू आदि। प्रारम्भ मे तो चाय और काफी भी नही रखी जाती थी, पर जव पूज्य विनोवाजी हमारे गाँव आये तव साथियो ने उनसे चर्चा कर, चाय, काफी, केरोसिन को "नेसेसरी इविल" के रूप मे वेचने को इजाजत ले ली थी। इस काम मे दूसरे सहायक साथी थे कड गाव के कृष्णा चिन्दु पाटील। कृष्णाभाऊ का परिचय धुलिया जेल मे हुआ था। वाद मे हणमन्त कोलते और दादा धामणस्कर भी कोकण से खानदेश मे आये और इस योजना में शामिल हो गये।

हमारा फतेपुर की दुकान का प्रयोग वड़ा सफल रहा इसलिए जामनेर के मित्र श्री राजमलजी ललवानी तथा युसुफमियां काजी ने मुझे वैसी दुकान जामनेर मे करने का आग्रह किया। इस दुकान मे फतेपुर के मित्र श्री धनराजजी भरडेचा ने पूँजी दी थी और साझा भी रखा था जिसमे कोई मुनाफे की आशा नही थी परन्तु मेरे प्रेमवश उन्होने वैसा किया था। हमने जामनेर मे भी दुकान की, जो वडी ही लोकप्रिय हुई। इसी बीच एक दुर्घटना हो गयी और वह वालकृष्ण कोलते की मृत्यु। यह मेरे लिये वड़ी ही दुःखदायक और न भुलानेवाली घटना थी। वह वीमार हुआ। फतेपुर मे तो इलाज हो ही नही सकता था पर जामनेर मे भी उचित इलाज होने की संभावना न देखकर उसे कृष्णाभाऊ के साथ नासिक भेजा। लेकिन वहां उसकी मृत्यु हो गयी।

इस मृत्यु मे मैं सोचता हूँ कि मेरी भूल थी। नासिक कृष्णाभाऊ को न भेजकर मुझे जाना चाहिए था। मैंने उस बीमारी को उतना भयानक नही समझा था इसलिए कृष्णाभाऊ के साथ उसे भेजा। पर बीमारी प्राणघातक सिद्ध हुई और मेरा एक ऐसा साथी, जिसे मैं अपने भाई से भी अधिक प्रेम करता था मुझे छोडकर चला गया। उसकी मृत्यु का दु:ख और उसके जाने से हुई क्षति की पूर्ति दादा धामणस्कर ने कुछ अंशो मे की और वे मेरे सहयोगी बने जो अबतक अभिन्न साथी ही है।

जामनेर जाने पर दादा धामणस्कर के अतिरिक्त चम्पालालजी लोढा का भी सहयोग मिला। उस दुकान ने जामनेर ही नही पर पास-पड़ोस के गावो मे भी काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की। हमारी दुकान पर छोटे बच्चे से लेकर बडा तक कोई भी आ जाय भाव मे अन्तर नही होता था। माल की किस्म जो कही जाती वही होती। चीज मे मिलावट नही होती थी। फिर हम गरीबो के उपयोग की चीजे कम भाव मे बेचते थे। ज्वार, दाल, तेल, मिर्च आदि लागत भाव पर या मौका आने पर कम भाव मे बेचते। ये चीजे हम मौसम के शुरु मे ही खरीद लेते थे। और जब बारिस के दिनो मे भाव बढता तब वे चीजे बाजारभाव से कम मूल्य मे बेचते थे। ध्यान यही रखते कि जरुरतमन्दो को जरुरी चीजे उचित मूल्य मे मिल जायें और हमे घाटा न हो।

एकबार ज्वार के दाम काफी बढ गये थे। श्रावण का महीना था। हमारे पास करीब १५०-२०० बोरे ज्वार थी। भाद्रपद और आश्विन तक कम भाव मे ज्वार बेचने के लिए वह संग्रह काफी नही था। उसके लिए कम से कम ५००-६०० बोरे खरीदना आवश्यक था। फिर नियत भाव मे ज्वार बेचने के लिए घाटे के लिए १५०० से २००० की व्यवस्था करनी थी। उन दिनो मैं जलगाव मे रहता था। दुकान का काम दादा साहब धामणस्कर तथा चम्पालालजी लोढा देखते थे। जब मैंने उनसे कहा कि किसी तरह दो-ढाई महीना हम कम दामो मे ज्वार जनता को

दे सके तो देने का प्रयत्न करे। उन्होने कहा—वैसा किया तो जा सकता है, पर १५०० रुपये घाटे का और ज्वार आज खरीदने के लिए दस-बारह हजार की पूँजी की व्यवस्था करनी होगी। मैंने जामनेर जाकर सेठ राजमलजी से वात की। उन्होने व्यवस्था कर दी। तुरन्त हमारे साथियो ने माल वाबोरी, "अहमदनगर" से मंगवा लिया। और वरावर आठ आना "चौथिया" "दो पायली" दर से वेचते रहे। जवकि वर्षा के अंत मे यह भाव वारह आने तक पहुँच गया था। हम हर ग्राहक को एक सेर ज्वार एकदिन मे देते। यह वात सही है कि हमारा यह प्रयत्न राजमलजी के सहयोग से ही सफल हुआ। हमारी तो सिर्फ व्यवहार-बुद्धि, परिश्रम और योजना थी। उन दिनो जहां ऐसी व्यवस्था नही थी, गांवो मे काफी चोरियां हुई थी। एक-दो जगह तो गाव मे अनाज लूटा भी गया, पर जामनेर मे वैसा कुछ नही हुआ। व्यापारिक दृष्टि से तो हमारा प्रयोग अव्यावहारिक ही था, क्योकि हमारी दुकान मुनाफे से वंचित रही पर सामाजिक दृष्टि से इस प्रयोग का मूल्य था। गाव मे चोरियां नही हुई। लोगो मे सन्तोप वना रहा और हमारी दुकान के लोगो के प्रति जनता की आत्मीयता वढी।

इस दुकान के प्रति लोगो मे जो सहानुभूति थी उसकी एक घटना यहां दी जा रही है :—

एकवार मैं, धामणस्करजी एवं चम्पालालजी दुकान सम्बन्धी विचार करने के लिए दुकान की ऊपरी मंजिल पर वैठे थे, नीचे हणमन्त कोलते दुकान संभाल रहा था। दोपहर का समय होने से ग्राहक कम आते थे। दुकान के कर्मचारी भोजन के लिए घर गये हुये थे। एक मुसलमानभाई, जिसकी गांव मे काफी दुष्कीर्ति थी, आया और वोला कि मुझे एक पाव शक्कर और दो आने की चाय दो। हणमन्त शक्कर तोलने वैठ कर उठकर अन्दर गया तो उस भाई ने गल्ला खोलकर मुट्ठी मे आ सके उतने पैसे ले, जेव मे डालने की कोशिश की। हणमन्त ने देख लिया उसने उसकी टोपी उतार वाल पकड़े और जोर से चिलाया 'चो र।

हम तीनो दौडकर नीचे आये और पकड़कर, उसने गल्ले में से जो लिया था वह उससे छीन लिया और उसकी अच्छी मरम्मत की। जामनेर मे मुसलमानो की काफी संख्या है। हो हल्ला सुनकर वहा काफी लोग इकट्ठे हो गये। किसी मुसलमान को कोई पीटे यह बात उन दिनो हिन्दू-मुसलमान झगडा होने के लिये काफी थी, पर जो मुसलमान भाई वहां आये उन्होने हमे कुछ कहने की अपेक्षा उसी से कहा कि, "क्या तुम्हे चोरी के लिये दूसरा घर नही मिला जो ऋषभदास सेठ की दुकान पर चोरी करने आया। अरे, यह तो उनकी नही अपनी सबकी दुकान है। क्या ऐसी जगह चोरी की जाती है ?"

उसको काटो तो खून नही।

मैं कारणवश जब जामनेर छोडकर वर्धा गया तो उस दुकान मे अपना हिस्सा न रख कर धामणस्करजी और चम्पालालजी को वह सौप दी। पर वर्षों तक वह दुकान ऋषभदास सेठ की दुकान के नाम से ही पहचानी जाती रही।

कुछ वर्ष पहले की बात है। एकबार मैं पूना से जामनेर आया था। रेल से उतरा। एक लडका, मैं जामनेर रहता था तब उसका जन्म भी नही हुआ था, मेरा सामान देखकर गाव मे ले चलने के लिये आया। मुझसे कहा—कहां जाना है ?

मैंने कहा—दादा धामणस्कर या चम्पालालजी के यहा ले चलो। क्या तुम उन्हे पहचानते हो ?

वह बोला—क्यो नही, वे ऋषभदास सेठ की दुकान पर तो वे है।

मैंने कहा—तुमने ऋषभदास सेठ को देखा है ?

वह बोला—नही, मैंने नही देखा। वे यहां नही रहते। कही बाहर रहते हैं। पर उनकी दुकान है।

मुझे जनता का प्रेम और कृतज्ञता का मान देखकर सन्तोष हुआ

और यह विश्वास अधिक दृढ हुआ कि भलाई का किया हुआ कोई काम व्यर्थ नही जाता ।

हमारा यह प्रयोग आर्थिक दृष्टि से इसलिए भी असफल रहा कि हमारे साथी तो प्रामाणिक और ज्यादा काम कर कम मुआवजा लेनेवाले थे । पर कुछ ऐसे लोगो की हमे सहायता इस व्यवसाय मे लेनी पडी जो विश्वासपात्र नही थे । उनकी अप्रामाणिकता से दुकान में हानि हुई और कुछ कर्ज भी हो गया । मैंने अपनी समस्या सेठ जमनालालजी के समक्ष रखी तो उन्होने मुझे मिलने के लिये बुलाया । मैंने उन्हे सारी स्थिति वताई तो उन्होने कहा कि कर्ज तो निश्चित रूप से चुकाना ही चाहिए । तुम यहा आकर कुछ काम करो और उसमे से चुका दो । वैसे कर्ज वहुत अधिक नही था । पाच-छै हजार ही था । मैं किसी को अपने लिए थोडा भी नुकसान नही पहुँचाना चाहता था ।

मैं जामनेर छोड़कर न जाऊँ, इसलिए जामनेर के लोगो ने और खासकर सेठ राजमलजी ललवानी, युसुफ मियां काजी और धनराजजी भरडेचा ने वहुत प्रयत्न किया । उन्होने कहा—"तुम्हे जो लोगो ने धोखा दिया है और दुकान मे हानि हुई है वह अपनी सवकी समझकर पूरी करली जाय और हमारा रुपया जो लेना निकलता है उसकी चिन्ता न की जाय । जव दे सको तो दे देना, उस पर हम व्याज भी नही लेगे । पर तुम जामनेर छोडकर मत जाओ ।"

मैंने कहा—"आपने रुपया मेरे विश्वास पर दिया था अत वह मुझे चुकाना ही है और वह भी उचित व्याज सहित । उसके लिए दुकान मेरे साथी सम्भालेगे और मैं कमाई करके कर्ज चुकाऊँगा । कई योजनाएँ मुझे सुझाई गयी । खेती करने का भी सुझाव आया । मेरी पत्नी भी चाहती थी कि मैं जामनेर न छोडू । इसलिए पत्नी को वही रख कर मैं कर्ज चुकाने के लिये सेठ जमनालालजी के मार्गदर्शन मे काम करने जामनेर से वर्धा चला गया । प्रारम्भ मे तो मेरी पत्नी वहा पर रही

पर सेठजी के मार्गदर्शन मे काम करते समय एक नई आफत मे मैं उलझ गया इसलिये सेवाकार्य ४-५ वर्षों के लिये बिलकुल त्याग कर पूर्णरूप से व्यापार मे लगना पड़ा। यह १९३६ की बात है।

गांवो की व्यापार द्वारा सेवा करने का मेरा यह प्रयोग एक तरह से असफल ही रहा। फिर भी मुझे अनुभव मिला वह कीमती था। भले कामो का परिणाम अन्त में भला ही होता है, इस पर विश्वास बढा। उन दिनो के साथी तथा गांववालो के सद्व्यवहार का मेरे मन पर अमिट प्रभाव बना रहा।

□ □

१७
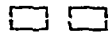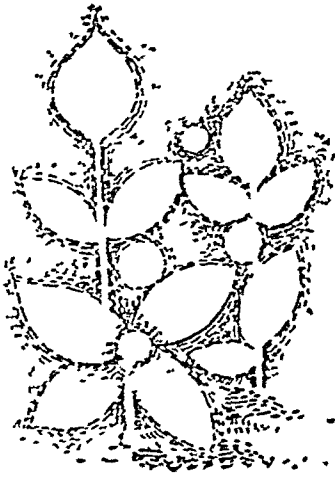
जामनेर की स्मृतियां

फतेपुर और जामनेर मे विकास की दृष्टि से काफी अन्तर था। जामनेर मे राजमलजी ललवानी, युसुफमियां काजी तथा कई गूजर व मुसलमान किसान कृषि के क्षेत्र मे काफी आगे थे। जामनेर के किसान खेती मे प्रति एकड अधिक उपज कर लेते थे। खुशहाल थे और कृषिभूमि का मूल्य भी फतेपुर या उसके पास-पडोस के गांवो से अधिक था। जामनेर के लोग फतेपुरवालो से अधिक उन्नत थे।

राजमलजी ललवानी और काजी साहब ने कृषि के क्षेत्र मे समय, शक्ति और काफी पूँजी लगायी थी। राजमलजी धनी परिवार मे गोद आये थे। धनी तो थे ही, व्यापार भी बम्बई, जामनेर और जलगाव मे चलता था। इन्होने भी प्रारम्भ से व्यापार की ही ओर ध्यान दिया। इन्होने इन स्थानो के अतिरिक्त मलकापुर मे जिनिंग और प्रेसिंग फैक्टरी भी खरीदी थी। पर व्यापार का अनुभव लेने के बाद उन्होने खेती को प्रथम और व्यापार को दूसरा स्थान दिया।

काजीजी भी पहले व्यापार ही करते थे, पर उनकी रुचि खेती मे हो गयी। इन दोनो मित्रो ने कृषि मे अद्‌भुत प्रगति की थी। काजीजी

हर रोज खेत पर जाते थे। ढीले पायजामे पर लम्बा चोगा, सफेद साफा उस पर.धूप से बचने के लिये डाले हुये कपडो मे काजीजी की मूर्ति आज भी नजर के सामने घूमती है। वे शरीर से ऊँचे-पूरे थे और उनकी दाढी उनके व्यक्तित्व को और भी अधिक भव्य बनाती थी। उन्होने इस सिद्धान्त को बहुत अच्छी तरह से समझ लिया था कि खेत मे मालिक के पैरो की धूल ही सबसे बढिया खाद होती है। वे प्रात. ८॥ बजे खेतो मे जाते, जहां मजदूर काम करते होते। दो-ढाई घण्टा घूमकर खेती के काम का निरीक्षण कर वापिस लौटते पाचो वक्त नियमित नमाज पढते थे और सुबह शाम घर के आगन मे तख्ते पर वैठे मिलते। उन्होने खेती के साथ-साथ पशु-पालन के सम्बन्ध को बहुत अच्छी तरह जान लिया था। इसलिए वे पशु-पालन भी करते थे। दूध से नगद पैसा मिलता व गोवर और मूत्र की खाद खेती की अधिक उपज बढाती। उनके यहां का दूध इतना बढिया होता था कि वर्धा मे अपनी गायो के अतिरिक्त वैसा दूध हमे कही पीने को नही मिला। काजीजी अत्यन्त व्यवहारकुशल व्यक्ति थे। दूध की बिक्री नगद पैसे से करते थे। जितने पैसे आने चाहिए, उससे कम आने पर दूधवाले से पूछते—"बेटा, आज किस भैस ने दूध कम दिया ?

वह बोलता—फलानी भैस ने दूध कम दिया। तो चरानेवाले से पूछते—क्या भैस जगल मे ठीक से नही चरी थी ? या उसे ठीक से धोया नही गया था, उसका दूध कैसे कम निकला ?

उनका नौकरो के साथ व्यवहार का तरीका भी मधुर था। इस कारण उनके नौकर औरो से उनके यहां अधिक काम करते थे। शाम को यदि किसी नौकर ने बैल को मारा होता या लोहे की नोक चुभाई होती तो पूछते—बेटा, क्या यह वैल ठीक काम नही दे रहा है ? उसे क्यो मारना पड़ा ? क्या वैल को लोहे की नोक लगाकर खून निकालना अच्छा है ? उत्तर तो नौकर को देना ही पडता था पर फिर भविष्य मे न बैल को लोहे की नोक चुभाता और न उसे मारता। खेती के काम

की पूछताछ करते। खेत मे हल चलता होता तो वे पूछते—आज कितना काम हुआ है ?

एकदिन मे कितना काम होना चाहिए, इसका उनको अंदाज निकाला हुआ होता। उतना काम यदि नही होता तो नोकरो को कारण बताना पडता। फिर किया गया काम देखने सवेरे ही खेत पर पहुँच जाते किससे जितना काम हुआ कहा जाता वह हुआ या नही, इसका पता चल जाता। काजी साहब ने ही राजमलजी मे खेती की रुचि जगायी थी और वे मुझे भी कहते थे—"ऋषभदास, यह मेहनत की कमाई बरकत देनेवाली है। व्यापार मे कितना भी कमाओ उसमे बरकत नही होती। जबसे मैंने खेती की है, मैं हर प्रकार से सुखी हूँ। तू भी खेत खरीद ले और खेती कर। मैंने जामनेर मैं तो नही पर बर्मा आने पर बड़े पैमाने पर खेती और गोपालन का काम किया था।

राजमलजी पर तो खेती का ऐसा नशा छा गया कि उन्होंने व्यवसाय की अपेक्षा खेती के विकास मे लाखो रुपये लगा दिये। उनमे यह धुन थी कि सामान्य खेतो का विकास कर उपजाऊ बनाया जाय। मुझे आज भी याद है उनका माणिकबाग जो आज अच्छी उपज देता है। पहले उसमे १००-२०० रुपये की आमदनी भी नही होती थी। ऊँची-नीची जगह और बडे-बडे खड्डे थे। जमीन भी मामूली ही थी पर उस पर उन्होंने हजारो रुपये खर्च कर वर्षों तक मेहनत की थी। मेरे मित्र धनराजजी भरडेचा जिनके यहां खेती और व्यापार दोनो ही होते थे, एकदिन मुझसे बोले—"ऋषभदास, तुम राजमलजी को क्यो नही समझाते ? जो रुपये वे मिट्टी मे डाल रहे है उसे व्यापार मे लगावे। व्यापार मे यही पूँजी लगाने पर बहुत आमदनी हो सकती है। हमारे सेठ रुपये मिट्टी मे और वह भी ऐसी जगह लगा रहे है जहां बहुत कम आमदनी होने की संभावना है। खेती करनी हो तो अच्छी जमीन लेकर करे। जो उपजाऊ नही है, उसमे क्यो सिर खपा रहे है ?

यह सब मैं जानता था । भाई राजमलजी के साथ इस विषय मे कईवार मेरी चर्चा भी हुई थी । उनका कहना था कि अच्छी जमीन मे ज्यादा आमदनी, कम परिश्रम से होगी यह बात मैं मानता हूँ । पर कम उपजाऊ जमीन को उपजाऊ बनाने के लिए किसान के पास आवश्यक पूँजी नही होती । इसलिए यह काम मुझे करना चाहिए और उपजाऊ खेती किसानो को करने देनी चाहिए । उन्होने माणिकबाग जिसका प्रारम्भ मे मूल्य ५०० से १००० रुपये से अधिक नही था उस पर पचास साठ हजार रुपया खर्च किया और उसमे १०-१२ हजार से अधिक आमदनी होने लगी थी । यह परिश्रम और धीरज उनके सिवाय कौन रखता ?

राजमलजी का कृषि-विकास का कार्य उनके शौक की चीज बन गया ।

जैसे खेती के द्वारा अधिक उपज बढाना राजमलजी का प्रिय कार्य था वैसे ही सामाजिक तथा सेवाकार्यों मे भी वे काफी दिलचस्पी रखते। वे इस बात का प्रयत्न करते रहते थे कि कुरीतियां दूर हो, ताकि उनमे खर्च होनेवाले धन का उपयोग समाजहित के कामो मे हो सके । समाज मे शिक्षा का प्रसार हो, इसलिए छात्रालयो की स्थापना तथा छात्रवृत्ति प्रदान करनेवाली संस्था "खानदेश ओसवाल शिक्षण संस्था" को २५ हजार रुपया एक मुश्त देकर निर्माण किया था । परोपकार के हर काम मे वे सदा अगुआ रहते थे । उनके यहा से कोई मागनेवाला खाली हाथ नही लौटता था ।

आज विज्ञापन और आगे बढने की होडवाले इस युग मे उनके कार्यों का ठीक-ठीक मूल्याकन न भी हो रहा हो तो भी मेरी दृष्टि से राजमलजी व काजीजी ने जो काम किया था वह समाज और देश की सच्ची सेवा थी । उनके इस व्यवसाय व अध्यवसाय ने अनेक लोगो को खेती की ओर आकृष्ट किया और जामनेर मे ऐसे कई किसान तैयार हुये जो खेती से अच्छी फसल लेते थे । उन्होने खेती की तरह ही अनेक सामाजिक और राष्ट्रीय काम किये है । जब काग्रेस का नाम लेने मे

लोग डरते थे तब वर्षों तक जिला कांग्रेस के वे अध्यक्ष रहे। लोकमान्य तिलक की मलकापुर की सभा मे अध्यक्षता करनेवाला सभापति नही मिला तो राजमलजी अध्यक्ष बने। उन दिनो लोकमान्य तिलक की सभा का अध्यक्ष बनना धनवान के लिए खतरे से खाली नही था, इसलिए अकोला के मिलमालिक ने पहले अध्यक्ष बनने की स्वीकृति देकर वक्त पर मना कर दिया था। राजमलजी प्रत्यक्ष होकर किसी पद की इच्छा नही करते। पर जब किसी का कोई काम अटक जाता तो वे उसे उठा लेते। उन्होने कांग्रेस को तन, मन, धन से सहायता दी। बम्बई विधान सभा और केन्द्रीय लोकसभा मे वे वर्षों तक सदस्य रहे। पर तभी तक चुनाव मे खडे रहे जबतक या तो कोई दूसरा चुनाव मे खडा नही होता था या उनके बिना दूसरे के चुनाव में सफल होने की शंका होती। समाज और राष्ट्र की उन्होने सच्ची और निरपेक्ष सेवा की। इसका आजादी के बाद विस्मरण-सा हो गया है और जिन्होने सच्ची और निरपेक्ष सेवा न करके कांग्रेस के विरोध मे ही अपनी सारी शक्ति खर्च की ऐसे लोग या उनके परिवार के लोग कांग्रेस मे या सत्ता के स्थान पर है। उन्हे इसका न तो दुःख है और न वे किसी प्रकार की अपेक्षा ही रखते है। उनमे प्रसिद्धि या कीर्ति की लालसा नही है।

शुभकार्यों के डाले बीज व्यर्थ नही जाते। वे जामनेर की भूमि मे अंकुरित होते दिखाई देते हैं। कई नवयुवको पर उनकी शुभ प्रवृत्तियो का प्रभाव है। उसकी परम्परा चलती है। शुभ कार्यों के बीज न मालूम किस रूप मे कब विकसित होगे यह नही कहा जा सकता। मोतीलालजी धाडीवाल तो पुराने जमाने से सेठ राजमलजी के भक्त रहे हैं। उनमे शुभ कार्यों के लिए आकर्षण हो इसमे कोई खास बात नही है, पर फत्तेराजजी चौरडिया, मनोहर धाडीवाल, मोहन बोरा, शातिलाल, प्रेमकुमार नाहटा, सौ० पानकुंवर पोरवार, रतनलालजी कोठारी आदि कई नवयुवक और प्रौढ उनके सेवाकार्यों के सच्चे वारिस के रूप मे सामाजिक कामो मे दिलचस्पी ले रहे है। आज अपने स्वार्थ

का ही जहा अधिक खयाल रखने का जमाना है, ऐसे समय मे समाज व राष्ट्रहित की भावना जामनेर मे जागृत है, यह सेठ राजमलजी की दीर्घ तपस्या का ही फल है ।

मैं राजमलजी को अपने ज्येष्ठ वन्धु की तरह ही मानता आया हूं । उनके साथ वीते आनन्द के क्षणो को नही भुला सकता । जव हम खेतो मे घूमने जाते थे तो रास्ते मे गाड़ी से उतर कर रास्ते के पत्थर या काटे वीनते हुए खेतो मे पहुँचते और वहा ज्वार की रोटी, प्याज, लहसुन की चटनी के साथ खाने मे अद्भुत आनन्द मिलता ।

राजमलजी एवं काजीजी की तरह जामनेर के अनेको मित्रो का अगाध प्रेम मैंने पाया । आज भी जामनेर जाता हूं तो उनसे मिलकर गद्गद् हो जाता हूं । फखरुल्लाखाँ, अव्दुल अजीज, कालेखा, रजवअली वोहरा, मोतीलालजी ललवानी, मोतीलालजी धाडीवाल, माणकचंद वेदमुथा, आनन्दा पटेल, गुलाव मास्टर आदि अनेको का प्रेम मिला । जव मैं जामनेर छोड़ने का निर्णय कर वाहर जाने को हुआ तो कितनो की आंखो मे आंसू थे । आज भी याद करता हूं तो हृदय भर आता है । जामनेर ही नही, आसपास के लोगो मे भी आत्मीयता व प्रेम था । यह प्रेम ही तो मेरी सवसे वड़ी थाती है । मैं फतेपुर, जामनेर, जलगाव, वर्धा, पूना और वम्वई मे रहा, पर यदि जामनेर जैसा फिर कही प्रेम पाया तो वह स्थान वम्वई ही है । यो तो सभी जगह अनेक मित्र, शुभ-चिन्तक मुझे मिले, पर जामनेर और वम्वई ने जो प्रेम दिया वह अद्भुत और अवर्णनीय है ।

मेरे पुत्र चि० राजेन्द्र की दु खद मृत्यु जिस दिन हुई उस दिन महाराष्ट्र के किसानो का सबसे वडा त्यौहार पोला था । जामनेर निवासियो ने पोले के त्यौहार को न मनाकर मेरे प्रति संवेदना प्रगट की थी ।

कोई ऐसा न माने कि वहा किसी से मतभेद नही था । मतभेद था और कुछ व्यापारी लोग जैसे मूलचन्दजी कोठारी व चुनीलालजी गादिया

मुझे अव्यावहारिक मान कर मेरी आलोचना भी करते थे। पर इस आलोचना मे मेरे हित की चिन्ता ही अधिक रहती थी। मुझे हानि पहुँचे यह इच्छा उनमे नही थी। उनका मुझ पर अत्यन्त प्रेम था। वह मुझे भला किन्तु भोला समझते थे। उनकी बैठक मेरे पडौस मे रोजाना होती थी और कभी-कभी उनकी आलोचना सुनने को भी मिल जाती।

मेरे एक साथी हनुमन्त कोलते जिनका विवाह जब मेरे पास रहते थे तब हुआ था, उनकी पत्नी जो बम्बई की थी जामनेर अनुकूल न पडने से वापिस चली गई। दादा धामणस्कर और चम्पालालजी लोढा उस समय साथ थे। उन्होने दुकान सभालने का आश्वासन देकर मुझे उस दायित्व से मुक्त कर दिया और मैं जमनालालजी के मार्गदर्शन मे व्यापार करने के लिए वर्धा जा सका। मेरे जामनेर से चले जाने के बाद भी कुछ वर्षों तक मेरे नाम से ही दुकान चलती थी। पर जब मेरा जामनेर से व्यावसायिक सम्बन्ध नही रहा तो वह दुकान मेरे दोनो साथियो को सौप दी। जिसे वे वर्षों तक चलाते रहे। पर अब वे भी अलग हो गये है और दोनो की अलग-अलग दुकाने है। दादा धामणस्कर ने दुकान अपने पुत्र को सौप दी और आजकल मुझे सेवा-कार्यों मे साथ देते है।

यद्यपि मैंने जामनेर छोड़ा पर मेरे साथी दादा धामणस्कर ने मेरे प्रतिनिधि के रूप मे वर्षों तक जामनेर की सेवा की और वे वही पर बस गये। उनका परिवार जामनेर मे है फिर भी सेवाकार्यों मे साथ देने के लिए बम्बई रहते है।

जामनेर मे मेरे पड़ौसी मोतीलालजी धाडीवाल के पुत्र मनोहरलाल जी धाड़ीवाल के मन मे मेरे विषय मे एक जिज्ञासा थी, उसका उल्लेख कर देना चाहता हूं। जब मैं जामनेर से व्यापार के लिये बाहर रहने लगा तब भाई मनोहर की उम्र दस-बारह साल की होगी। धाड़ीवाल परिवार मेरा पडौसी था और उनके साथ मेरे अत्यन्त आत्मीय सम्बन्ध

थे। उन्हे मेरी आर्थिक कठिनाई का पता ही नही था, पर मेरे लिये वडी सहानुभूति भी थी। मुझे कमाई के लिए घर के लोगो को छोडकर वाहर रहना पड रहा है, इसकी सहृदयता पूर्ण चर्चा उनमे होती। मैं वीमे का करने लगा था। उसके लिये मोटर खरीदी थी और मोटर से आता जाता। रहन-सहन मे भी गरीवी के दर्शन नही होते तव वालक मनोहर पिताजी से जिज्ञासा करता कि—आप कहते है कि ऋषभदासजी अपने से गरीव है, पर वे तो मोटर मे घूमते है फिर वे हमसे गरीव कैसे?

मोतीलालजी उसे समझाने का प्रयत्न करते, उनकी आर्थिक स्थिति उन दिनो मुझसे अच्छी थी। पर वालक मनोहर की जिज्ञासा अतृप्त ही रही। मैं दरिद्र भी था तो भी दारिद्र्य के कोई लक्षण उसने मुझमे या मेरे परिवार मे नही देखे। दरिद्रो मे दीनता के दर्शन होते है, पर धनवान न होने पर भी उसने मुझमे दीनता नही देखी। मुझमे सदा यह आत्मविश्वास रहा कि परिश्रम से परिस्थिति को वदली जा सकती है। इस आत्मविश्वास ने आर्थिक संकट मे भी साथ नही छोडा।

□ □
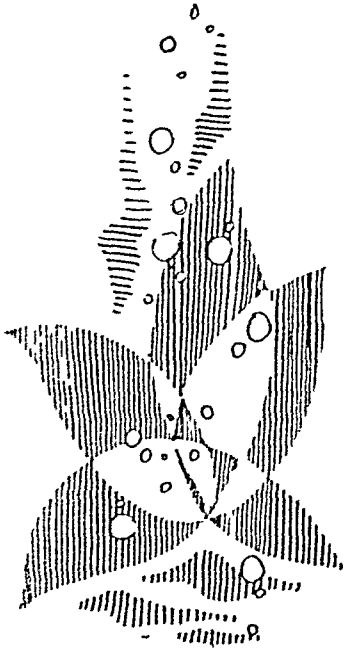
१८

वर्धा निवास

मैं अपने कार्य को अधिक निर्दोष एवं अच्छा वनाना चाहता था इसके लिए मुझे जलगाव मे स्व० दास्तानेजी का मार्गदर्शन प्राप्त था। वे वहुत त्यागी तथा देशभक्त थे। गाधीजी के प्रति निष्ठा के कारण वे अपनी अच्छी चलती हुई वकालत छोडकर गाधीजी के रचनात्मक कार्यो को महाराष्ट्र मे आगे वढाने का प्रयास करते थे। उनके साथी थे शंकररावदेव और देवकीनन्दन। देव, दास्ताने, देवकीनन्दन की त्रिपुटी थी जिसने महाराष्ट्र के काग्रेस कार्य तथा गांधीजी के रचनात्मक कामो को काफी आगे वढाया था। मेरा विशेष सम्वन्ध दास्तानेजी व देवकीनन्दनजी से रहता था। दास्तानेजी वडे ही सहृदय सज्जन थे। मुझ पर पुत्र की तरह प्रेम करते थे पर वे आवश्यक वात का भी निर्णय जल्दी नही कर सकते थे। देवकीनन्दनजी बुद्धि से तीव्र एवं कुशल थे पर मुझे ऐसा मार्गदर्शन आवश्यक लगता था जो मुझे विकास की दिशा मे आगे वढावे और मुझसे काम अधिक और निर्दोष हो।

मेरी कठिनाई मैंने स्व० जमनालालजी से कही। मै उनके साथ

मद्रास काग्रेस मे गया था। जब वापिस वम्बई लौटा तो वहा उन दिनो स्व० श्री कृष्णदासजी जाजू आये हुये थे। उनसे बात हुई। उन्होने अपनी वहुत कम वोलने की आदत के अनुसार कहा—"यदि तुम वर्धा आओ, तो मैं तुम्हारे लिए कुछ कर सकता हूँ, तुम्हारे काम मे कुछ भी दे सकता हूं।" मैं उन दिनो जलगाव से महाराष्ट्र के करीब १२ खादी-भण्डारो की व्यवस्था देखता था और इन सभी खादी-भण्डारो को माल की पूर्ति के लिए जलगाव मे 'महाराष्ट्र वस्त्रागार' खोल रखा था। जहा से सभी भण्डारो को माल की पूर्ति होती, और सिलवाने, रंगवाने, छपवाने, धुलवाने आदि कार्य होते। महाराष्ट्र वस्त्रागार, वर्धा जा सके तो स्व० जाजूजी का मार्गदर्शन मिल सकता था। इसकी मैंने चर्चा शुरु की, जिसका देवकीनन्दनजी और कुछ साथियो ने प्रवल विरोध भी किया परन्तु इस वीच एक वात ऐसी हो गयी जिससे वस्त्रागार को वर्धा ले जाना आवश्यक हो गया।

महाराष्ट्र कपास का प्रदेश होते हुये यहां खादी उत्पादन के अनुकूल वातावरण नही था। कुछ खादी धुलिया व जलगाव जिले मे होती थी जो वहुत मोटी होती। पर जब चादा जिले मे खादो उत्पादन होने लगा तो वहा की खादी यहा की खादी से महीन होने लगी। और चूँकि कताई वुनाई पहले से ही चल रही थी इसलिए वहा खादी का काम वढाने मे अनुकूलता भी अधिक थी। जव महाराष्ट्र चर्खा-संघ ने चांदा जिले के सावली मे खादी उत्पादन का प्रयत्न किया तो वहा उत्पादन तेजी से वढने लगा। इसलिए वर्धा मे वस्त्रागार रखना व्यवहारिक दृष्टि से सुविधाजनक लगा और महाराष्ट्र खादी-वस्त्रागार जलगाव से वर्धा आया। मैं भी वस्त्रागार के साथ वहा रहने आया। यह लगभग १९२७ ई० की वात है। वर्धा आने पर आज जो महिलाश्रम के शिक्षक का क्वार्टर है, मैं उसमे रहने लगा। जाजूजी भी उन दिनो वही रहते थे और विनोवाजी का आश्रम भी वही पर था।

वस्त्रागार शहर मे सेठजी की दुकान के अहाते मे था। मैं और जाजूजी आश्रम से काम के लिए शहर आते।

कोई व्यक्ति सहायता मागने के लिये आये तो उसके लिए कुछ करने की वृत्ति तो मेरी प्रारम्भ से ही थी परन्तु वर्धा जाने पर चिरंजीलालजी वडजात्या के सम्पर्क से उसमे कुछ वृद्धि हुई।

एकदिन चिरंजीलालजी लगभग ३५ साल के एक मारवाडी सज्जन को मेरे पास लाये और वोले—"देखो, यह भाई ओसवाल जैन है, कहता है कि बेकार है, यदि कुछ काम दिलाया जा सके तो अच्छा।"

मेरे मित्र कमलनयनजी बजाज अकसर कहा करते है कि मै आदमी की ठीक पहचान करने मे कच्चा हूँ इसलिए बार-बार ठगा जाता हूं। इस भाई के विपय मे भी वैसा ही हुआ। उसे काम पर लगाया गया। रहने के लिए सेठजी के वगीचे मे दो कमरे दिला दिये। वह काम करने लगा। कुछ दिनो के बाद देखा कि छोटी-मोटी चीजे गायव होने लगी। वर्प के अन्त मे जब स्टाक लिया गया तो पश्मीने की शाल भी गायब थी। हम वडी परेशानी मे थे।

एक रोज जाजूजी की पत्नी ने मुझे जरी की साडी की किनारी जाजूजी के भतीजे श्री वल्लभदासजी की पत्नी को देने के लिए दी, मैंने अपने भोजन के डिब्बेवाली थैली मे रख ली और काम मे लग गया। जब भोजन के लिए डिब्बा निकाला तो वह किनारी की साडी का वण्डल गायव। मैं परेशान। किया भी क्या जाय? मेरे साथियो से चर्चा और तर्क करने लगा कि यह किसने ली होगी। इस प्रकार जरी की किनारी तो राजस्थानी के सिवाय दूसरा कोई नही ले जा सकता। और वहा कार्यकर्ताओ मे राजस्थानी तो मेरे सिवा वही सज्जन मूलचन्दजी थे जिन्हे मैंने रखवाया था। मैंने जाजूजी से मूलचन्दजी के विपय मे अपना सन्देह वताया। जाजूजी गम्भीरतापूर्वक वोले—"ऋषभदास, कोई बुरा काम करे उसे सजा देना जैसे न्याय है वैसे ही कोई अपराधी न हो उसे अपराधी सावित करना महान अपराध है।"

उनकी वात तो ठीक थी पर हम सवका शक तो मूलचन्दजी पर ही था। अन्त मे वडी कठिनाई से हमने उनकी इजाजत ली कि हम जाकर उनके घर की तलाशी ले।

मैं अपने तीन-चार साथियो को लेकर सेठजी के वगीचे मे "जो आजकल मगनवाडी कहलाती है" पहुँचे और जहा मूलचन्दजी रहते थे वहा गये। वहां देखा कि २-३ टाट के टुकडो के सिवाय कुछ भी सामान कहा है? वे वडी दीनता धारण कर वोले, मेरे पास तो कुछ भी सामान नही है। इसी टाट पर हम सोते है और कपडे भी शरीर पर है उससे अधिक नही है। एकवार तो ऐसे दरिद्र व्यक्ति पर शक करने का दु ख हुआ और हम वापिस लौटे। हमारे साथी पीछे देख रहे थे। उन्होने देखा कि सण्डास से उनकी लडकी वाहर आई। परन्तु उसके हाथ मे लोटा या डिव्वा कुछ नही था। हमे शक हो गया। हम वापिस आये और संडास मे देखभाल करने लगे तो वहा हमे एक वहुत वडी पोटली वँधी हुई मिली। खोलकर देखा तो उसमे चुराई हुई अनेक वस्तुएँ थी। हमने जाजूजी को वुलाया। उनके सम्मुख सव चीजे रखी जिनमे पिने, पेंसिले, चाकू, निव से लगाकर पश्मीने तक की कई चीजे थी।

जाजूजी की मुद्रा यो गम्भीर थी पर यह दृश्य देखकर तो और भी गम्भीर हो गयी। सिर्फ इतना ही वोले—"इन्हे चोरी की वीमारी थी। नही तो ऐसी छोटी-छोटी चीजे भी वे क्यो चुराते?"

वात ठीक थी। मूलचन्दजी को चोरी की वीमारी ही थी, जो चीज हाथ लगती वे उठाकर ले जाते।

हम वह सामान उठाकर ले आये। हमारा तो विचार था कि उन्हे पुलिस के अधीन करे पर जाजूजी ने कहा कि इन्हे अपने यहा से छुट्टी देना ही काफी है। हमने छुट्टी दे दी।

मैंने जाजूजी से वहुत कुछ सीखा। वे जनक की तरह विलकुल निस्पृह थे। वे वता रहे थे कि उन्हे कभी मोह नही हुआ। उनका वैराग्य सहज था। वैसे वे अनुशासन मे वहुत कठोर थे। कोई असत्य

वात सहन करना उनके लिए असम्भव था। उनकी वृत्ति की जानकारी के लिये एक प्रसंग वताना उपयुक्त होगा।

चूँकि शहर से हमारे रहने का स्थान १॥ मील था। पैदल जाने मे समय अधिक लगता था इसलिए उन्होने मेरे लिए साइकिल का आदेश दिया। साइकिल खरीदी गई लेकिन सीखते समय ही घुटने मे चोट लगी तो मैंने सीखना वन्द कर दिया।

एकदिन जमनालालजी एवं जाजूजी के साथ शहर से आश्रम जा रहा था तो जाजूजी ने पूछ लिया—ऋषभदास ! तुम्हारी साइकिल कहां है ?

मैंने कहा—काकाजी, मैं तो उस पर चढा ही नही।

जमनालालजी वोले—चढे क्यो नही ?

मैंने जवाव दिया—सीखते समय ही गिर गया था, घुटने पर चोट आई तो फिर सीखने का प्रयत्न ही नही किया।

जमनालालजी वोले—तुम कैसे जवान हो, देखो मैं अभी भी साइकिल पर चढता हूं। जवकि मुझे साइकिल चलाने मे कलकत्ता मे भयंकर चोट लगने पर आपरेशन करवाना पड़ा था। फिर वे जाजूजी की ओर मुडकर वोले—वकील साहव, [वे जाजूजी को वकील साहव ही कहते थे] आप साइकिल पर चढे या नही ?

जाजूजी मुस्कुरा कर वोले—जी, क्या चढता, वचपन मे तो मैं वालक था और उम्र वढी तो वडा ही हो गया।

ऐसे वैराग्यशील व्यक्ति के पास रहकर सीखना मेरे लिये वडे भाग्य की वात थी। जैसे उनके उच्च-जीवन का मुझ पर प्रभाव पड़ा वैसे ही कई व्यावहारिक वाते भी सीखने को मिली। वे किसी भी समस्या को वहुत जल्दी समझ लेते थे और निर्णय भी अविलम्व देते और मैंने देखा उनके शत प्रतिशत निर्णय ठीक ही होते। जीवन मे मुझे अनेक श्रेष्ठ व्यक्तियो के पास रह कर काम करने के अवसर मिले पर जाजूजी जैसे अचूक निर्णय देनेवाले व्यक्ति वहुत कम देखने मे आये। निर्णय की अचूकता

के साथ-साथ उनमे ऐसी स्पष्टवादिता भी थी जिसमे कही भी उन्होने असत्य के साथ समझौता किया हो यह दिखाई नही पडेगा। मितव्ययी तो इतने अधिक थे कि किसी भी चीज का अपव्यय वे सहन नही कर पाते। वे कहा करते थे कि सेवाकार्य मे पैसे को रुपया समझो और रुपये को चक्का समझकर खर्च करना चाहिए। उनमे किसी प्रकार की सत्ता या कीर्ति की लालसा यत्किंचित् भी नही थी। सत्ता का लोभ तो छू तक नही गया। उन्होने राज्य का मुख्यमंत्री-पद, केन्द्र का अर्थमंत्री-पद और राज्यपाल के पद के लिए आग्रहपूर्ण आमंत्रणो की स्वीकृति नही दी थी।

शायद सन् १९३७ की बात है। उन दिनो मध्यप्रदेश व बरार के कांग्रेस मुख्यमंत्री डा० खरे थे। उन्होने कांग्रेस हाई-कमान के पूछे बिना ब्रिटिश गवर्नर की सलाह से अपने मंत्रिमण्डल मे परिवर्तन कर लिया। इस कार्यवाही से कांग्रेस के नेता बहुत नाराज हुये और सरदार पटेल ने, जो कांग्रेस पार्लियामेण्टरी बोर्ड के अध्यक्ष थे, डा० खरे को आदेश दिया कि वे मुख्यमंत्रीपद से फौरन त्यागपत्र दे दे। नये मुख्यमंत्री का चुनाव करने के लिए प्रदेश कांग्रेस विधानसभा पार्टी के सदस्यो की एक आवश्यक मीटिंग वर्धा के नवभारत विद्यालय हाल मे रखी गयी।

गांधीजी ने सरदार साहब को सुझाव दिया कि डा० खरे की जगह खादी ग्रामोद्योग संघ के अध्यक्ष और वयोवृद्ध, अनुभवी तथा रचनात्मक कार्यकर्ता श्री कृष्णदासजी जाजू को मध्यप्रदेश का नया मुख्यमंत्री चुना जाये। सरदार पटेल ने यह सुझाव फौरन मंजूर कर लिया। गांधीजी ने श्री जाजू को सेवाग्राम आश्रम बुलाकर उनके सामने यह प्रस्ताव रखा। किन्तु जाजूजी ने अपनी असमर्थता प्रगट की—"बापूजी, मैं तो कांग्रेस पार्टी का सदस्य भी नही हूँ।"

"उसमे कोई दिक्कत नही होगी। आप छह महीने के अन्दर कही से भी चुन लिये जायेंगे।"—गांधीजी ने समझाया।

"लेकिन मुझे तो शासन चलाने का बिलकुल अनुभव नही है। बापू, मुझे राजनीति मे मत डालिये।"

गांधीजी ने फिर आग्रहपूर्वक कहा, "जाजूजी, हमे अब ऐसा मुख्य-मंत्री चाहिए जिसमे कांग्रेस व जनता का विश्वास हो। आपको तो कांग्रेस एकमत मे चुनने को तैयार है, फिर चिन्ता क्यो ?"

लेकिन जाजूजी की हिम्मत नही हुई। वे बोले, "बापूजी, मुझे इस दलदल मे मत डालिये। इस जिम्मेदारी को उठाने की मेरी शक्ति नही है।"

गांधीजी ने गम्भीरता से कहा, "आपको हिम्मत नही हारनी चाहिये जाजूजी, भगवान का नाम लेकर इस काम को उठा लीजिये। निर्बल के बल राम।"

जाजूजी गद्‌गद् हो गये। वे कुछ उत्तर न दे सके। उन्होने फिर सोचने के लिये कुछ समय मांगा। अन्त मे वे राजी न हुये।

इसी प्रकार श्री षण्मुख चेट्टी के इस्तीफे के बाद श्री नेहरूजी ने जब उन्हे केन्द्रीय वित्त-मंत्री का पद स्वीकार करने के लिए कहा तो उन्होने अस्वीकार कर दिया। इस सम्बन्ध मे श्री मन्नारायणजी ने जब उनसे अस्वीकृति का कारण पूछा तो श्री जाजूजी गम्भीर होकर बोले—"भारत के वित्तमन्त्री को केवल भारतीय अर्थनीति ही नही, अर्न्तराष्ट्रीय अर्थ-नीति मे निष्णात भी होना चाहिए। इस दायित्व को सम्हालने से पहले यदि अर्न्तराष्ट्रीय अर्थनीति मे निष्णात न हो तो उसके हाथ मे देश की सेवा होने के बदले कुसेवा ही हो सकती है। इसलिए मैंने वह दायित्व नही लिया।"

श्रीमन्नजी ने कहा—"आप जैसो को अन्तर्राष्ट्रीय अर्थनीति की जानकारी प्राप्त करने मे चार-छह महीने लगेंगे, तबतक आप सेक्रेटरियो की सहायता से ही काम करवा सकते थे ?"

श्री जाजूजी ने कहा—"जिस बात की मुझे जानकारी न हो उसके लिए दूसरो पर निर्भर रहकर काम कराने मे बहुत बड़ी जोखिम रहती

है। सेक्रेटरी के लाये हुए कागज पर विना समझे स्वीकृति देना मेरे लिए सम्भव नही था इसलिए मैंने नेहरूजी से क्षमा माग ली।"

श्री जाजूजी से राज्यपाल पद के लिए भी कहा गया, परन्तु वे सत्ता के स्थान पर वैठकर सेवा करने की अपेक्षा अन्त तक विना सत्ता के ही सर्वोदय और भूदान का काम करते रहे।

मैं वर्धा दो वार रहा। प्रथम २८ से २९ के प्रारम्भ तक, तब खादी-कार्य करता था और विनोवाजी के आश्रम के पास शिक्षक-निवास मे रहता था। दूसरी वार व्यवसाय के साथ सेवाकार्य करते हुये मैं सन् १९४० से १९५१ तक रहा।

पूज्य वापू के वहा रहने के कारण वर्धा, तीर्थ-स्थान वन गया था जहा पवित्र, पावन देशभर की महान विभूतिया एक दूसरे से मिलती। सौभाग्य से मेरा वहा रहना हो रहा था अत उनके निकट रहकर वहुत कुछ देखा, सुना और सीखा। महापुरुषो के सहज हास्य-विनोद भी कितने अर्थ भरे एवं प्रेरणादायी होते थे, उसकी वानगी प्रस्तुत करना चाहता हूं।

यह उन दिनो की वात है, जव जमनालालजी चर्खा-संघ के अध्यक्ष थे और मंत्री थे श्री शंकरलाल वैंकर। चर्खा-संघ की सभा के लिये पं० जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल, राजेन्द्र वावू, राजाजी, पट्टाभिसितारमैया और कृपलानीजी आदि प्रमुख नेता आये हुये थे। जमनालालजी का यह कटाक्ष रहता था कि भोजन की एक ही पगत हो और वह ठीक ११ वजे शुरु हो जाय। भोजन की पहली घण्टी १० मिनिट पहले होती थी, दूसरी ५ मिनिट पहले और तीसरी समय पर। सभी आकर भोजन को वैठे। किन्तु शंकरलाल वैकर को कुछ विलम्ब हो गया। उनके आने पर सेठजी जवाहरलालजी से वोले—"पंडितजी! हमारे ये मत्रीजी, खादी का काम संभालते है लेकिन इनकी फैशन आज भी कम नही हुई है, धोती पहनने मे १५ मिनिट लग जाते है। लेकिन १९२०-२१ के पहले तो इनका हाल मत पूछिये, साहव कोट-पेण्ट पहन

कर वापू के पास आते थे तव इनके वैठने के लिए वापू कुर्सी मंगवाते थे और इनके आगे हम तो नीचे चटाई पर ही वैठते थे। हमारी तरफ से वहुत तुच्छ दृष्टि से देखा करते थे।

वेकरजी ने उत्तर दिया—"पडितजी, तव हमारे ये अध्यक्ष, मोटी सी पगडी वाधकर महात्माजी के पास आते थे। मैंने सोचा कोई वनिया महात्माजी से धन या बेटा मांगने आया होगा। मुझे क्या मालूम था कि यही वनिया आगे चलकर मेरा अध्यक्ष वनेगा और उसके अधीन मत्री के रूप मे मुझे ही काम करना पडेगा।"

सभी खिलखिलाकर हँस पडे। पं० नेहरू, जमनालालजी और शंकरलालजी का जन्म एक ही साल मे हुआ था और वे हम-उम्र थे।

१९२८ की वात है। सर्दी का मौसम था। गाधी-सेवा-संघ की सभा चल रही थी। कृपलानीजी सुहावनी धूप का आनन्द लेने के लिये तम्वू के दरवाजे पर वैठकर मीटिंग की कार्यवाही सुन रहे थे। इतने मे एक मोटर मारवाडी छात्रालय के अहाते मे आकर खड़ी हो गई। जिसमे उस समय के मध्यप्रदेश के एक मंत्री श्री केदार, सेठजी से मिलने आये थे। उन्होने कृपलानीजी को इशारे से बुलाया। वे वहा गये और आकर वापस अपनी जगह पर वैठ गये। वहा खड़े हुये केदारजी पर मेरा ध्यान गया, मैं उनके निकट गया और उनसे पूछा—आप किससे मिलने आये है?

वे वोले—"सेठजी से आवश्यक काम है। सिर्फ चन्द मिनिटो के लिये भी आ सके तो वहुत कृपा होगी, आप यह सन्देशा उनसे कहे।"

मैंने आकर सेठजी को वताया कि मिनिस्टर केदार आपसे मिलने आये है। सेठजी गये और वापिस आकर वोले—सरदारजी! देखिये तो यह चौकीदार ठीक से काम नही करता है, हमारे मिनिस्टर साहव ने इसे वुलाकर सन्देशा कहा था कि वह हम तक पहुँचा दे लेकिन यह चुप-चाप आकर वैठ गया और मिनिस्टर साहव का समय वरवाद कर दिया। यह तो ठीक ही हुआ कि ऋपभदास का ध्यान चला गया, नही

तो उन्हे और भी ठहरना पड़ता।"

इस पर कृपलानीजी वोले—"होगा कोई मिनिस्टर-विनिस्टर, हमे क्या ? उसने जव मुझे चौकीदार समझा तो मैंने भी उसे ऐरा-गैरा माना और आकर वैठ गया। मुझे गर्ज ही क्या पडी कि मैं उसका सन्देशा कहता फिरूँ ?"

वात यह हुई कि श्री केदारजी ने, कृपलानीजी की वेपभूषा देखकर उन्हे चौकीदार ही समझा था—भैया चौकीदार ! सेठजी से कहो, केदार साहव मिलने आये है।

गाधीजी ने गौ-सेवा के काम को सुव्यवस्थित करने के लिए पुराने गौ-सेवा सघ के स्थान पर जमनालालजी के नेतृत्व में नये गौ-सेवा संघ का प्रारम्भ किया। जमनालालजी ने अल्पकाल मे ही उसे गतिशील वना दिया। जो गौ-सेवा के कार्य मे दिलचस्पी लेनेवालो को वहुत अच्छा लगा। ऐसे लोगो मे से श्री राजमलजी ललवानी भी एक थे। एकबार वे मेरे यहा आये। उन्हे बापूजी ने वताया कि गौ-सेवा के काम को मैं स्वराज्य से भी कठिन मानता हूँ इसलिए जमनालालजी पर इस काम की जिम्मेदारी डाली गई है, वे मेरे मुश्किल से मुश्किल काम को भी आसान वना देते है। क्या करूँ, गाय को नही बचाया जा सका तो हिन्दुस्तान वर्वाद हो जायगा। खेती प्रधान भारत के लिये गाय को बचाने का मतलव अपने आपको वचाना है। गाय दूध देती है, खेती के लिये वैल और खेती की उपज बढाने के लिये खादी देती है और अनाज के वाद घास-फूँस पर अपना काम चला लेती है। पूजा करनेवाले ऐसी उपयोगी गायो पर भी जव इतना अधिक अत्याचार करते है तो यह एक भयानक वात है। इसलिए इस उपयोगी और कठिन काम को जमनालालजी को सौपा है। आप सबको उनका साथ देना चाहिये।"

राजमलजी वोले—"वापूजी, आपने यह काम हाथ मे लेकर बहुत अच्छा काम किया। एक उपयोगी जानवर को क्रूरता से वचा लिया पर एक और जानवर है उस पर इससे भी ज्यादा अत्याचार होता है

और वह है गधा । जव वोझा ढोना होता है तव पकड़ कर उस पर वोझ डाल दिया जाता है । दिनभर काम लेकर लाठी से मारकर भगा दिया जाता है । कोई उसकी सुध नही लेता कि इसने क्या खाया है, या भूखा ही रहा है । अधिक क्या कहूं जिनका उससे सम्वंध नही आता ऐसे लोग भी मूर्खता की ओर संकेत करने के लिये इसके नाम का उपयोग करते है मानो काम लेकर अधिक सेवा करना मूर्खता ही हो । उरा वेचारे अत्याचार पीडित जानवर के लिये भी आप कुछ करें तो वडी कृपा होगी ।"

वापूजी गम्भीर मुद्रा वनाकर वोले—"तुम्हारा कहना ठीक है, पर एक आदमी के लिये सभी काम सम्भव नही है । मैंने तो गाय संभाल ली है तुम गधे को सम्भाल लो । उसकी सेवा के लिये गधा-सेवक-संघ वना लो ।"

जमनालालजी के साथ मजाक करनेवालो मे से प्रमुख सरदार वल्लभभाई पटेल, घनश्यामदासजी विडला और कृपलानीजी थे । और जव भाग्यवश यह त्रिमूर्ति साथ होती तो विनोद का सिलसिला देखने काविल होता और इतना मजाक चलता कि जिसकी हद ही नही । खासकर भोजन के समय हँसी मजाक अधिक होता था । सरदारजी थाली पर वैठते ही कहते विडलाजी, वताओ आज कौनसी सव्जी परोसी जायेगी ? विड़लाजी कहते—"आलू तो जरूर ही होगे, क्योकि आलू ही सवसे सस्ती है । कृपलानीजी वीच मे ही वोलते— अरे भाई, और भी सव्जिया आती है जो वाजार मे सस्ती से सस्ती होती है । यह तो वनिये का चौका है, यहा तो सव चीजे सस्ती ही आवेगी ।"

विड़लाजी कहते- क्या वतायें, इन हरिभाऊजी को हम तो अपने यहा रवड़ी खिलाते है पर वहा तो ये सूखने लगते है और यह जमना लालजी की रावड़ी "वाजरे का छाछ मे पकाया गया पदार्थ" इनका वजन वढाती है ।"

सरदारजी पंगत मे कोई नया आदमी देखते तो कहते—"भई ध्यान

रखना, यह मारवाडी का चौका है, कही भूलकर भी पापड न माग लेना। यदि पापड आ गया तो फिर कुछ भी नही परोसा जायगा। और भूखे ही उठना पड़ेगा। इसलिए भोजन के बीच मे पापड न मांगना।" गुजरात और महाराष्ट्र मे भोजन के साथ पापड परोसा जाता है और मारवाड मे भोजन के बाद।

वर्धा आने का मेरा लक्ष्य सफल रहा। जाजूजी जैसे गुरु को पाकर बहुत कुछ सीखा। एक तरह से वर्धा-निवास और सेवाकार्य मेरी पाठशाला ही थी वहा जो शिक्षा पाई वह ऐसी थी कि बीच-बीच मे भूलता रहा होऊँ फिर भी उसे भुला नही पाता।
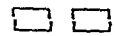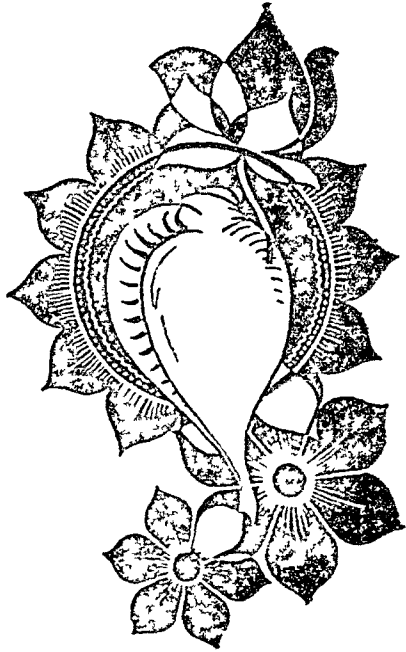
१९

जीवन-साधक के साथ उनके अन्तिम समय में

१९४१ व १९४२ का समय मेरे लिए अत्यन्त शिक्षाप्रद रहा है। एक महान जीवन-साधक के निकट सम्पर्क मे रहकर उसके अन्तर-संघर्ष और जीवन सिद्धि प्राप्ति की व्याकुलता एवं प्रयत्नो को निकट से देखने का सौभाग्य मिला।

यह मेरा सद्भाग्य रहा है कि मुझे अनेक जीवन साधको के निकट सम्पर्क मे रहने और उनके जीवन से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। साधको के विविध प्रकार और साधना मार्गो को समझने के प्रसंग आये। जिन्हे कभी मोह हुआ ही न हो और सदा सहज विरक्त जीवन रहा हो, मैंने ऐसे भी साधक देखे। ऐसे साधको मे श्री कृष्ण दास जी जाजू थे। ऐसे साधको के निकट भी रह जिनका अन्तर-संघर्ष निरन्तर जीवन के अन्त तक चलता रहा हो।

स्व० जमनालालजी वजाज के अन्तिम समय मे मैं उनके पास था। जीवन मे बजाजजी का सामीप्य और मार्गदर्शन पाने के लिए मैं अपने परिवार को जलगाव से वर्धा ले आया था। मेरा अधिकांश समय उनके साथ उनके वताये कार्यो मे वीतता था। उन्होने अपने तीन कार्य मुझे

सौंपते हुए आदेश दिया था कि मैं उन्हे करूं। उसके लिए उचित व्यवस्था उन्होने करदी थी। वे तीन कार्य थे—गो-सेवा, अतिथि-सेवा, और निजी हिसाब एवं बही खाते लिखना। इनमे गो-सेवा और अतिथि सेवा उन्हे अत्यन्त प्रिय थे।

मैं अपना अधिकाश समय इन्ही कामो मे लगाता और थोडा समय मेरे व्यवसायिक कार्यों मे भी लगाता था। सबेरे उनके साथ घूमने जाता तो वे मुझे दिन मे करने के काम वता देते। स्नानादि से निवृत होकर मैं गोपुरी मे गो-सेवा संघ के काम के लिए चला जाता। ७ बजे से १० वजे तक वह कार्य कर घर लौट कर भोजन करता। फिर १ घन्टा अतिथिगृह मे देता। जब कांग्रेस वर्किंग कमेटी की मिटिंग या किन्ही विशेष कारणो से विशेष-अतिथि आते तो फिर १२ बजे तक ठहरना होता। उन्हे भोजन करवा कर मेरे व्यवसायिक दफ्तर मे जाता और ४ वजे तक वहा का काम निपटा कर घर आकर भोजन कर अतिथि-गृह मे महमानो के काम को देखता। सेठजी अपने अन्तिम समय मे फूस की कुटिया वनाकर गोपुरी मे रहने लगे थे, जो अतिथि-गृह से एक मील के फासले पर थी। सवेरे घूमते हुए बजाजवाड़ी आते। अतिथि-गृह मे ठहरे हुए महमानो की पूछताछ कर उनसे मिलकर सेकसरिया कालेज, महिलाश्रम और काकावाडी होकर गोपुरी कुटिया पर पहुँचते। रास्ते मे वीमारो से मिलने और घूमते समय दूसरो के सुख दु.ख या समस्याओ को समझने, सुलझाने का प्रयास चलता रहता।

यो तो स्व० बजाजजी का अन्त-र्संघर्ष कई दिनो पहले शुरु हो गया था। सन्त तुकाराम के इस कथन के अनुसार कि "हमे तो दिन-रात युद्ध ही करना होता है" वे अपने अन्तर-शत्रुओ से संघर्ष के लिए सावधानी पूर्वक प्रयत्न करते रहते थे और वे अपने दोषो के निवारण के लिए कई बार तो इतने उग्र हो जाते थे कि आत्महत्या के विचार तक उनके मन मे आ जाते थे। उन्होने ४९ वर्ष पूरे हो जाने पर ५०वे वर्ष मे प्रवेश के समय जब गांधीजी को वह महत्वपूर्ण पत्र लिखा था

तव उस दिन मैं वर्धा ही था।

१९३८-३९ मे उन्हे लगता था कि वर्तमान जीवन से उच्च जीवन वनान भ नवा संहो तो स्वार्थ की दृष्टि से भी मृत्यु स्वागत योग्य व श्रेयकारक ही है। स्व० छोटेलालजी जैन ने अपनी वीमारी मे दूसरो से सेवा न लेनी पडे इसलिए आत्म-विसर्जन किया था। वह वात जमनालालजी को उस ओर प्रेरित करती थी पर उन विचारो के बावजूद वे सावधानी पूर्वक अन्त तक अपने आप पर विजय पाने के प्रयत्न करते रहे। उन्हे अपना छोटा सा दोप भी इतना वड़ा और भयानक लगता कि उसे वर्दाश्त नही कर पाते थे। उनका यह भी प्रयत्न रहता था कि उनके आत्मीयजन भी उस दोप से मुक्त हो। उनकी अवस्था सन्त तुकाराम के शब्दो मे :—

> जे का रजले गाजले त्यासी म्हाणे जो आपुले
> तोचि साधु ओलखावा देव तेथे मी जाणावा
> मृदु सवाह्य नवनीत तेसे सज्जना चे चित्त
> ज्यांसि अपागिना नाँहीं त्यासी धरी जो हृदयी
> तो चि साधु ओलखावा देव ने पची जाणावा
> दया करणे जे पुत्रासी ते चि दासा आणि दासी।

उन्होने अपनी सेवा का क्षेत्र मानव से प्राणीजगत तक व्यापक बना लिया था और अपना सारा समय और शक्ति गौसेवा के काम मे केन्द्रित कर दी थी। उनकी गौ-सेवा की निष्ठा अद्भुत थी। गाधीजी के आदेश और इच्छा को वे सर्वोपरि मानते आये थे पर कार्यनिष्ठा के लिए उनके आदेश के पालन मे असमर्थता प्रकट की। गांधीजी ने वार-डोली से जमनालालजी को कांग्रेस महासमिति का अधिवेशन बुलाने की वात लिखी। जमनालालजी को महमानो का स्वागत करने मे वडी प्रसन्नता होती फिर व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के कारण साथियो से मिलना जुलना भी नही हुआ था। उन्हे अपने यहा बुलाने और उनका स्वागत करने मे जमनालालजी को वडी खुशी ही होगी इसलिए

जमनालालजी की ओर से गाधीजी ने आमंत्रण दे दिया और जमना लालजी को अधिवेशन बुलाने के लिए लिखा। जब यह आदेश वर्धा पहुँचा तो जमनालालजी के मन मे अन्त-र्संघर्ष जगा। इस विषय की मुझसे भी चर्चा की थी और उस दायित्व को अपने पर लेने का पत्र वापूजी को लिखवाया। उसके उत्तर मे गाधीजी का जो पत्र आया वह इस प्रकार था :—

चि० जमनालाल,

मै कैसा बेवकूफ और स्वार्थी हूँ ? तुम्हारी तबीयत का कुछ खयाल नही किया। सिर्फ मेरा ही किया। तुम्हारी इजाजत मागी और राह भी नही देखी। और कमेटी मे आग्रह किया कि मिटिंग वर्धा मे रखी जाय। उसमे मैंने हिसा की और वह भी मामूली नही। मित्रता का, तुम्हारी उदारता का दुरुपयोग किया। तुम्हारे पास माफी मागने से प्रायश्चित्त नही होना है। सच्चा प्रायश्चित्त तो वही होगा जिससे मैंने तुम्हारे प्रति जो निर्दयता बताई है ऐसी कभी न तुम्हारे प्रति या अन्य किसी के प्रति बताऊँ।

तुम्हारे प्रति तो धन्यवाद ही है। तुम्हारे दिल की बात कहने की तुमने हिम्मत वताई और अपनी मर्यादा का स्वीकार किया, यह छोटी बात नही है। जरा सी भी चिन्ता न की जाय। तुम्हारे इन्कार से मेरा आदर और प्रेम बढा है अगर वृद्धि की गुंजाइश थी तो।

—बापू के आशीर्वाद।

जमनालालजी ने पूनमचन्दजी रांका को जो उस समय महाविदर्भ कांग्रेस के अध्यक्ष थे बुलाकर यह काम सौप दिया। इससे जमनालालजी की कार्यनिष्ठा का परिचय सहज ही मिलता है।

गौ-सेवा के कार्य की जिम्मेदारी लेकर वे कुछ ही महीनो काम कर पाये परन्तु इस अल्पसमय मे जो कार्य उन्होने किये वे अद्भुत थे। गौ-सेवा की समस्या का अत्यन्त गहराई से अध्ययन किया। जिसमे उन्होने पाया कि इस समस्या को केवल भावना से ही नही सुलझाया जा सकता

वल्कि उसे आर्थिक दृष्टि से ही सुलझाया जा सकता है। गाय को धार्मिक दृष्टि से पूज्य मानकर उसकी पूजा करते रहने से हम उसे नही बचा सकते पर उसे आर्थिक दृष्टि से उपयोगी वनाने पर ही वचाया जा सकता है। इसलिए गाय को अधिक उपयुक्त वनाने का कार्यक्रम हाथ में लिया। गाय को मा मानकर पूजनेवाले भी गौ-दुग्ध का उपयोग नही करते, गाय के दूध की न तो माग है और न ही गाय का दूध वढाने के लिए योजना वद्ध प्रयत्न ही होते है। कम दूध देनेवाली दुर्वल तथा वाझ वननेवाली गाय का बोझ भारतीय उठाना भी चाहे तो उसके लिए यह वात सम्भव नही है। गाय को तभी वचाया जा सकता है जव वह आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी या लाभप्रद हो। उन्होने इस विपय के विशेषज्ञो की सलाह ली। उन्हे यह विश्वास हो गया कि गाय को प्रयत्न द्वारा स्वावलम्वी वनाया जा सकता है। उसमे यह शक्ति है कि वह लाभप्रद साथी वने, पर यह तभी होगा जव हम उसकी शक्ति का विकास करे, उस शक्ति का उपयोग ले। उसकी प्रत्येक वस्तु का हम उपयोग ले। उसमे भैस से भी अधिक दूध देने की क्षमता है पर हमने उस ओर ध्यान ही नही दिया। गाय का दूध भैस के दूध से अधिक गुणकारी होते हुए भी भैस का दूध ही लोग अधिक पसन्द करते है। यह बात सही है कि भैस के दूध मे गाय के दूध से चिकनाई अधिक होती है पर गुणो की दृष्टि से गाय का दूध अधिक गुणकारी होता है। बीमार और बच्चो तक के लिए गौ-दुग्ध अधिक लाभदायक माना जाता है। दूध की वृद्धि मुख्यतया तीन बातो पर अवलम्बित है। खुराक, सार-संभार और नस्ल-सुधार। पर इसके लिए गाय के दूध का प्रचार प्रथम कदम है और उसका प्रयोग वर्धा में उन्होने शुरु किया। जिस वर्धा मे किसी समय दस-पाच सेर गौ-दुग्ध प्राप्त होना कठिन था वहा मनो गौ-दुग्ध होने लगा और उसकी विक्री का प्रबन्ध हुआ। वाहर से दुधारु नस्ल मँगा कर दूध वढ़ाने की अपेक्षा स्थानिक नस्ल सुधार के प्रयत्न किए। जिसमे पहले दूध का काम था, सिर्फ खेती और बैलो के लिए गाय पाली जाती, उस

नस्ल के सुधार के प्रयत्नो मे काफी सफलता मिली। मन में गाय के प्रति धार्मिक भावना रखते हुए भी इस समस्या का हल आर्थिक और वैज्ञानिक तरीके से ही हो सकता है ऐसा मानकर उन्होने जो चन्द महीनो मे काम किया वह गौ-सेवा के इतिहास मे सुवर्णाक्षरो मे लिखा जायेगा। धार्मिक भावना से कार्य करने वालो का भी सहयोग लिया। पिंजरापोलो मे लूले-लंगडे, बीमार पशुओ के पालन के साथ अच्छी दुधारू गाये रखकर नस्ल सुधार के काम को उत्तेजन दिया। किसी भी काम को केवल कल्पना के आधार पर न कर उसके पीछे अनुभव हो इसलिए अपने निरीक्षण मे प्रयोग किये। वर्धा की गौशाला मे मुझे इस प्रयोग के लिए अनुभव लेने भेजा। वे उसके अध्यक्ष बने और मुझे मंत्री बनाया। मुझे कहा कि मैं गौशाला के प्रत्येक काम का अनुभव लू। गोबर उठाने से लगाकर सभी काम देखकर उसे घाटे की चीज नही, स्वावलम्बी तथा आमदनी देनेवाली बना दूँ। आश्चर्य की बात हुई कि कुछ ही महीनो के प्रयत्न से वर्धा की गौशाला स्वावलम्बी बन गई। दुधारु गायो के साथ बीमार, बूढी तथा कमजोर गायो का बोझ भी गौशाला पर था। गौशाला की खेती और जगल था वहा सूखी, बीमार, बूढी गाये रहती थी और वर्धा मे दुधारु गाये। उनको पोषक आहार दिया जाने लगा, नस्ल सुधार के लिए अच्छे साड खरीदे गये। बढे हुए दूध की बिक्री का प्रबन्ध किया, गोबर से ठीक से खाद तैयार की जाने लगी। जमनालालजी का कहना था कि किसी भी बडे काम का दायित्व लेने के पहले छोटे काम के अनुभव लेना चाहिए। जिससे बडे काम की नीव सुदृढ होकर वह असफल न बने। मैंने वर्धा गौशाला का दायित्व लेने पर नियमित रूप से दो घण्टे वहा देता था। वहां के प्रत्येक छोटे-मोटे काम को हाथ से कर मैने अनुभव लेना शुरु किया।

गो-सेवा के काम को कृषि के साथ जोडे विना उसका विकास असम्भव है। कुछ लोग दूध का व्यवसाय करने के लिए पशु पालते है परन्तु चारे, साड, बछडो के पालन, सूखे पशुओ को संभालने जैसी कई

वाते ऐसी है जिसके कारण विना खेती की सहायता से ठीक से गोवंश मुधार का काम नही हो सकता। दूध, घी, खेती के लिए वैल और खाद का ठीक उपयोग होगा और स्वाभाविक मौत से गाय के मरने पर उसके सीग, हड्डिया और चमडे का ठीक उपयोग किया जायेगा तव मास के लिए गाय को मारना असम्भव हो जायगा। इस प्रकार सर्वांगीण उन्नत गाय इतनी मंहगी होगी कि उसे मास के लिए मारना पोमायेगा ही नही। गाय की ऐमी उन्नति करने से ही कि वह वोझ रूप नही रहे, गाय वच सकती है। इसलिए उन्होने गाय को वचाने और उपयोगी वनाने मे वैज्ञानिक दृष्टि लगाई।

स्वयं गाधीजी भी गोसेवा के प्रश्न को आजादी से भी कठिन मानते थे और जमनालालजी को भी इस काम की कठिनाई का भान था। इसलिए इस व्यापक काम के लिए कार्यकर्ता जुटाना और किस किस व्यक्ति की सहायता लेना इसका गहराई से चिन्तन कर उन्होने योजना वनाई और मुझे कहा कि तुम्हे इस काम का अनुभव भी लेना है और देशभर मे इस कार्य मे दिलचस्पी लेनेवालो का सम्पर्क कर उनकी शक्ति का उपयोग भी लेना है। अत. दफ्तर का काम भी तुम्हे संभालना है। दफ्तर को कार्यक्षम वनाये विना सम्पर्क का काम हो नही पायेगा। सम्पर्क मे पत्र व्यवहार का वड़ा महत्व रहता है। पत्र व्यवहार करने के लिए वहुत ध्यान देना होगा। किस व्यक्ति को कैसे लिखा जाय जिससे उसे काम की प्रेरणा मिले और काम मे उत्साह जगे। फिर हम जिन्हे पत्र लिखते हो उसे असंदिग्ध भाषा मे लिखा जाना चाहिए ताकि पत्र समझने मे गलतफहमी न हो। भापा का दूसरा अर्थ न निकले और ठीक से समझ मे आ जाय। पत्र की भाषा मे मिठास तो हो पर उस भापा से कोई गलत अपेक्षा न वांध ले। हमारे लिखने का दुरुपयोग न किया जा सके। पत्र मे अपनी वडाई न हो, दूसरो के लिए आदर हो। जिसे लोगो से काम लेना होता है उसे अपने सभापण मे मिठास रखना चाहिए। पत्र मे जिन जिन वातो मे एकमत हो, उससे प्रारम्भ कर

मतभेदो को इस प्रकार प्रगट किया जाय जिससे प्रतिकूल प्रतिक्रिया न हो।

पत्र व्यवहार की तरह संस्था के हिसाब कैसे रखे जाय इस विषय मे जमनालालजी ने बताया था कि हिसाब रखने मे वडी सावधानी वरती जानी चाहिए। पहले लिख कर फिर संस्था मे से किसी को दिया जाय। जो कुछ दिया जाय उसका वाऊचर लिया जाय, जो रकम आवे उसकी रसीद दी जाय। हर महीने मे कच्चा चिट्ठा लेन देन का निकाला जाय और साल पूरा होते ही ओडिटर से हिसाव जंचवालिये जांय। खर्च नियत किये बजट के अनुसार ही हो। वजट वनाते समय खर्च की मदे फिर बढानी न पडे ऐसा वनाया जाय, आमदनी कम गिनी जाय।

गौसेवा की तरह अतिथिसेवा के विषय मे भी जिस दिन उनकी मृत्यु हुई उस दिन सवेरे उन्होने मुझे सविस्तार मार्गदर्शन किया।

उन्होने कहा था, "हमारे यहा आने वाले मेहमानो के लिए सादा किन्तु स्वस्थ भोजन हो। उसके लिए काम मे लाई जाने वाली चीजे शुद्ध हो। जैसे गाय का घी दूध मंहगा पड़ता है तो भी चौके मे वही काम लाया जाय। हम उन्हे भले ही मिष्ठान न खिलावें पर रुचिकर तथा भोजन अच्छा होना चाहिए। उसमे दिखावे को स्थान न हो। भोजन मे छाछ अवश्य रहे। नाश्ते मे दूध और मोसमी फल रहे। भोजन मे हरे साग अवश्य रहे। अतिथियो को कष्ट न हो, उनकी वस्तुऐ चोरी न हो।" यह वात इसलिए कही थी कि कुछ दिन पहले स्व० गोविन्दवल्लभ पन्त की शाल अतिथि गृह से गायब हो गई थी।

सेठजी ११ फरवरी को बजाजवाडी मे इसलिए जल्दी आये थे कि जनरल चागकाई शेक के वर्धा आने की वात थी। उनके निवास आदि की व्यवस्था मुझे किस प्रकार करनी चाहिए, उन्हे कहां ठहराया जाय, भोजन मे क्या वस्तुऐ रहे आदि वताने वाले थे। पर वहा आने पर स्व० महादेवभाई का फोन आया कि चागकाई शेक वापूजी से वर्धा

मिलने आवे यह बात सरकार को रुचिकर नही लगने से गाधीजी उन्हे कलकत्ता मिले ऐसा कार्यक्रम वनाया। महादेव भाई ने मजाक मे कहा, "आप संसार के एक महान व्यक्ति के आतिथ्य से वंचित रह गये उसका पछतावा हो रहा होगा।" तव सेठजी ने प्रत्युत्तर दिया—"मैं तो ऐसे महान व्यक्ति का आतिथ्य यहां कर रहा हूँ जिसकी तुलना में संसार का कोई व्यक्ति नही है। इसलिए मुझे चागकाई शेक के न आने का कोई पछतावा नही है।"

जिस दिन उनकी मृत्यु हुई उस दिन मेरे साथ ही नही पर डा० महोदय तथा माताजी के साथ भी दीर्घ चर्चा हुई थी। इन दिनो उनका रक्तचाप तो अधिक रहता ही था, साथ ही दीर्घ चर्चा से सिर दर्द वढ गया तब भोजन के लिए दूकान पर आते समय उन्होने मुझे कहा, "जाओ, राममनोहर को बुला लाओ, उसे साथ ले जाऊंगा और भोजन के बाद सिर हल्का करने के लिए ताश खेलेंगे।" मैंने चौकीदार से कहा—"जाओ, राममनोहरजी को बुला लाओ, कहो कि सेठजी तुम्हे बुला रहे है।"

मेरे मुंह से अपने लिए "सेठजी" सम्बोधन उन्हे अखरा। उन्होने अपने हाथ की लकडी से हल्की सी चोट करते हुए कहा—"क्यो, तुम्हे काकाजी कहने मे शर्म आती है क्या?"

इतने मे राममनोहरजी आ गये और वे बैलगाडी मे वैठकर दूकान पर जहां उनकी पुत्र-वधु सावित्री देवी ने आमंत्रित किया था फलाहार करने के लिए चले गये। करीब चार बजे दुकान से टेलीफोन आया कि सेठजी वीमार हो गये है। मैं पहुँचा तो अन्तिम सासे भर रहे थे। मैंने भगवान से प्रार्थना की, किन्तु वे चले गये। मुझे लगा जैसे मै पितृ-विहीन हो गया हूँ। मेरी करुणा जनक स्थिति देख कर श्री घनश्याम दासजी बिडला (जो उस समय वही थे) मुझे बुलाकर वोले,—"रिषभदास! मैं तुम्हारी स्थिति समझता हूँ। तुमको जमनालालजी के जाने से यह मानने की जरूरत नही कि तुम असहाय हो गये हो।

जब कभी तुमको कोई जरूरत पड़े तो मेरे पास आ जाना। मैं तुम्हारे लिए जमनालालजी का स्थान ले रहा हूँ।"

इससे मुझे कुछ सांत्वना अवश्य मिली पर विड़लाजी के आश्वासन के वावजूद उन तक पहुँचने का मैं साहस नही कर सका।

स्व० जमनालालजी के साथ अन्तिम समय तक रहने से मुझे जो शिक्षा मिली वह अविस्मरणीय थी, जिसे मै अब तक नही भुला पाया हूं। मृत्यु कव आयेगी पता नही, परन्तु मृत्यु को निकट मान कर जो समय हाथ मे है उसका अच्छे से अच्छा उपयोग करना चाहिए। जीवन को सार्थक वनाने का यत्न करना चाहिए। चाहे सेठजी की मृत्यु को ३० साल वीत गये हो पर इस दीर्घ समय मे मुझे बुराई से वचाने मे मृत्यु की स्मृति ने वहुत मदद पहुँचाई और सेवा कार्य करते समय सावधान रखा।

□ □

२०
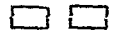
भारत छोड़ो आन्दोलन की पार्श्वभूमि और योगदान

आखिर ३ सितम्बर को द्वितीय महायुद्ध शुरु हो ही गया। एक और तानाशाह थे तो दूसरी और जनतन्त्र मे विश्वास करनेवाले राष्ट्र। युद्ध की घोषणा होते ही स्वाभाविक ही गांधीजी तथा कांग्रेस की सहानुभूति ब्रिटेन व फ्रास के प्रति थी और गाधीजी ने अपने वक्तव्य मे मित्र-राष्ट्रो को नैतिक समर्थन देने की बात भी की थी। किन्तु वाइसराय के स्टेटमेण्ट का वह हिस्सा सबसे उपहासप्रद तथा चोट पहुँचानेवाला था जिसमे उन्होने विश्वास प्रगट किया था कि "भारत पशुबल के खिलाफ मानवीय स्वाधीनता का पक्ष ग्रहण करेगा और संसार की ऐतिहासिक सभ्यता की हैसियत से ससार के महान राष्ट्रो के बीच अपने स्थान के अनुरूप अपने हिस्से का कार्य पूरा करेगा।" भारत जैसे गुलाम राष्ट्र के लिए क्या यह उपहास नही था कि जो राष्ट्र स्वयं दूसरो का गुलाम हो वह दूसरो को गुलामी से छुड़ाने के लिए लड़े।

काग्रेस चाहती थी कि अग्रेज भारत को स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप मे इस युद्ध मे सहयोग देने दे पर वैसा नही हुआ। सम्राट ने अपने साम्राज्य

के नाम सन्देश दिया जिसमे उस राष्ट्र की निन्दा की गई जो आक्रमण द्वारा दूसरे राष्ट्र को गुलाम वनाना चाहता है पर अपने अधीन राष्ट्र को गुलाम बनाये रखना चाहता है। ब्रिटेन ने भारतीय जनता की राय लिये बिना ही उसे युद्ध मे शामिल कर दिया था। जिससे भारत के जिन ११ प्रान्तो मे से ८ प्रान्तो में काग्रेस की सरकार थी उन सरकारो ने इस्तीफे दे दिए।

वाइसराय ने गाधीजी तथा कांग्रेस नेताओ के साथ बातचीत की, उन्होने निम्नलिखित प्रश्न उठाये।

(१) युद्ध-उद्देश्य की घोषणा की जाय।

(२) वे भारत पर किस तरह लागू होगे ?

(३) किसी बाहरी प्रभाव से मुक्त विधानपरिषद का आयोजन किया जाय।

(४) भारत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित कर दिया जाय और वर्तमान स्थिति को उसी पद के अनुकूल कार्यरूप मे परिणत किया जाय।

(५) भारतीय स्वाधीनता का आधार जनतन्त्र, एकता और सभी अल्पसख्यको के अधिकारो की स्वीकृति तथा संरक्षण हो।

पर सन्तोषजनक उत्तर नही मिला। इस काम मे मुसलिम लीग तथा जिन्ना सबसे बड़े बाधक बने और अंग्रेज सरकार भी अल्पसंख्यको का बहाना बनाकर भारत की स्वाधीनता के प्रश्न को टालती रही। पर समझौते के प्रयत्न न हुए हो ऐसी बात नही। वाइसराय से गाधी जी की कई मुलाकाते हुई। १६३६ मे प्रथम बार सर स्टेफोर्ड क्रिप्स वर्धा आये। गाधीजी के साथ लम्बी चर्चा की, इस चर्चा मे नेहरुजी तथा सरदार पटेल ने भी हिस्सा लिया। गांधीजी इस समस्या के हल का मसविदा लेकर इंगलेण्ड गये जिसमे गाधीजी ने विधान-परिषद की कल्पना दी थी। गाधीजी, अंग्रेजो के साथ सदा मैत्री का प्रयत्न करते रहे। उनके संकट का गैर-वाजिब लाभ उठाने की उनकी इच्छा नही थी। पर उन्हे सफलता नही मिली। स्टेफर्ड क्रिप्स इंगलेण्ड जाने पर

कुछ ही दिनो मे रूस मे ब्रिटेन के राजदूत के रूप मे उनकी नियुक्ति हुई और फलस्वरूप रूस मित्र राष्टो के पक्ष मे हो सका। पर भारत मे वे दोनो बार निष्फल ही रहे।

जैसे मुसलिम लीग समझौते मे बाधक थी वैसे ही भारत मे रहने वाले कुछ अग्रेज अफसर भी बाधक थे, नही तो विधान परिषद की मांग ब्रिटिश सरकार अवश्य मान लेती क्योकि सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने अपनी पत्रो की मुलाकात मे इस बात की पुष्टि की थी कि भारतीय समस्या का हल विधान परिषद मे है। भारत को तुरन्त स्वराज्य देने की उन्होने सिफारिश की थी, किन्तु वैसा न हो सका। अन्त मे गांधीजी को व्यक्तिगत सत्याग्रह का रास्ता अपनाना पडा क्योकि वे अंग्रेजो को मुसीबत मे डालना नही चाहते थे।

१७ अक्टूबर को व्यक्तिगत सत्याग्रह का प्रारम्भ हुआ और गांधीजी ने प्रथम सत्याग्रही विनोबा भावे को चुना जो सत्याग्रही के नाते सर्वगुण सम्पन्न थे। गांधीजी ने यह कहा था कि "विनोबा की तुलना की जाय ऐसा एक भी दूसरा व्यक्ति नही था। मेरे बाद अहिसा के सर्वोतम प्रतिपादक और समझनेवाले विनोबा ही है। वे मूर्तिमान अहिंसक है।"

७ नवम्बर को जवाहरलालजी सत्याग्रह करनेवाले थे। उन्हे उस दिन वर्धा बुलाया गया था पर २८ तारीख को वर्धा से लौटते समय उन्हे खिडकी स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिया।

विनोबा ने १७ अक्टूबर को पवनार मे युद्ध-विरोधी भाषण दिया। पर न तो उन्हे पकडा गया और न ही सभा पर रोक लगाई गई। वे गांव-गाव घूमने लगे तब २१ तारीख को गिरफ्तार कर ३ महीने की सादी कैद की सजा दी गई।

सरकार गाधीजी और काग्रेस का युद्ध मे सहयोग प्राप्त करना तो चाहती थी क्योकि उससे उसे इन युद्ध प्रयासो मे भारत से अधिक सहायता प्राप्त होने की आशा थी, पर उसके बदले मे भारत को ऐसे अधिकार नही देना चाहती जिससे वह पूर्णरूप से स्वाधीन हो। इधर

गांधीजी की सहानुभूति भी मित्र-राष्ट्रो के साथ थी और उन्हे अपना नैतिक समर्थन देना तो चाहते थे पर उनका यह विश्वास था कि हिंसक साधनो द्वारा लडे हुये युद्ध का परिणाम अनिष्ट ही लाता है इसलिए वे इस हिंसक युद्ध मे सहायक बनने मे असमर्थ थे। काग्रेस की भूमिका गाधीजी से भिन्न थी। काग्रेस के अधिकाश नेता अंग्रेज यदि आजादी देने को तैयार हो, तो हिंसक युद्ध मे समर्थन और सहयोग देने को तैयार थे। सरकार और भारतीयो के बीच समझौता कराने के लिए कई लोग प्रयत्नशील थे तो कुछ ऐसे तत्व भी काम कर रहे थे जिससे दोनो मे समझौता न हो। इसलिए सर स्टेफर्ड क्रिप्स का मिशन दूसरी बार भी असफल रहा। वे फिर भारत आये। इस बार उनका प्रभाव पहले से अधिक था। उसमे जैसे काग्रेस को राजी रखने का प्रयत्न था क्योकि वे रूस को युद्ध मे मित्र राष्ट्र का साथी बना सके थे। वैसे मुसलिम लीग और राजाओ को भी राजी रखने का प्रयत्न था। काग्रेस को खुश करने के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य, वेस्ट मिनिस्टर कानून प्रथम होने का अधिकार और सर्वोपरि बात विधान-परिषद का उल्लेख था जिसे प्रारम्भ मे ही ब्रिटिश राज्यमण्डल से पृथक हो जाने की घोषणा करने का अधिकार दिया था। मुसलिम लीग के लिए सबसे बड़ा आकर्षण यह था कि किसी भी प्रान्त को भारतीय संघ से अलग हो जाने का अधिकार था। नरेशो को न केवल इस बात की आजादी थी कि वे चाहे तो भारतीय संघ मे शामिल हो या न हो, बल्कि विधान परिषद मे रियासत के प्रतिनिधि भेजने का एकमात्र अधिकार भी उन्हे ही दिया गया था।

काग्रेस के लिए इस योजना को स्वीकार करना भी कठिन था वैसे उसे ठुकरा देना भी नही चाहती थी इसलिए लम्बी चर्चाएं चली। अन्त मे जिस बात को लेकर समझोता न हो सका वह बात थी रक्षा-विभाग। जिस युद्ध मे भारत को सहयोग देना था उस पर भारतीयो का अधिकार होना आवश्यक था पर ब्रिटिश सरकार वह देना नही

चाहती थी। तव गांधीजी ने सर स्ट्रेफर्ड क्रिप्स को कहा कि यदि आप यह नही कर सकते तो यहां पधारने का कष्ट क्यो किया। मेरी तो सलाह है कि आप अगले हवाई जहाज से ब्रिटेन लौट जाइए।

सुप्रसिद्ध लेखक लुई फिशर ने क्रिप्स मिशन असफल होने का कारण वाइसराय और लार्ड वेवल थे, ऐसा लिखा है। निमित्त कुछ भी हो पर इसमे ब्रिटेन सरकार की अनिच्छा ही थी।

जव क्रिप्स दिल्ली मे थे तव जापान ने कोकनद तथा विजगापट्टम पर वम-वर्षा की थी और जापानी जहाज वगाल की खाड़ी मे देखे गये, जिससे लका से लगाकर कलकत्ता तक आतंक फैल गया था। यदि जापान भारत पर आक्रमण करे तो उसका मुकावला कैसे हो यह सवाल था। भारत की जनता रणनीति और सैनिक चालो से अनभिज्ञ थी। कुछ लोग बिना सोचे समझे कह रहे थे कि छापामार दस्तो के द्वारा मुकाबला करना चाहिए पर उसके लिए हथियारो की जरूरत होती है। भारत मे ट्रेनिंग प्राप्त सिपाहियो के लिए भी हथियार नही है यह वात वाइसराय ही कह चुके है। इसलिए छापामार लडाई असम्भव सी थी, फिर हिंसा अहिसा का भी प्रश्न था। सरकार का यह कहना कि भारत नये आक्रमणकारी जापान का डटकर मुकावला करे पर वह स्वयं आक्रात था उसे यह प्रेरणा कैसे होती? यह तभी होता जव अग्रेज यहां से हट जाने की वात कहते। 'भारत छोडो' इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि समझाने की दृष्टि से मैंने यहा यह सव दिया है। उस समय भारतीय अत्यन्त क्षुब्ध थे फिर भी कांग्रेस कार्यसमिति ने बड़ी सावधानी, बुद्धिमत्ता, आत्म-सम्मान तथा दूरदर्शिता के साथ अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए ब्रिटिश सरकार से अनुरोध किया था कि, वह काग्रेस के न्यायोचित प्रस्ताव को मान ले और भारत छोड़ दे। वैसी अपनी इच्छा प्रगट कर भारतीयो के हाथ मे उसका भाग्य सौप दिया जाय।

७-८ अगस्त को वम्बई मे अखिल भारतीय महासमिति मे जो प्रस्ताव पास हुआ था वह अत्यन्त गहरे चिन्तन का परिणाम था और वहुत सोच विचारकर किया गया था। उस प्रस्ताव पर गाधीजी ने जो भापण दिया वह अत्यन्त महत्वपूर्ण था उसमे उन्होने कहा था कि "आप किमी के प्रति मन मे द्वेप और वैर-भाव न रखे, सभी के साथ दयालुता का वरताव करे, हमेगा ईग्वर द्वारा प्रदर्शित सत्य मार्ग पर दृढ रहे। हमने जो काम करने का वीडा उठाया है, उसे पूरी लगन के साथ पूरा करे, ताकि न केवल इस देश मे, अपितु समस्त विग्व मे गाग्वत गाति और न्याय की स्थापना हो सके।"

यह प्रस्ताव यद्यपि कांग्रेस की ओर से युद्ध की घोपणा थी पर सरकार तुरन्त काग्रेस पर इतना जल्दी प्रहार करेगी ऐसी कल्पना नही थी। तारीख ९ की पो फटने के पहले ही गाधी जी, कार्यसमिति के सदस्य तथा वम्वई के ४० प्रमुख नागरिको को गिरफ्तार कर स्पेशल ट्रेन द्वारा गाधीजी को आगाखा महल मे, कार्यसमिति के लोगो को अहमदनगर किले मे तथा अन्य लोगो को यरवदा जेल मे पहुँचा दिया गया।

यद्यपि भारत छोडो आन्दोलन की घोषणा वम्बई मे हुई थी पर उसका चिन्तन जून से शुरु हो गया था और जुलाई मे वर्धा मे कार्य-समिति ने जो प्रस्ताव किया था उसमे वह बात आ गई थी।

इन दिनो मैं वर्धा रहता था। और वजाजजी के अतिथिगृह की व्यवस्था मुझ पर थी इसलिए वहा चलनेवाली चर्चा से वहुत कुछ परिचित था। उन दिनो पंडितजी और गाधीजी के मतभेद की चर्चा भी चलती थी। पंडितजी जनरल चागकाई शेक और मेडम चागकाई शेक से वहुत प्रभावित थे और अग्रेजो का युद्ध मे साथ देने के लिए उत्सुक भी थे पर अंग्रेजो ने ही काग्रेस का सहयोग नही लिया और काग्रेस को भारत छोडो आन्दोलन के लिए तैयार होना पडा।

यह आन्दोलन कैसे चलाया जाय इस विपय मे गाधीजी ने कोई

योजना नही बनाई थी। गिरफ्तारी के समय सिर्फ इतना ही कह सके थे "करो या मरो।" जिससे पहले तो लोग समझ ही नही पाये कि वे क्या करे? आक्रमण सरकार की ओर से शुरु हुआ। बम्बई की गिरफ्तारी के बाद स्वयंसेवको की रेली पर डण्डे बरसाये गये। राष्ट्रीय झण्डा नीचे गिरा दिया गया। कांग्रेस या उससे सहानुभूति रखनेवाली संस्थाएं सारे भारत मे गैरकानूनी घोषित की गई। प्रमुख लोगो को गिरफ्तार कर जेल मे भेजने का क्रम बना लिया। जनता समझ ही नही पा रही थी कि क्या करे। क्योकि उन्हे मार्गदर्शन करे ऐसे जिम्मेदार व्यक्ति बाहर नही थे। जिसको जो सूझ पड़ा करने लगा। सरकारी विज्ञप्तियो मे कांग्रेस तोड-फोड की नीति अपनाने वाली है, ऐसा बताया गया।

लोगो ने वही कार्यक्रम समझकर तार काटना, रेले तथा यातायात के साधनो को नष्ट करना, डाक-तार घर जलाना और तार काटना, पुलिस-चौकिया जलाना। रेलो पर पत्थर फेकना, बिजली के बल्ब तोडने शुरु किये। पुलिस भी पूरी तैयारी के साथ दमन मे लगी हुई थी। जगह-जगह गोलियो की बोछारे हो रही थी। सरकार की ओर से दमनचक्र जोरो से चलने लगा और लोगो मे आतक फैलाने की पूरी कोशिश की गई।

इन उपद्रवो मे सरकारी आकडो मे बताया गया कि ९४० लोग मरे १६३० घायल हुये और लगभग ६०००० व्यक्ति गिरफ्तार किये गये। सरकारी आंकड़ो की सत्यता के सम्बन्ध मे तो सब परिचित ही है।

वर्धा मे काफी क्षोभ और उत्तेजना थी। १० तारीख को मेरे घर पर रात को मिटिंग हुई जिसमे किशोरलाल मश्रुवाला, जाजूजी, दादा धर्माधिकारी तथा अनेक कार्यकर्ता उपस्थित थे। क्या किया जाय इस पर विचार हुआ। स्वयंसेवक गावो मे जावे और बम्बई के प्रस्ताव का प्रचार करे। तार काटने की चर्चा भी चली, अधिक अधिकृत जानकारी

की अपेक्षा रखी गई। पर सभी की यह राय थी कि जिन्हे सम्भव हो वे काम मे लग जाय। मेरा भी इस आन्दोलन मे अधिक से अधिक काम करने का विचार था। ११ तारीख को शाम को मैं भोजन कर रहा था। एक व्यक्ति ने खबर दी कि पुलिस आज गोली चलाने की तैयारी से गाधीचौक के सामने खडी है और इधर जनता भी उत्तेजित है। मुझे वहा जल्दी से जल्दी पहुँचना था सो मैं भोजन छोड़कर पहुँचा तो देखा कि जिलाधिकारी, पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट और अन्य अधिकारियो के साथ करीव एक सौ सिपाही लाठियो तथा बन्दूको के साथ उपस्थित है। उधर सामने उत्तेजित भीड गाधीचौक मे भी काफी तादाद मे सभा मे उपस्थित रहने के लिए आना चाहती है। गाधीचौक मे भी काफी लोग सभा के लिए एकत्र थे। श्री रामकृष्णजी बजाज ने गाधी-चौक के दरवाजे बन्द कर पुलिस को अन्दर आने की मनाही कर रखी थी। मैने देखा इस उत्तेजना मे यदि जनता कुछ गडबड कर बैठे तो पुलिस गोली चला देगी और नाहक लोग गोली के शिकार होगे। कोई रास्ता निकालना चाहिए जिससे सभा शाति से हो। जिलाधिकारी श्री मोने थे। मैंने उनसे बात की, वैसे रामकृष्णजी से मोने ने कहा था कि यहा जो सभा होनेवाली है यदि वह पब्लिक मिटिंग है तो हमे रिपोर्ट लेने के लिए अधिकारी भेजना ही होगा। रामकृष्णजी कह रहे थे कि यद्यपि मिटिग पब्लिक है, पर यह खानगी स्थान मे हो रही है इसलिए हम पुलिस को उपस्थित नही होने देगे। अन्त मे मैंने यह रास्ता निकाला कि जिलाधिकारी रिपोर्ट लेने मजिस्ट्रेट की रक्षा के लिए दो सिपाही और एक इसपेक्टर भेजे और रामकृष्ण जी उन्हे सभा मे आने दे। दरवाजा खोल दिया गया, लोग शाति से सभा मे आ गये। सभा का काम शाति से शुरु हुआ। जब ८ अगस्त का प्रस्ताव सभा मे श्री देवीदयालजी चूडीवाले ने पढना शुरु किया तो उपस्थित मजिस्ट्रेट पेढारकर ने आपत्ति की। चूडीवाला ने कहा—मै प्रस्ताव पढूंगा चाहे आप मुझे गिरफ्तार करे। हजारो व्यक्तियो मे उन्हे गिरफ्तार करे ऐसी स्थिति तो थी नही, मजिस्ट्रेट ने प्रस्ताव का वाचन बन्द करने के लिए फिर से जोर से कहा और स्टेज की ओर आने लगे तो उन्हे रोक दिया

गया। धक्का-मुक्की भी हो गई। इंसपेक्टर ने गोली चला दी जिसमे जगलु नामक व्यक्ति शहीद हो गया। गोली चलने के बाद लोग उत्तेजित हो गये, इधर पुलिस भी गाधीचौक के कंपाउण्ड मे आकर लाठी चलाने लगी। लोग पत्थर-ईंटे फैंकने लगे। न मालूम मुझमे कहा से साहस आ गया। मैं गाधीचौक के झण्डे के लिए बनाये गये चबूतरे पर खड़ा रह कर लोगो को समझाने लगा कि वे शात हो जायँ और पुलिसवालो को कहने लगा कि वे भी लाठिया चलाना बन्द कर दे। कुछ देर मे शाति हो गई। पुलिस ने कईयो को बेरहमी से पीटा था। वहा के युवक वकील दुर्गे के पैर पकड कर जानवर की तरह घसीटा और डण्डे मारे थे किन्तु न तो पुलिस ने मुझे हाथ लगाया और नही पत्थर की चोट ही आयी। रात के ८॥ बजे मैं बजाजवाडी लौटा तो मन मे यह संतोप था कि स्थिति अधिक न विगड़ने मे भगवान ने मुझसे सेवा ली। रात को बहुत देर तक इस आन्दोलन मे कैसे अधिक योगदान दिया जाय सोचता रहा।

दूसरे दिन यानी १२ अगस्त को सबेरे मैं घर से अतिथि-गृह मे फोन करने गया। उन दिनो अखबारो मे बहुत ही कम समाचार आते थे। कही से कोई व्यक्ति आ जाय या फोन से कुछ समाचार मिल जाय तो वह पाने के लिए ही मै गया था। पुलिस के दो व्यक्ति आये और कहने लगे आपको चलना है। मैने कहा—मै तैयार हूँ यही से चलना है या घर जाकर। आप कहे तो घर वालो से मिलकर जाऊ। पुलिसवालो ने कहा कि आप खुशी से घर जाकर मिल आवे। मै घर गया साथ मे कुछ सामान और चर्खा भी ले लिया। वर्धा जेल में ६ बजे हमारा प्रवेश हुआ। रात को वहा रहे। वहा और भी कई मित्र मिले और हमे दूसरे दिन नागपुर ले जाया गया। जहा करीब १३ महिने रहा। नागपुर जेल की यात्रा सुखद ही नही वरन् मेरे लिए शिक्षाप्रद भी रही। यद्यपि मेरी इच्छा तो इस आन्दोलन मे काफी काम करने की थी पर सरकार ने अतिथि बनाकर परिश्रम से बचाकर आराम दिया।

□□
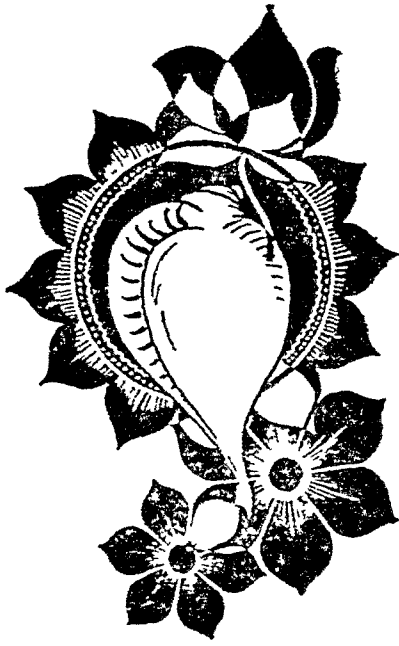
२१

नागपुर जेल की स्मृतियां

नागपुर जेल मे प्रवेश किया तो देखा कि वहा मध्यप्रदेश के अनेक कांग्रेसी कार्यकर्ता और नेता मौजूद है। इस वार मुझे प्रथम श्रेणी मे रखा गया। जहां घर के कपडे पहनने तथा खाने की आवश्यक वस्तुएं, नोट-वुक, पुस्तके आदि मंगाने की सुविधा थी। प्रारम्भ मे पत्र लिखने या वाहर से कुछ भी सम्वन्ध नही रखा जा सकता था। अखवार भी नही मंगाये जा सकते थे। वाहर जनता मे सरकार द्वारा जैसा आतंक फैलाया जा रहा था एवं दमन और अत्याचार किया जा रहा था उसकी जानकारी न हो, इसलिए भी काफी प्रयत्न किए जाते थे। अखवारो पर सेंसर लगा दिया था। आन्दोलन की बहुत कम खबरे दी जाती थी और जो दी जाती थी वे भी सक्षिप्त तथा सरकारी दमन और अत्याचारो को घटा कर ही। लोगो की ओर से गडवडी फैलाई गई है, वे तोड़-फोड तथा विध्वंसक कार्य कर रहे है इस प्रकार की कांग्रेस पर दोषारोपण करनेवाली खवरे ही दी जाती थी। परन्तु सरकार द्वारा गुप्तता रखने के वावजूद हमे वाहर से जेल मे आनेवालो के द्वारा वाहर की सव वाते मालूम हो ही जाती थी क्योकि हर रोज दस-बीस कार्यकर्ता तो पकड़

कर हमारी क्लास मे आते ही थे । सी वर्ग मे तो यह संख्या वहुत अधिक होती। पर सी वर्ग तथा महिलावदियो को हमसे अलग रखा जाता था। इनसे मिलने भी नही दिया जाता। लेकिन आन्दोलन एवं कितने लोग कहा से आये इसकी खवर लग ही जाती थी। पुलिस के भयंकर अत्याचारो से क्रुद्ध लोगो ने कही-कही हिंसक काम भी आवेश मे किए, परिणामस्वरूप उन स्थानो पर सेना वुलाकर जनता पर और भी भयानक अत्याचार किए गये। वेरहम मारपीट मे मृत्युए भी हुई और महिलाओ के शील भ्रष्ट करने की वातें भी सुनने मे आई। वर्धा जिले के आष्टी और चादा जिले के चिमूर गाव के अत्याचार तो दिल दहलानेवाले थे। इससे व्यथित होकर साधुचरित भंसालीजी को दीर्घ उपवास करने पडे। इन गांवो का कई दिनो तक वाहर से सम्वन्ध विच्छेद कर दिया गया था। सैनिको ने घेरा डालकर वाहरवालो का आना-जाना वन्द कर दिया था। भंसालीजी चिमूर जाना चाहते थे। सरकार उन्हे वहा जाने नही देना चाहती थी। रास्ते मे ही उन्हे पकड कर छोड दिया तव उन्होने आमरण उपवास किए जो साठ रोज से भी अधिक चले।

हम लोग जिन्हे भारतरक्षा कानून के आधीन गिरफ्तार किया गया था, जानते थे कि हमे लम्बे समय तक जेल मे रहना होगा। युद्ध समाप्त होने पर ही हम छूट सकेंगे। अंग्रेज जीते तो वे युद्ध के वाद हमे जेल से छोड देंगे और हार गये तो जीते हुए लोग छोड देंगे पर ३-४ साल तो हमे जेल मे रहना ही होगा।

१५ अगस्त को यरवडा मे महादेव भाई की मृत्यु के समाचार मिले। महादेवभाई की मृत्यु महात्माजी के लिए वहुत वडा आघात थी। जेल से छूटने के वाद स्वय गाधीजी ने मुझे वताया था कि महादेवभाई और जमनालालजी उनके दोनो हाथ के समान थे। उन दोनो के चले जाने से उन पर कामो का वोझ वढ गया है। वात यह थी कि एक दिन मैं वापूजी से मिलने उनकी कुटी मे गया तव देखा कि वापूजी को

उनकी पेंसिल नहीं मिल रही है। वे ढूंढ रहे थे, काफी परेशान थे। फिर गम्भीर स्वर मे बोले—"जब तक महादेव था हर चीज ठीक जगह पर मिलती थी। कभी परेशानी नही हुई। तुम प्यारेलाल को तो जानते ही हो, इतना भुलक्कड है कि कई बार चैक भी कपड़ो के साथ धुल जाते है।"

इस बात का पता मुझे था क्योंकि बापूजी ने व्यक्तिगत रूप से मिले दान के रुपयों का हिसाब लिखने तथा महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार देखकर ठीक से सुरक्षित रखने का काम जब मुझे सौपा था तब यह चर्चा उन्होने मुझसे की थी।

उस समय तक पू० विनोबाजी भी नागपुर जेल मे आ गये थे। एक ही बेरक मे ठीक उनके सामने ही मेरा स्थान था। उस दिन वे काफी गम्भीर रहे। शाम को प्रार्थना मे उन्होने स्व० महादेवभाई को श्रद्धाजली दी तब उनकी विशेषताओ पर प्रकाश डाला था।

हम सब इसलिए भी चिन्तित थे कि कही बापूजी आमरण उपवास ही शुरु न कर दे। क्योकि बम्बई महासमिति की बैठक मे जाने के पहले इस सत्याग्रह को अधिक प्रभावशाली बनाने के विषय मे जो चिन्तन चला था उसमे उनके आमरण उपवास की बात भी चली थी। विनोबाजी से बापूजी के उपवास की चर्चा भी की थी। वे काफी गम्भीर थे।

परन्तु प्रारम्भ की उत्सुकता व गभीरता आहिस्ता-आहिस्ता कम होने लगी। हमे पत्र व्यवहार करने तथा बाहर से अखबार मंगवाने की छूट तो मिली परन्तु विशिष्ट अखबार ही दिए जाते थे। जो राष्ट्रीय दृष्टिकोण के अखबार थे, वे नही दिए जाते। टाइम्स आफ इडिया, 'हितवाद' जैसे अखबार ही मिलते। हमारा दैनिक जीवन हमने व्यवस्थित बनाकर जेल यात्रा का अधिक से अधिक लाभ कैसे मिले ऐसा कार्यक्रम बनाया। दोनो समय प्रार्थना तथा दोपहर को ज्ञानेश्वरी पर विनोबाजी का प्रवचन होने लगा। अध्ययन के लिए योजना बनी। मानो आश्रम

का जीवन ही शुरु हो गया हो वैसा व्यवस्थित कार्यक्रम बन गया। मैने हिन्दी और अंग्रेजी का अध्ययन शुरु कर दिया क्योकि मेरी स्कूल या कालेज की कोई व्यवस्थित पढाई नही हुई थी इसलिए मैं जो कुछ लिखता वह व्याकरण की दृष्टि से ठीक नही होता था। अंग्रेजी भी बहुत कम जानता था, प्रारम्भ मे तो मेरे साथी प्रोफेसर घोरघडे और सीताचरण दीक्षित मुझे अंग्रेजी व हिन्दी सिखाते रहे। बाद मे अंग्रेजी का वर्ग जे० सी० कुमारप्पा के छोटे भाई भारतनकुमारप्पा तथा बैरिस्टर बारलिंगे लेने लगे। कुछ दिन दादा धर्माधिकारी ने अंग्रेजी सिखाई। भारतनकुमारप्पा ने वाचन की पद्धति व शुद्ध उच्चारण के विषय मे जानकारी तो दी ही साथ ही अग्रेजी भाषा की विशेषता समझने के लिए चार भारतीयो के साहित्य को पढने की सिफारिश की और उनकी अग्रेजी की खूबिया समझाई। गाधीजी की अग्रेजी बहुत सरल रहती है, छोटे-छोटे वाक्य और उसमे प्रवाह होता है। उनके साहित्य को पढकर फिर जवाहरलालजी का साहित्य पढना चाहिए। जवाहरलालजी की अंग्रेजी की प्रशंसा अंग्रेज भी करते है। उनके वाक्य बडे होते है पर भाषा मे ओज रहता है। उन्हे पढने के बाद रवीन्द्र बाबू का साहित्य पढना चाहिए। साहित्यिक दृष्टि से रवीन्द्र बाबू की भाषा उच्चकोटि की समझी जाती है। और उसके बाद श्रीनिवास शास्त्री की अग्रेजी पढनी चाहिए। उनका अंग्रेजी पर जो प्रभुत्व है उसे देखकर अंग्रेज तक मुग्ध हो जाते है। भारतनजी ने अग्रेजी पढाते समय वाक्य मे कहा जोर देना और कहा ठहरना बताया था और कहा था कि प्रारम्भ मे मुझे पढते समय जोर से पढना चाहिए। मन ही मन पढने से उच्चारण नही सुधरते।

मैं हिन्दी की शिक्षा सीताचरण दीक्षित से लेने लगा। इसके अलावा धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन व चर्खा चलाने मे समय लगाता। भोजन के बाद आराम और कभी-कभी ताश भी खेलता।

हमे खाने को अच्छा मिलता। नाश्ते मे मक्खन ब्रेड व दोपहर व

शाम का भोजन भी अच्छा रहता था। हम चाहे वह चीज बाहर से मँगा सकते थे। सी क्लास मे भोजन वहुत सामान्य मिलता और वाहर से कुछ भी चीज नही मंगा सकते थे। इस अन्याय की चर्चा से प्रभावित होकर मैं दूध तथा मक्खन छोड सी क्लास जैसा भोजन करने लगा। यह प्रयोग कोई १५-२० रोज चला होगा कि मेरा वजन लगभग १०-१५ पौण्ड घट गया और मुझे पेचिश हो गई। विनोवाजी की सलाह रही कि भोजन मे दूध, फल और मक्खन लिया जाय। स्वास्थ्य को देखते हुए यह प्रयोग मुझे छोड़ना पड़ा। उन दिनो मेरा वजन ११० पौंड ही था जो घटकर लगभग ९५ पौड रह गया। कमजोरी भी काफी आ गई।

मेरी वृत्ति और स्वभाव के अनुसार मैं प्राप्त परिस्थिति से समझौता कर उसका अच्छे से अच्छा उपयोग करने लगा। घर की चिन्ता न करनेवालो मे मै था, परन्तु परिवार का खयाल ही मन मे नही आता हो ऐसी वात नही। मैं उस विषय मे जव कभी सोचता तो एक वात स्पष्ट दिखाई देती कि मैं अपने वच्चो या परिवार के लोगो के लिए धन एकत्र कर सकूं ऐसी मेरी वृत्ति नही है। यदि कुछ कर सकता हूँ तो उन्हे शिक्षा और संस्कार देने का काम ही कर सकता हूं इसलिए वही किया जाय। जेल मे ऊंचे से ऊंचे शिक्षाशास्त्री हैं, क्यो न उनका मार्गदर्शन लूं। मैंने विनोवाजी के साथ तो इस विषय मे कुछ चर्चा की ही थी परन्तु विशेष चर्चा सुप्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री काका साहव कालेलकर के साथ हुई। काका साहव से मैने अपनी वात कही और उनसे पूछा कि वच्चो को शिक्षा कैसे दी जाय।

उन्होने कहा कि वच्चो की शिक्षा का प्रारम्भ कहानियो से किया जाय। उन्हे अक्षर परिचय कराने के बाद कहानियो की ऐसी पुस्तके पढने दी जाय, जिससे इतिहास, भूगोल, सामान्य ज्ञान तो वढे ही पर अपने महान पुरुषो के जीवन की विशेषताएं भी हो।

मैंने काका साहव से ही वच्चो के लिए ऐसी पुस्तको के नाम सुझाने की प्रार्थना की।

काका साहब ने कहा कि इस दृष्टि से अभी किसी ने साहित्य तैयार किया हो यह मेरे ध्यान मे नही है। लेकिन आप स्वयं ही वैसा प्रयत्न क्यो नही करते ?

इस समय तक मुझमे लिखने का अभ्यास नही था। यदा-कदा कुछ लिख भी लेता होऊं तो भी विचारो को ठीक से प्रगट करने जैसी मेरी भाषा नही हुई थी। साहित्य वाचन, बडे बड़े लोगो का सत्संग तथा अनुभव के कारण मैं विचार तो कर सकता था। पर अपने विचारो को सम्यक्‌रीति से प्रगट कर सकूं ऐसी भाषा मेरे पास नही थी। शब्दो का उचित उपयोग और सग्रह भी नही था। फिर मराठी, गुजराती आदि भाषाओ का प्रभाव मेरे लेखन पर पडता था। ह्रस्व, दीर्घ की भी गल्तिया होती थी। वाक्य रचना अशुद्ध व ढीली थी। इन सब बातो के कारण लिखने का साहस नही होता था। परन्तु जब काका साहब ने कहा कि मैं प्रयत्न करु तो मैंने अपने पुत्र राजेन्द्र के नाम कहानियो के रूप मे पत्र लिखे। जिनका प्रकाशन स्व० राजेन्द्र की मृत्यु के बाद भदन्त आनन्द कौशल्यायन तथा विनोबाजी की प्रेरणा से "प्यारे राजा बेटा" के नाम से हुआ। ये पत्रात्मक कहानिया दो भागो मे प्रकाशित हुई थी और काफी लोकप्रिय हुई। मेरी इस पुस्तक की प्रस्तावना पू० विनोबाजी ने लिखी थी। यदि आनन्दजी व विनोबाजी प्रेरणा न देते तो सम्भव है मैं लेखक बनने का साहस नही करता, पर एक बेपढे-लिखे आदमी के भाग्य मे लेखक होना बदा था इसलिए इन दोनो ने प्रेरणा दी और मैं लिखने लगा।

नागपुर जेल मे काका साहब से बाल साहित्य के अतिरिक्त अन्य विषयो पर भी काफी चर्चा हुई। उनसे भारत के विभिन्न प्रान्तो मे बसनेवाले और विविध जातियो की विशेषता पर काफी चर्चा हुई थी। उनसे बात करते समय ऐसा ही लगता मानो वे जीवित विश्वकोष हो। फिर काका साहब ज्ञान बाटने मे कभी कंजूसी नही करते मानो वे

प्रकृति से शिक्षक हो। न मालूम कितने व्यक्तियो ने मेरे जीवन को समृद्ध वनाने मे योगदान दिया है। उन सबका स्मरण करके उपकार मानना भी मेरे लिए असंभव है। जीवन मे इतने शिक्षक आये और उन्होने शिक्षा दी कि उन सवकी याद भी नही है। परन्तु जिनकी याद है वे और जो विस्मृत हो गये उन सबके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

जेल मे नियमित चर्खा कातनेवालो मे से मैं एक था और मेरे चर्खे पर ही विनोवाजी भी कातते थे। मैं सूत तेजी से कातता हुआ दीखता था लेकिन मात्रा मे तो विनोवाजो का ही अधिक होता था। जब मैंने इस कारण को समझने की चेष्टा की तो पता चला कि मनुष्य यदि सर्वप्रथम निर्दोष काम करना सीखे तो गति अपने आप वढ जावेगी। मेरे सूत की अपेक्षा उनके सूत की समानता भी अधिक रहती थी और सूत टूटता कम था अत. मात्रा मे उनका सूत मुझसे अधिक रहता था।

विनोवाजी का अध्ययन, चिन्तन और प्रवचन तो चलता ही था पर कभी-कभी शतरंज भी खेलते थे। उनके साथ रहने मे कभी "बोर" होने या ऊवने का सवाल ही नही था क्योकि वे हंसी-विनोद भी करते थे। उनके साथ रहने मे बड़ी प्रसन्नता की अनुभूति होती थी।

परन्तु मैं कुछ महिने ही विनोवाजी के सत्सग का लाभ उठा सका। नागपुर मे कैदियो की संख्या वढ जाने से विनोबाजी तथा कई लोगो का मद्रास प्रदेश के वेलूर जेल मे तवादला हो गया था। उनके जाने का विपाद जरूर था पर उन दिनो यह मस्ती भी सत्याग्रहियो मे थी कि जो परिस्थिति प्राप्त हो उसी मे सन्तोष माना जाय। और वह मुझमे भी ठीक ठीक मात्रा मे थी इसलिए जेल यात्रा मेरे लिए सुखद व उपयोगी वन सकी।

मेरा धार्मिक ग्रन्थो का वाचन भी चलता था। एक बार मैंने हेमचन्द्राचार्य का योगशास्त्र पढना शुरु किया और नोट्स भी लिखे जिसमे विकारो तथा कषायो के नाश की चर्चा थी। मैने वे नोट्स स्व० किशोरलाल मश्रुवाला को वताये। उन्होने कहा कि कषायो या विकारो

के नाश या जड-मूल से मिटाने की अपेक्षा उनकी शुद्धि करना अधिक सम्भव है। उनका जवरन किया हुआ दमन कईवार दुष्परिणाम भी लाता है इसलिए उन्हे शुद्ध वनाकर जीवन विकास मे उपयोग करना अधिक लाभप्रद है।

यह बात मेरे अव तक के दमन-प्रधान संस्कारो के प्रतिकूल थी पर किशोरलालभाई ने मेरे विचारो को एक धक्का दिया जिसने मुझे चिन्तन के लिए विवश किया।

मश्रुवाला परिवार से मेरा घरेलू सम्वन्ध था और उन्हे मैं आदर की दृष्टि से देखता था पर उनके निकट आने तथा चर्चा करने का यह प्रथम ही अवसर था जिससे मैं वहुत प्रभावित हुआ। आगे चलकर हमारे ये सम्वन्ध और भी अधिक घनिष्ट तथा अत्मीय वने और उनके स्वभाव की एक विशिष्टता ने मुझे वहुत ही आकर्षित किया जिसे मैं मेरे पुत्र राजेन्द्र की मृत्यु के समय ही जान सका था। वह विशेषता थी दुःख के प्रसग मे संवेदना प्रगट करना। जव उन्हे मालूम हुआ कि मेरा पुत्र राजेन्द्र वहुत बीमार है तो वे अस्वस्थ होते हुए भी गोमती वहन के साथ रामनगर मे जहा मैं रहता था तागे से आये। राजेन्द्र की मृत्यु को जिस तरह मैंने धीरज के साथ वर्दाश्त कर घर मे रोना धोना न करते हुए शाति रखी उस वात ने मुझे उनके निकट ला दिया कि अपनी मृत्यु तक वे मेरे मार्गदर्शक वने रहे। मानो मैं उनके परिवार का सदस्य ही हूँ ऐसा सम्वन्ध रहा। मैं उन्हे काका कहता था और मुझे ऐसा लगता रहा कि मेरे काका ही हो। उनकी सत्यनिष्ठा और विचारो की स्पष्टता की छाप अविस्मरणीय रहेगी। उनके ही कारण मेरा पूज्य नाथजी से अधिक सम्पर्क आया और मेरी जीवन-समस्याओ को सुलझाने मे नाथजी ने मार्गदर्शन किया। उसका श्रेय किशोरलालभाई को ही है। वे गुणग्राहक थे। मेरे प्रति उनका स्नेह और कृपा रही कि जव मैंने स्व० जमनालालजी पर 'जीवन जौहरी' पुस्तक लिखी तब उन्होने 'हरिजन' मे समीक्षा करते हुए लिखा था कि यह पुस्तक हर व्यापारी

व सार्वजनिक कार्यकर्ता को पढनी चाहिए और इसका देश की हर भाषा मे अनुवाद हो। एकवार चर्चा करते हुए गोमती काकी को कहा था कि तुम ही क्यो नही इसका अनुवाद कर डालती। भले ही वह अनुवाद उस समय नही हो सका हो, बाद मे मीरा भट्ट के कारण 'जीवन जौहरी' को मैंने नये सिरे से लिख दिया जो 'सफल अने सार्थक जीवन' के नाम से गुजराती मे प्रकाशित हुआ।

नागपुर जेल मे मेरा समय वहुत ही अच्छी तरह से कटा। अनेक मित्र और साथी मिले और मैं नागपुर जेल मे सवसे अधिक मेलजोल रखने वाला व्यक्ति वन गया था। मेरे सबके साथ मीठे सम्बन्ध रहे। हां, एक सज्जन से अपवाद रूप मे कुछ झगडा हो गया था। आज उस घटना को याद करता हूँ तो लगता है उसमे दोष मेरा ही था। यद्यपि उस समय मैंने अपना दोष प्रगट नही होने दिया और दूसरे लोग यही मानते रहे कि दोप मेरा नही, परन्तु उस व्यक्ति का है। लेकिन सच वात यह थी कि उसके प्रति अन्याय मेरी ओर से ही हुआ था। गर्मी के दिनो मे हम लोग वाहर सोते थे। उस व्यक्ति की नाक से नीद मे काफी तेज आवाज आती थी जो दूसरो की नीद मे खलल डालती थी। मैंने झल्लाकर उसे लात लगा दी और बहाना यह किया कि मैं नीद मे था। जव उसने इसकी चर्चा की तो सभी लोगो ने उसे ही दोष दिया।

इस घटना को छोडकर पूरे जेल जीवन मे मुझसे किसी के प्रति कोई अन्याय नही हुआ। वल्कि अधिक से अधिक लोगो के काम आया और सवसे प्रेमपूर्वक रहा। जव छूटा तव सवका स्नेह साथ लेकर लौटा।

जेल-यात्रा मेरे लिए तो शिक्षा-प्राप्ति का स्थान ही बनी। मेरे जीवन का अच्छे से अच्छा जीवन कही बीता हो तो वह स्थान जेल-यात्रा ही था।

□□
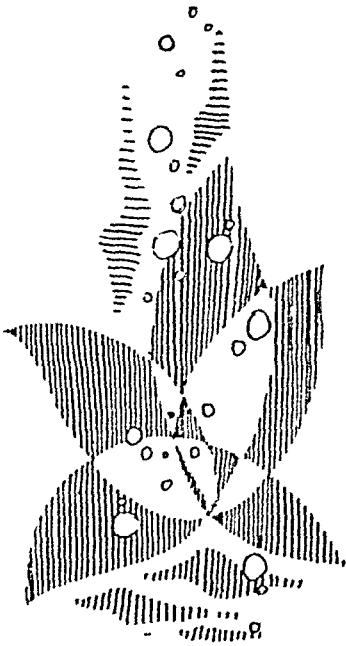
२२

वर्धा में, भारत जैन महा-मंडल का काम

कई लोगो को इस बात का आश्चर्य है कि राष्ट्र के लिए अपने जीवन के उत्कृष्ट काल का भोग देने वाला मुझ जैसा राष्ट्रीय वृत्ति का व्यक्ति जैन समाज की सेवा मे इतने दीर्घ समय तक कैसे रह सका और व्यापक राष्ट्रीय क्षेत्र छोडकर इसकी अपेक्षा कम व्यापक क्षेत्र मे कैसे लगा रहा ? इसके जवाव मे मेरे जीवन के इस सामाजिक क्षेत्र के काम पर दृष्टि डालनी होगी तथा यह भी वताना होगा कि मैं जैन समाज के काम मे कैसे आया, काम के समय दृष्टि क्या रही तथा क्या खोया, क्या पाया ?

मैं वृत्ति से राष्ट्रीयता से भी ऊपर मानवीय दृष्टिकोण से सोचने वाला हूं। मेरे विचारो मे यह व्यापकता होते हुए भी जैन समाज के इस दायरे मे इतने दिनो तक कैसे काम कर सका और अपने व्यापक दृष्टिकोण को कैसे निभा पाया ? इसका विश्लेषण मेरी दृष्टि से तो आवश्यक है ही, पर सम्भव है सामाजिक दृष्टि से भी उपयोगी हो।

मेरे जीवन के २० साल पू० गांधीजी एवं जमनालालजी के मार्ग-दर्शन मे वीते। इन वर्षो मे राष्ट्रीय हित के कामो मे योगदान देता

रहा। रचनात्मक तथा आन्दोलनात्मक दोनो तरह के कार्य मेरे द्वारा हुए। खादी, ग्रामसेवा, हरिजन-सेवा, गौ-सेवा, कस्तूरवा स्मारक तथा गाधी-स्मारकनिधि द्वारा रचनात्मक कार्य, नमक सत्याग्रह, तथा काग्रेस द्वारा चलाये गये आन्दोलनो मे काम किया, जेल यात्रायें की। गांधीजी के सर्वोदय कार्यक्रम पर पूरी निष्ठा रही और उसमे यथा-शक्ति योगदान दिया। अपनी शक्ति का ठीक उपयोग हो, इसलिए वर्धा आया। पू० जमनालालजी, गाधीजी, जाजूजी, विनोवाजी आदि के मार्गदर्शन मे काम करता रहा। फिर उससे छोटे दायरे मे जैन समाज के काम मे कैसे लगा ? यह एक प्रश्न है और स्वाभाविक है।

इसका उत्तर यह है कि पू० जमनालालजी के स्वर्गवास के वाद कुछ काल तो जेल मे वीता व कुछ गौ-सेवा के काम मे। पर १९४५ के करीव मेरे मित्र चिरंजीलालजी के आग्रह से मंडल के काम मे थोडी-थोडी दिलचस्पी लेने लगा। इन दिनो मे मेरी पूरी शक्ति का उपयोग ले ऐसा कोई व्यक्ति मेरा नेतृत्व नही कर रहा था। मेरी एक कमजोरी, जो सदा से रही है और आज भी मुझ मे मौजूद है, कि मै अपने मित्रो का मुलाहिजा किसी भले काम के लिए तोड नही सकता। यही कारण रहा कि चिरंजीलालजी के वार-वार आग्रह के कारण मैं मंडल के कामो मे दिलचस्पी लेने लगा। मडल की प्रवृत्ति राष्ट्रीय प्रवृत्ति के लिए हानिकारक नही थी। आपस मे मेल-जोल वढाना यह सर्वोदयीवृत्ति से मिलती हुई शुभप्रवृत्ति थी इसलिए मै दिलचस्पी लेने लगा। पर मेरे स्वभावदोष के कारण कहिए या परिस्थिति ऐसी आती गयी कि मैं इस कार्य मे अधिक उलझता गया। मैं स्वय आगे बढकर कभी किसी काम का दायित्व लेता नही, परन्तु जव मित्रो द्वारा दायित्व डाल दिया जाय तो उसे टालने का धैर्य अथवा साहस मुझमे नही होता और फिर उस दायित्व को ठीक से निभाने की कोशिश करता हूं। १९४६ मे इटारसी अधिवेशन साहू श्रेयासप्रसादजी की अध्यक्षता मे हुआ। उसके बाद मैं इस काम मे अधिक दिलचस्पी लेने लगा। फिर भी मैंने अधिकार

का पद लेने मे संकोच ही किया। १६४६ मे न मालूम कैसे फंस गया कि मैंने अध्यक्ष पद का दायित्व ले लिया। उन दिनो और उसके बाद भी कई वर्षों तक मंडल के लिए अध्यक्ष ढूँढना आसान काम नही था।

मद्रास मे स्थानकवासी कान्फ्रेंस का अधिवेशन हो रहा था। मंडल के भूतपूर्व अध्यक्ष एव जैनो मे मेलजोल की विशेष रुचि रखने वाले स्व० फिरोदियाजी का कहना रहा कि मंडल का अधिवेशन मद्रास मे हो तो अच्छा हो। उन्होने यह भी लिखा था कि अधिवेशन की व्यवस्था वे मद्रास लिखकर करवा लेगे। यह अवसर उपयुक्त लगा। क्योकि वहां हजारो व्यक्ति एकत्र होनेवाले थे उन तक मडल का संदेश पहुँच सके तो अच्छा था। मंडल के अधिवेशन के लिए हम अध्यक्ष की खोज करने लगे। जब सफलता नही मिली तो मुझे ही वह दायित्व स्वीकार करना पडा। उस समय मेरे मन की क्या स्थिति रही होगी उसका ठीक-ठीक उत्तर देना कुछ कठिन है। जब किसी सस्था का दायित्व आवे तो उसका काम ठीक हो इसलिए दायित्व लिया या कीर्ति की लालसा उसके पीछे थी, ठीक उत्तर देना कठिन है। शायद दोनो बातो का मिश्रण रहा होगा, क्योकि उन दिनो भी मेरे विचार इस विषय मे अस्पष्ट थे।

१६४८ मे जब जैनजगत का दायित्व लिया था तब अपने निवेदन मे मैंने नीति सम्बन्धी विचार प्रकट किये थे वे यह है—"जैनजगत ने अब तक जो कुछ किया उससे अधिक सेवा करने की संचालको की इच्छा है। उसके द्वारा जैन समाज की ही नही, किन्तु संसार की सेवा बन पडे। भले ही आज सीमा जैन समाज की हो, पर वह जैन समाज द्वारा संसार की सेवा की इच्छा रखता है। इसलिए ध्यान रखना है कि जैन समाज की सेवा करते समय दूसरो की कुसेवा न हो।"

मडल का दृष्टिकोण सदा राष्ट्रीय रहा है। इसलिए जैन समाज का हित करते समय दूसरी जातियो की कुसेवा करने की नीति नही है

जिससे जातीयवादी दृष्टिकोण से जैन समाज की सेवा इसके क्षेत्र से बाहर रही है।

"जैन जगत की यह भी मान्यता रही है कि झगडो से दूर रहकर बन सके वह सेवा की जाय। क्योकि झगडो से सेवा के बदले मे कुसेवा ही होती है। इसलिए झगडो से दूर रह कर निर्दोप सामग्री प्रस्तुत करने की जैनजगत इच्छा रखता है।"

तब से बराबर वह नीति जैनजगत तथा मडल मे अपनाने का प्रयास रहा।

वैसे ही मडल की नीति के विषय मे उन्ही दिनो सम्पादकीय लिखा "हर सम्प्रदाय वाला अपनी मान्यता और परम्परा के अनुसार चलकर भी दूसरे सम्प्रदायवालो के साथ प्रेम कर सकता है, सहिष्णुता रख सकता है।"

१९४९ के दिसम्बर मे मद्रास अधिवेशन हुआ था। उस समय अध्यक्ष के नाते मैंने जो भाषण दिया उसमे मैंने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि मैं मंडल के कार्य मे अपना आधा समय दूंगा और वैसा प्रयत्न मैं १९५१ मे मुरार अधिवेशन हुआ तब तक करता रहा। इस दौरान मैंने करीब १५,००० (पन्द्रह हजार) मील की यात्रा की होगी। सभी सम्प्रदायो तथा वर्गो के लोगो के साथ सम्पर्क स्थापित किया। मंडल के सम्पर्क बढाने के कार्यक्रम के अतिरिक्त साहित्य निर्माण का काम भी मडल द्वारा शुरु किया गया। जिसमे देश के गणमान्य चिन्तको व लेखको की पुस्तके प्रकाशित हुई। इन पुस्तको मे कई पुस्तके विद्यालयो तथा महाविद्यालयो के कोर्स मे पाठ्य पुस्तको के रूप मे लगी। पत्रो मे इन पुस्तको की समीक्षा द्वारा प्रसिद्धि मिली। मंडल के कार्य का काफी प्रचार हुआ। पर अन्य सम्प्रदाय वाले इस संस्था को दिगम्बरो की संस्था मानते रहे। बहुत थोडे लोगो को यह समझाया जा सका कि यह संस्था किसी सम्प्रदाय विशेष की नही, वरन सभी जैनियो की है। दिगम्बर समाज के बाद मडल को अधिक समर्थन मिला हो तो वह

तेरापंथी सम्प्रदाय का था। मैं १९५० के जनवरी मास मे सर्वप्रथम आचार्यश्री तुलसीजी से मिला। उन्होने मंडल को तथा जैन समाज के भाईचारे को अपना समर्थन दिया। वह वरावर अब तक मिलता आ रहा है। तेरापंथी समाज एक आचार्य के अनुशासन मे चलनेवाला संगठित समूह है। फिर आचार्य तुलसी समयज्ञ है, जिससे सभी सम्प्रदायों मे समन्वय का महत्व समझते है। मैं प्रथम वार जयपुर मे २२ साल पहले मिला था। तव से वरावर सम्पर्क वढता ही गया और उनकी कई विशेषताओ ने मुझे आकर्षित कर उनके निकट पहुँचाया। मेरा यह विश्वास दृढ हुआ कि जैन सम्प्रदायो मे मेलजोल और समन्वय के काम मे वे वहुत वडे सहायक वन सकते है। उनके सम्बन्ध औपचारिक न रह कर आत्मीय से वन गये है। जिनमे बराबर वृद्धि होती रही है।

मंडल का अधिवेशन मद्रास मे कान्फ्रेस के अधिवेशन के साथ हुआ था। कान्फ्रेस के अध्यक्ष फिरोदियाजी, मंत्री आनन्दराजजी सुराणा तथा प्रमुख कार्यकर्ताओ का तो मंडल को समर्थन था ही परन्तु श्वेताम्बर समाज के फालना अधिवेशन से मूर्तिपूजक समाज से भी सम्पर्क जुडा। मंडल के भू० पू० अध्यक्ष श्री गुलाबचन्दजी ढड्ढा की तो मंडल के प्रति आत्मीयता थी ही, परन्तु कान्फ्रेस के अध्यक्ष श्री कातिलाल ईश्वरलाल का भी जो उस समय सम्पर्क आया वह वरावर उनकी मृत्यु तक बना रहा। वे मेरे निकटतम साथी वन गये जिससे उनके आग्रहवश मुझे जैन उद्योग गृह के अध्यक्ष पद का दायित्व लेना पडा।

कान्फ्रेस के फालना अधिवेशन मे उपस्थित रहने के लिए मुझे जयपुर में तार मिला। मेरे सहयोगी ताराचन्दजी कोठारी के साथ फालना पहुँचा। फालना मे एक घटना ऐसी घटी जिससे स्व० सोहन लालजी दूगड से परिचय हुआ और वे अभिन्न मित्र वन गए।

श्री ढड्ढा साहव ने हमे जहा ठहराया था कार्यकर्ताओ ने वह स्थान दानवीर सेठ सोहनलालजी दूगड के लिए सुरक्षित रखा था। इसलिए जव वे रात की गाडी से, जो करीव एक वजे पहुँचती थी उन्हे

लेकर वहा आये तो मैं तथा मेरे साथी नीद मे सोये हुए थे। स्वयंसेवक आये और बहुत गुस्से मे हमको जगा कर बोले कि "आप कौन है, यहा कैसे ठहर गये ? यह स्थान तो दूगड़जी के लिए सुरक्षित था।" मैं बोला—"ठीक है, हम आप कहेगे जहां ठहर जायेंगे। हमारा यहाँ ठहरने का कोई आग्रह नहीं।" किन्तु स्वयंसेवकों को इससे समाधान नहीं हुआ। वे बोले "आप है कौन और ठहरे कैसे ?" मेरे साथी ताराचन्दजी कोठारी से यह वर्दाश्त न हो सका। वे बोले "ये है रिषभदासजी रांका और यहा ठहराया था ढड्ढाजी ने।" जब मेरा नाम सुना तो दूगड़जी ने स्वयंसेवको को कहा कि अब आप जाइये, हम यहा ठहर जावेंगे। राकाजी को कही जाने की जरूरत नही। दूगडजी पति-पत्नी दोनो आये थे और वहा दो ही पलंग थे। मैं अपना बिस्तर समेटने लगा तो वे आगे बढ़े और बोले—"नही, आपको यही सोना होगा, हम नीचे सोयेंगे।" मैंने बहुत कोशिश की लेकिन वे माने ही नही। फिर तो हम दूगडजी के साथी ही नही बने बल्कि मेहमान बन गये। उनसे मडल के विषय मे खूब चर्चा हुई। मेरे विचार मैंने बताये। सेवा कार्य ऐसे हो जो समाजवालो को भार रूप न बने इसलिए मंडल ने १०१ रु० से अधिक दान न लेने का नियंत्रण स्वेच्छा से कर रखा था। उससे वे प्रभावित हुए। सोहनलालजी दूगड़ दान देने मे आधुनिक भामाशाह माने जाते थे और उन्होने समाज को लाखो का दान दिया है। मंडल के वे एक ऐसे समर्थक बन गए जो सदा बिना मांगे उसे देते रहे और मंडल के ऐतिहासिक सांगली अधिवेशन के सभापति भी बने। हमने उनके साथ सुप्रसिद्ध राणकपुर तीर्थ की यात्रा की और उसकी कला और भव्यता देखकर मुग्ध हुए थे।

वैसे मंडल सभी सम्प्रदायो मे मेलजोल बढाने वाली संस्था होनेपर भी उसमे प्रारम्भ से दिगम्बर कार्यकर्ताओ का ही विशेष योगदान था और जैन समाज मे यह मान्यता थी कि यह दिगम्बरो की संस्था है। पर मेरे प्रवास और व्यापक सम्पर्क ने अन्य सम्प्रदायो को भी निकट लाने मे मदद पहुँचाई।

किन्तु यह वात सही है कि प्रारम्भ से इस संस्था की स्थापना तथा उसके कार्य मे दिगम्वर भाइओ का ही अधिक योग रहा है। श्री जुगमंदिर लालजी जैनी तथा अजितप्रसादजी इस संस्था को वर्षों तक चलाते रहे। उन्होने दृष्टिकोण व्यापक रखा था फिर भी वे अन्य सम्प्रदायवालो को विशेप आकाषत नही कर पाये। अन्त मे जुगमंदिरलालजी ने चिरंजीलाल जी वडजात्या को इस संस्था का कार्य यह सोच कर सौंपा कि जैनियो मे मेलजोल होना अत्यत आवश्यक है। जव जैनियो को यह वात महसूस होगी तव वे उसे अवश्य अपनावेंगे। तवतक इस ज्योति को चिरंजीलालजी जलाये रखे। चिरंजीलालजी ने जैनी साहव द्वारा सौंपा हुआ दायित्व ठीक से संभाला और प्राणपण से मंडल के कार्य को संभालने की कोशिश की। वे भी दिगम्वर ही थे। चिरंजीलालजी को मंडल की विपम स्थिति मे सहायता पहुँचाने वाले श्रेयांसप्रसादजी व शांतिप्रसादजी भी दिगम्वर ही थे। चिरंजीलालजी द्वारा सभी को साथ लेने का प्रयत्न चलता रहा और उसमे राजमलजी ललवाणी, सुगनचन्दजी लुणावत, ताराचन्दजी कोठारी तथा मैं आये। हम श्वेतावरो का मंडल मे आने का कारण चिरंजीलालजी ही रहे। जव मंडल की आर्थिक स्थिति कमजोर थी तो जे० एल० जैनी ट्रस्ट के ट्रस्टी श्री जोहरीलालजी मित्तल व लालचन्दजी सेठी ने सतत वर्षों तक सहायता की। वे भी दिगम्वर सम्प्रदाय के ही थे। मडल के सहायक व कार्यकर्ता प्रमुख रूप से दिगम्बर सम्प्रदाय के रहे फिर भी उनकी भावना विशुद्ध थी और मैंने पाया कि जैन एकता के प्रयत्नो मे उनका योगदान महत्त्वपूर्ण रहेगा। सम्भव है उनका उस समय सहयोग न मिलता तो मंडल आज जैसा व्यापक वना वैसा नही हो पाता।

जिस प्रकार मडल के उद्देश्यो का प्रचार प्रवास द्वारा किया वैसे ही साहित्य की दृष्टि से भी काफी अच्छा काम इन दिनो मे हुआ। १६०० पृष्ठो का साहित्य प्रकाशित किया। १० पुस्तके प्रकाशित की, जो तीस हजार की सख्या मे छपी। साहित्य पं० सुखलालजी, किशोरीलाल

मश्रुवाला, विनोबा जी, पं० बेचरदास दोशी, डा० हीरालाल जैन, साध्वी उज्ज्वलकुमारी, तथा मेरे द्वारा लिखा गया था। हजारो की सख्या मे पुस्तको की बिक्री हुई। डा० हीरालालजी का कहना रहा कि जो काम बहुत रुपयो मे हो पाता वह आपने कौडियो मे किया। उन दिनो जैनजगत मे भी ५०० पृष्ठो की उत्तम लेखको की सामग्री ३ रुपये वार्षिक चन्दे मे दे रहा था। उन दिनो के प्रमुख लेखक थे महात्मा भगवानदीन, भदंत आनन्द कौसल्यायन, किशोरीलाल भाई, विनोवा, जैनन्द्रजी, पू० नाथजी आदि। जमनालालजी जैन अपना पूरा समय लगा कर मंडल का काम कर रहे थे। दफ्तर, जैनजगत, साहित्य प्रकाशन, बिक्री आदि कार्य वे ही संभाल रहे थे। जमनालालजी ने मडल की जो सेवाये की, उसके लिए जो परिश्रम किया वह सदा स्मरणीय रहेगा।

१९५१ के अप्रेल मास मे मंडल का अधिवेशन मुरार मे साहु शातिप्रसादजी की अध्यक्षता मे हुआ। जिसका उद्घाटन कमलनयनजी बजाज ने किया था। उस अधिवेशन मे अधिक से अधिक विद्वान् तथा कार्यकर्ता उपस्थित थे।

सोचा गया था कि जन सम्पर्क बढने से मंडल का कार्य आगे बढ सकेगा इस हेतु प्रवास के लिए स्टेशन वैगन खरीदने के लिए श्रीसाहुजी ने व्यवस्था की और सेठ लालचन्द हीराचन्द के कारखाने से डाज स्टेशन वैगन सहुलियत भाव से खरीदने के निमित्त उनसे मिलना हुआ। उस समय मडल के साथ सेठ लालचन्द भाई का सम्बन्ध बना और तब से वे मडल के कार्य मे दिलचस्पी लेने लगे और मंडल के उदयपुर अधिवेशन के अध्यक्ष भी वने। साहु बन्धुओ की तरह वे भी मंडल के आधार स्तम्भ ही बन गए।

स्टेशनवैगन खरीदने के बाद दो तीन साल सेठ राजमलजी ललवाणी, ताराचन्दजी कोठारी, सुगनचन्दजी लुणावत, फकीरचन्दजी मेहता आदि के साथ देश के विभिन्न क्षेत्रो मे मंडल के कार्य का प्रचार

करने के लिए दौरे किये। हम लोगो ने प्रवास खर्च की ऐसी व्यवस्था कर रखी थी कि जव प्रवास मे जाना होता तो पैंट्रोल आदि खर्च प्रवास करनेवाले आपस मे वाट लेते जिससे खर्चा संस्था पर नही पडता। महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान, मैसूर, मद्रास, आन्ध्र आदि प्रदेशो मे करीव पचास हजार मील से अधिक यात्रा की। लेकिन मुझे पुनः व्यवसाय मे नये सिरे से लगना पडा और प्रवास मे अधिक समय देना कठिन होगया तो स्टेशन वैगन साहूजी को वापस करदी। प्रकाशन का कार्य भी रोकना पडा और जमनालालजी जैन जैसे जीवनदानी साथी को भी मंडल निभाने मे असमर्थ रहा। जमनालालजी ने जीवन निर्वाह के लिए जितना आवश्यक हो उतना ही लेकर मंडल की जो सेवाये की थी उसका भले ही समाज के अधिक लोग उचित मूल्याकन न कर सके हो फिर भी मैं उस सेवा का उचित मूल्याकन करता था। उन जैसे निष्ठा-पूर्वक सेवा करनेवाले जीवनदानी की सेवा से जैन समाज लाभ न उठा सका इसका मुझे दुःख रहा। जीवन निर्वाह के लिए वहुत कम लेकर उन्होने समाज की सेवा की थी। परन्तु जैन समाज ऐसे जीवनदानी सेवको को उतना आदर नही देता जितना कुछ समय देने वाले अवैतनिक कार्यकर्ता को देता है। समाज ने ऐसे कई निष्ठावान कार्यकर्ताओ को खोया, जिन्होने दूसरे क्षेत्रो मे अपनी सेवाये दी। जव मैंने देखा कि मुझे अपने व्यवसाय मे कुछ अधिक समय देना होगा और उनका आदर पूर्वक मडल मे रहना कठिन हो जायेगा तव मैंने ही उन्हे सर्वसेवा संघ मे अपनी सेवाये देने के लिए भिजवाया और वे अभी सर्वसेवा संघ के प्रकाशन मे २० साल से अधिक समय से सेवाये दे रहे है।

जैन समाज मे अनेक सेवाओ के काम चलते है, करोडो रुपया उस पर खर्च भी होता है किन्तु सुयोग्य कार्यकर्ताओ का निर्माण और उन्हें आदर पूर्वक जीवनयापन की सुविधा देने जैसे महत्वपूर्ण कार्य की ओर समाज का ध्यान नही गया। इस ओर ध्यान जाना अत्यन्त आवश्यक

है। देश मे भारत सेवा समाज, लोक सेवा संघ, गाधीसेवा संघ जैसी संस्थाये गोखलेजी, लाला लाजपतराय, जमनालालजी ने स्थापित की, वैसा प्रयत्न होना चाहिए था। वह नही हो पाया और समाज मे सुयोग्य कार्यकर्ताओ की कमी हम महसूस करते है। व्यक्तिगत रूप से सार्वजनिक क्षेत्र तथा व्यापार मे कई युवको के व्यक्तित्व निर्माण का इसीलिए प्रयत्न करता रहा हूँ कि गाधीजी, जमनालालजी के साथ काम करते समय मैंने उनके कार्यकर्ताओ के निर्माण के प्रयत्नो को देखा था। स्वयं मेरे व्यक्तित्व निर्माण मे सेठ जमनालालजी ने जो कुछ किया था उसका निजी अनुभव पाया था। देखा था कि किसी भी नये कार्य या सस्था के निर्माण के लिए सुयोग्य कार्यकर्ता ढूंढने में वे कितना समय लगाते थे और उन्हे कितना महत्व देते थे। मेरे निजी व्यवसाय को फिर से ठीक करने मे लगने से मंडल के कार्य मे सन १९५३ से ६० तक विशेष सक्रिय नही रह सका। १९५३ मे मैं चि० शशिकला के विवाह के निमित्त पूना आया था। मेरे मित्र राजमलजी ललवाणी का सुझाव था कि वर का वधु के यहा बारात लेकर आने की प्रथा के वदले क्यो न हम वधु की वारात लेकर वर के यहा जाकर शादी करे। भले ही उनका यह प्रयोग हम दो मित्रो तक ही सीमित रहा हो, आगे न बढ सका। परन्तु श्री पूनमचन्दजी नाहटा ने अपनी पुत्री कमला व मैने शशिकला के विवाह मे इसे अपनाया। हमने वधु को वर के यहा ले जाकर शादी की। चि० शशि की शादी नारायणगाव मे की और हमारे परिवार के लोग पूना से नारायणगांव गये जहा दो दिन रहकर शादी की और लौटे।

चि० शशि की शादी के निमित्त से हम लोग पूना आये थे तव मेरे दामाद लालचन्दजो मुंथा और पुत्री विमला की राय से मेरा वर्धा छोड़ पूना रहना ठीक लगा तो मैं पूना रहने आया। मेरा छः साल का पूना का निवास वडा ही सुखद तथा लाभप्रद रहा जिसके लिए एक प्रकरण अलग से लिखना ही आवश्यक है।

□ □

२३

कृषि और गौपालन

१९४३ मे जेल से छूटने पर १९४८ तक की पारिवारिक जानकारी पिछले प्रकरण मे दी है लेकिन सेवाकार्य तथा व्यवसायो की जानकारी देना भी आवश्यक है। बीमा व्यवसाय तो था ही, जिससे पारिवारिक खर्च बहुत अच्छी तरह से चलता ही था। परन्तु दूसरा काम भी शुरु किया जिसे पूर्ण रूप से व्यवसाय नही कहा जा सकता। फिर भी उसमे सेवा की दृष्टि रहते हुए भी उसका सम्वन्ध हानि-लाभ से होने के कारण उसे व्यवसाय ही कहा जाएगा। यह व्यवसाय था खेती और पशुपालन।

चूँकि सार्वजनिक सेवा कार्यों मे मैं गौ-सेवा संघ का मंत्री था। कुछ दिन जमनालालजी की मृत्यु के वाद जानकीदेवी वजाज अध्यक्ष वनी और उपाध्यक्ष विनोवाजी तथा घनश्यामदासजी बिडला। सैद्धान्तिक पक्ष विनोवाजी तथा व्यावहारिक पक्ष विडलाजी देखते थे। सेठजी ने गौ-सेवा का काम व्यापक वने इसलिए अपने प्रतिष्ठानो मे गौसेवा (गौपालन) व कृषि के काम तो शुरु करवाये ही थे साथ ही उसके लिए "वच्छराज खेती" के नाम से लिमिटेड कम्पनी वना कर उसमे कृषि एव गौपालन का काम शुरु करवाया था। इसके अतिरिक्त हजारो एकड

जमीन जो कई गावो मे थी वहा कृषि के साथ गौपालन का काम भी होता था। उनसे सम्वन्धित सभी लोग गौपालन व्यवसाय के रूप मे करके अनुभव प्राप्त करे ऐसी उनकी इच्छा थी। मैंने गौ-सेवा संघ का काम करते समय गौपालन व खेती का अनुभव वर्धा गौशाला के कार्य द्वारा पाया था अत. जेल से छूटने के बाद कृषि और गौपालन का काम शुरु कर दिया। वर्धा मे मैंने २० एकड का एक खेत खरीदकर कृषि और गौपालन का काम शुरु किया। "वच्छराज खेती" मे तो यह काम वहुत बडे पैमाने पर चल रहा था। उस समय "बच्छराज खेती" के मैनेजिग डायरेक्टर चिरंजीलालजी थे । उन्हे लगा कि मै अपना अलग से काम करूँ इससे अच्छा तो वच्छराज खेती के साथ करूँ तो मेरी शक्ति का अधिक अच्छा उपयोग हो सकता है। मेरा निजी काम तो सीमित ही हो सकता था। इसलिए बच्छराज खेती के साथ काम करने की योजना वनाकर वच्छराज खेती लि० की भागीदारी मे मैंने कृषि-गौपालन का काम शुरु किया। प्रारम्भ तो एक गाव के काम से हुआ पर बढते-वढते ८-१० गावो मे खेती और गौपालन का काम होने लगा।

जब मैं जामनेर रहता था तव मेरे मित्र श्री राजमलजी ललवानी तथा युसुफमिया काजी चाहते थे कि मैं भी खेती करूँ। उनका मानना था कि खेती से वढकर कोई उत्तम रोजगार नही, जिसमे ईमानदारी और परिश्रम से रोजी कमाई जाती हो। वहा तो मैं खेती कर नही पाया था पर वर्धा मे उनके आग्रह की पूर्ति स्वरुप काम शुरु किया। मैंने करीब ८-६ साल कृषि-गौपालन मे लगाकर कृषि एव गौ-सेवा के साथ ग्राम समस्याओ का अध्ययन और अनुभव प्राप्त किया।

गाधीजी देहातो को ही सच्चा भारत समझते थे, क्योकि अधिकाश जनता गावो मे वसती है। जिन्हे भारत की सच्ची सेवा करनी हो वह गांवो मे वसने वालो की सेवा करे, ऐमा कहते थे। गाधीजी के जीवन के वीस माल देहातो मे वीते थे इसलिए मेरा देहातो की सेवा के प्रति आकर्पण तो था ही और मैने अपने जन्म गाव मे देहातो की सेवा का

प्रयत्न भी किया था। परन्तु उस प्रयोग मे मैं असफल रहा था। फिर से नये सिरे से उस प्रयोग मे क्या किया जा सकता है यह देखने के लिए कृषि और गौपालन के द्वारा गांवो की सेवा किस प्रकार की जा सकती है उसका अनुभव लेने की वात सोचकर इस व्यवसाय को अपनाया।

यह कार्य कई गांवो मे चलता था। वर्धा, यवतमाल तथा नागपुर जिले मे इस काम का प्रसार था। वोथली, सेलाकेली, पिरी, साटोडा, खाप्री, मुरभडी तथा यवतमाल मे खेती व डेरिया थी। करीव ११०० एकड खेती तथा ७५० के करीव गाये थी। गायो की नस्ल सुधार के साथ-साथ उनका दूध वढे इस दृष्टि से वैज्ञानिक ढंग से गौपालन का प्रयत्न चल रहा था। स्थानीय नस्ल पहले केवल खेती के वैलो के लिए पाली जाती थी। हमने उसमे दूध वढ़ाने का प्रयत्न किया। उचित सुधार व नस्ल सुधार से जो गायें दो सेर दूध देती थी वे ७-८ सेर तक दूध देने लगी। उनको अच्छी खुराक दी जाती थी तथा अच्छे सांड के कारण वछडे व वछडिया भी सशक्त होने लगी। दूधवृद्धि मे नस्ल-सुधार व अच्छी खुराक के साथ-साथ सफाई का भी वडा हिस्सा रहता है यह भी अनुभव हुआ। गन्दे स्थान तथा मच्छरो के कारण भी दूध मे कमी आती थी। इन सब वातो को ध्यान मे रखकर इस कार्य को व्यावसायिक दृष्टि से चलाया जाता था। मुझे अनुभव हुआ कि पारमार्थिक कार्यों में व्यवहार न हो तो वह कार्य सफल नही होता।

गौपालन कृषि के लिए सर्वोत्तम सहायक उद्योग है। खेती के विकास के लिए गौपालन एक उत्कृष्ट साधन है। खेती के वैल और खाद तो मिलती ही है पर खेती के खर्च के लिए दुग्ध विक्री द्वारा नगद पैसा भी मिलता है। पशुपालन के लिए खेतो से हरा तथा सूखा चारा प्राप्त होता है। इस तरह ये एक दूसरे के पूरक उद्योग है।

जव मैंने खेती का व्यवसाय शुरु किया तो देखा कि खेती मे से अधिकांश जमीन की उपजाऊ शक्ति बहुत कम हो गई है। चालीस-पचास साल के पहले खानदेश से विदर्भ की जमीन अधिक उपजाऊ

समझी जाती थी। पर परिश्रम ने खानदेश की कम उपजाऊ जमीन को उपजाऊ वना दिया और विदर्भ की सोना उगलने वाली जमीन से किसानो को उसपर किया खर्च निकालना भी कठिन हो गया था। मैं उन कारणो की खोज करने लगा तो मुझे पता लगा कि इसमे वहां के किसानो का आलस्य और प्रमाद ही मुख्य कारण था। जमीन कट रही थी इस ओर उन्होने ध्यान नही दिया। वांध-वाधकर जमीन का कटना नही रोका। उसकी जितनी सेवा करनी थी नही की। फसल कटने पर जमीन को जोतना और जमीन का उपजाऊपन कम करनेवाले कटे पौधो की ओर जितना ध्यान देना चाहिए उतना नही दिया। अच्छे वीज, खाद, समय पर जुताई आदि न करने से उपजाऊ जमीन कम उपजाऊ होती गई।

मैंने सोचा जमीन जिस प्रकार कई सालो मे कम उपजाऊ वनी है उसे सुधारने मे समय और शक्ति तो लगेगी पर हम उसे उपजाऊ वना कर किसानों को फिर से दे तो यह सेवा ही होगी। काम परिश्रम तथा धीरज का था। परन्तु लिखते हुए मुझे संतोप है कि उसमे काफी सफलता मिली। मैंने देखा कि किसानो ने आलस्य, व्यसनो तथा विवाह, मौत और जन्म आदि मे खर्च वढाकर अपने आपको ऐसा वना लिया है कि उनको खेती के लिए जव खर्च करना पडता है तव वे कर नही पाते। मैंने एक-एक गांव मे खेत सुधार कर अधिक उपजाऊ बनाकर वेचने शुरु किये। उनके पास खरीदने के लिए पूरा पैसा नही होता तो किश्त से रुपया वसूल कर खेती उन्हे दी। यद्यपि इन दिनो इस कार्य मे मैंने जो परिश्रम किया उस मुकावले मे कमाई वहुत कम हुई। यो कहा जाय तो हर्ज नही होगा कि नही के वरावर कमाई थी। पर उसमे खोया भी नही था। गांववालो के सम्पर्क में आया, उनकी विशेपताये तथा कमियो को देखा। उनमे से कुछ ऐसे किसान भी निकले जो उस खेती का विकास कर प्रतिवर्ष हजारो की कमाई उससे ले रहे है।

मैंने धीरे-धीरे वह खेती तथा गाये कम करदी। फिर भी वर्धा रहा

तब तक खेती व गौपालन मे २-३ घंटे लगाया करता था। जिसने मेरा मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा बनाने मे सहायता दी। घर का विशुद्ध दूध, शाक-सब्जी व अनाज मिलता था। खुली हवा मे खेती मे मेहनत करता जिससे मेरा स्वास्थ्य उत्तम रहा।

एक बार मेरे एक मित्र मेरी खेती देखने आये। वे वर्षो से बहुत बडे पैमाने पर खेती करते थे और अच्छे अनुभवी थे। मैं और मेरे कार्यकर्ता एक ऐसे खेत को उपजाऊ बनाने मे लगे थे जो बिल्कुल ही बंजर बन गया था। वे बोले "आप ऐसी जमीन मे सुधार करने लगे है जो पत्थर पर सर पकटना है। आप इतनी ही शक्ति खेती मे लगावे तो बहुत आमदनी हो सकती है।" इस पर मेरे साथी ने कहा, "आपका कहना ठीक हे कि अच्छी जमीन लेकर उसपर इतनी मेहनत करने से निश्चित ही आमदनी होगी पर बंजर जमीन को उपजाऊ बनाने के लिए जो परिश्रम, खर्च और धीरज चाहिए वह कौन रख सकता है? अत. हम वह कर रहे हैं।"

एक बार बम्बई के कुछ मित्र खेती पर आये। वहा की सब्जी, फल, फसल आदि देखकर उन्हे लगा कि यह काम बहुत अच्छा है। इससे आमदनी भी काफी हो सकती है। उन्होने खेती का व्यवसाय करने का निश्चय किया। वे स्वयं तो वहा रह नही सके इसलिए चिरंजीलालजी व मेरी भागीदारी मे काम करने का निश्चय कर वर्धा के पास एक खेत खरीदा। हम तीनो के साथ मेरे माटोडा खेती के भागीदार और जिन्होने गाधीजी के साथ वर्षो से काम किया था मेरे उन मित्र सुकाभाऊ को भी हमने भागीदार बनाया।

बम्बई के मित्र ने खेती के अच्छे पक्ष को ही देखा था। उसमे आने वाली कठिनाइया, खेती के प्रारम्भ मे होनेवाला खर्च उन्होने नही देखा था। अतः दो साल बाद जब हिसाब मे घाटा देखा तो इससे छुटकारा पाने की सोची। हम चारो ने इसमे ५-५ हजार पूंजी लगाई थी। दो साल मे पाच हजार रुपया घाटा आया। चिरंजीलालजी ने उस मित्र

को पांच हजार रुपया देकर घाटा खुद उठा लिया। अपना और उनका घाटा देकर वे भी मुक्त हुए। जब मेरे किसान मित्र जो मेरे कहने से भागीदार बने थे उन्हे मैंने कहा कि—आप मेरे कहने से भागीदार बने और घाटा आया तो वह मैं दे दूँगा। वे बोले, "नही ऐसा नही हो सकता। यदि मुनाफा आता तो मैं लेता फिर घाटा आप क्यो ले ?" मेरे बहुत आग्रह करने पर भी नही माने और जब उन्होने अपने हिस्से का घाटा भर दिया तभी उन्हे संतोप हुआ।

कृषि गौपालन के क्षेत्र मे गौ-सेवा संघ तथा व्यक्तिगत रूप से जो कुछ अनुभव लिया इसके अतिरिक्त गाधी स्मारक निधि का विदर्भ तथा मध्य प्रदेश के प्रतिनिधि के रूप मे कार्य किया उसका भी यहां कुछ उल्लेख करना आवश्यक मानता हूं। मैंने पू० जाजूजी की प्रेरणा से इस कार्य का दायित्व लिया था और डेढ साल तक उसे निभाया। उस समय मैंने विदर्भ मे जापानी पद्धति से चावल की खेती करने की दृष्टि से प्रयत्न किये थे। विदर्भ के चादा, भंडारा जिलो मे धान की खेती होती है। वहा इस प्रयोग को वढाने की दृष्टि से प्रयोग किये। गोदिया मे मेरे मित्र चतुर्भुजभाई जस्सानी का सहयोग इस कार्य मे काफी मात्रा मे मिला। हमने इस कार्य के जानकार कार्यकर्ता को 'कोरा केन्द्र' में प्रशिक्षित कर काम मे लगाया। मैंने इस कार्य तथा गौपालन के अनुभव मेरी "धान की खेती" और "गाय और हमारा आहार" इन दो पुस्तको मे भी दिये हैं। आज ये दोनो ही पुस्तके अप्राप्य हैं पर उसमें मैंने जो कुछ लिखा था वह प्रत्यक्ष कार्य द्वारा प्राप्त अनुभव के आधार पर ही था।

खेती व गौपालन निश्चित ही लाभप्रद व्यवसाय हे, पर उसके लिए परिश्रम, धीरज तथा व्यवहार बुद्धि भी आवश्यक होती है। जहा इन तीनों बातो का सुमेल होता है वहां इससे संतोष देनेवाला कोई दूसरा व्यवसाय मैंने नही देखा। मैंने कई व्यवसाय किए, खोया, कमाया परन्तु जो संतोष मैंने कृपि—गौपालन के व्यवसाय मे पाया उसका कोई मुकावला नही है। यदि किसी को गावो की सेवा करनी है तो उसके लिए

सीखने जैसी कोई पहली बात है तो स्वयं कृषि और गौपालन का व्यवसाय कर उसमे सफलता प्राप्त करनी चाहिए। उस व्यवसाय की सफलता उसके सैकड़ो व्याख्यानो तथा लेखो से अधिक प्रभावशाली हो सकती है। गावो की प्रशसा पर लिखे प्रभावशाली लेख तथा व्याख्यान वैसे ही है, जैसे अनेकान्त की प्रशंसा पर प्रवचन करनेवाले उन साधुओ के प्रवचन। जिनके जीवन मे अनेकात छू नही गया है वल्कि जो साम्प्र-दायिक झगडे वढाने मे तत्पर होते है। जैसे हमने अनेकात के ग्रन्थो की पूजा कर अनेकात की प्रशंसा करने वालो को देखा है वैसे ही कुछ लोग ग्राम संस्कृति की प्रशसा कर दूसरो को उपदेश देने मे तो कुशल होते है पर स्वयं गांव मे जाकर वैठने मे अपने आपको असमर्थ पाते है।

□ □

२४
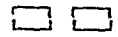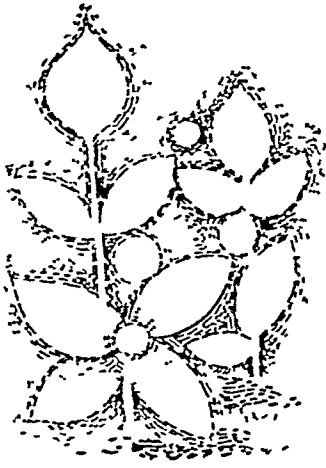
परिग्रह की अतिशयता के गलत प्रयोग

सेवा के लिये व्यापार करने के मेरे प्रयोग मे हुए कर्ज की समस्या सुलझाने के लिए सेठ जमनालालजी के मार्गदर्शन मे काम करने मैं वर्धा सन् १९३७ मे पहुँचा। सेठजी ने सलाह दी कि मैं एजेन्सिया लेकर ऐसा काम करू जिससे लिया कर्ज भी चुक जाय और परिवार का स्वाभिमानपूर्वक सादगी तथा सुख से जीवन निर्वाह हो सके। इस दृष्टि से उन्होने अपने प्रतिष्ठानो की एजेन्सिया दिलाई और वह काम करने के लिए आवश्यक पूंजी की व्यवस्था अपनी फर्म से दिलाकर फर्म की भागीदारी मे हिन्दुस्तान ट्रेडिंग एजेन्सी नामक कम्पनी शुरु करवाई। हिन्दुस्तान शुगर मिल की सी० पी० तथा महाराष्ट्र की एजेन्सी मिली लेकिन शक्कर मे मन्दी आने से व्यापारियो ने सौदे का माल नही छुडाया तथा कुछ माल चालू करने के लिए मंगा रखा था उसमे उल्टा नुकसान हो गया। इन्ही दिनो श्री लक्ष्मीनिवासजी बिड़ला ने न्यू एशियाटिक वीमा कम्पनी का काम सी० पी० तथा महाराष्ट्र मे बढाने के लिए सेठजी से सलाह और सहयोग मागा। सेठजी ने मुझे बुलाकर न्यू एशियाटिक इशु रेंश कम्पनी की हिन्दुस्तान ट्रेडिंग ऐजेन्सी मे चीफ

एजेन्सी लेने की सलाह दी। चीफ एजेन्सी लेकर मैं इस काम मे लग गया। अल्प समय मे ही उन्हे संतोष हो सके इतना काम मेरे द्वारा हुआ। बीमे के काम से हिन्दुस्तान ट्रेडिंग को शक्कर की एजेन्सी मे आया घाटा पूरा किया। कहते है भागीदारी करने पर प्रत्यक्ष व्यवहार मे प्रेम सम्बन्ध टिकते नही, पर मैंने जिन-जिन के साथ भागीदारी की उनसे तब भी प्रेम ज्यो का त्यो बना रहा और साझा नही रहा तो भी प्रेम मे कमी नही आई, क्योकि मैंने सदा भागीदार की भावना और हित का ही खयाल रखा।

जब बीमे का काम अच्छा चलने लगा तब लक्ष्मीनिवासजी बिड़ला ने सेठजी से मुझे कम्पनी की सेवा मे देने की बात की और मैं न्यु एशियाटिक कम्पनी मे अपनी सेवाएं देने लगा। १६३८ मे मैं न्यू एशियाटिक कम्पनी की जलगांव ब्राच का मैंनेजर हुआ। अल्पकाल मे ही ब्राच मैनेजर से डिविजनल मैनेजर और एजेन्सी मैनेजर के पद पर पहुँच गया।

बीमा व्यवसाय जमाने मे मुझे हजारो मीलो की यात्राएं करनी पड़ी किन्तु इस कार्य मे ठीक सफलता मिली। मैंने कई साथियो तथा समाज और घर के लोगो को इस व्यवसाय की शिक्षा दी और वे ऊचे ओहदे पर पहुँचे। मेरा तो पूरा परिवार ही इस व्यवसाय मे लगा है यह कहूँ तो अतिशयोक्ति नही होगी। मेरा छोटा भाई, बहनोई, जंवाई आदि इस धंधे मे आये और उन्होने अपनी काफी तरक्की की और अच्छी कमाई भी की।

वैसे यह उद्योग सार्वजनिक सेवा करनेवालो के लिए बड़ा उपयोगी होता है। इसमे जिनके सम्पर्क होते है तथा जो अपने ग्राहको को ठीक सेवा देता है उसे काम के साथ-साथ इससे अच्छी आमदनी भी होती है। मैंने तथा मेरे परिवार के लोगो ने इस व्यवसाय से अच्छी आमदनी की है। पूज्य जमनालालजी ने मुझे इसीलिए इस कार्य मे लगाया था कि मुझे सेवाकार्य करने मे सहुलियत रहे, साथ-साथ उन्होने इस खतरे से

भी सावधान किया था कि सेवाकार्य करनेवाले सेवक जब व्यवसाय मे लगते है और उनकी व्यवसाय मे तरक्की होती है तो वे अर्थ के पीछे सेवाकार्य भूल जाते है। वे वता रहे थे कि इस प्रकार उन्होने कई अच्छे कार्यकर्ताओ को खोया। इसलिए उन्होने कहा कि तुम्हे यह ध्यान रखना है कि धन के मोह मे सेवाकार्य को न भूला जाय। मैंने उन्हे वचन दिया कि मै अपने परिवार का स्वाभिमानपूर्वक निर्वाह कर सकू तथा उचित दायित्वो का पालन कर सकू इतनी ही कमाई करूंगा। मेरे उस संकल्प को भगवान ने निभाया। मेरे जीवन मे मुझे धन-संग्रह का मोह नही हुआ हो सो वात नही, वैसे ही व्यवसाय मे ऐसे अवसर भी आये जब मैं चाहता तो अधिक कमाई कर धन-संग्रह भी कर सकता था। जो मेरे साथ काम करते थे और काम सीखे, ऐसे कई युवक आज अच्छी कमाई कर रहे है। मैं भी वैसे कर सकता था पर प्रभु ने वचाया और व्यवसाय के साथ-साथ सेवाकार्य भी करवा लिया। मुझे उसने ही मोह से वचाया। धन संग्रह के साथ-साथ दूसरो के धन की अभिलाषा मन मे नही आने दी और न कभी मेरे जीवन मे अर्थ के लिए दीनता ही आई। जीवन मे सादगी थी और आज भी है। हा, यह सादगी आगे चल कर मेरे परिवार मे नही रह सकी फिर भी मेरे परिवार का खर्च इतना नही वढ पाया कि दूसरे के धन या सम्पत्ति की अभिलाषा करनी पडे।

चूँकि जैन परिवार मे पलने के कारण अपरिग्रह सम्बन्धी विचारो का प्रभाव तो था ही, फिर गाधीजी, विनोवाजी, जाजूजी आदि का भी मुझ पर ऐसा प्रभाव पडा कि अकिंचन वनकर सेवा करूँ। मैंने अपने जीवन मे वैसे प्रयोग भी किए पर मुझे यह कहने मे संकोच नही है कि मै पूर्ण अपरिग्रही जीवन विताने मे असफल ही रहा। अपरिग्रही जीवन के लिए उचित पात्रता के विना किया हुआ प्रयोग लाभ के बदले हानिकर होने की सभावना रहती है और मेरे विषय मे भी वैसा ही हुआ।

अच्छी आमदनी छोड अकिंचन वन सेवा के मेरे प्रयोग केवल असफल ही नही रहे, पर उसके लिए मुझे काफी भुगतना भी पडा। भाग्य

से पूज्य केदारनाथजी मुझे ऐसे मार्गदर्शक मिले जिन्होने अपरिग्रह के विषय मे योग्य दृष्टि दी जिससे गृहस्थी के दायित्व का पालन करते हुए मैं कुछ सेवा भी कर पाया।

१९५१ मे मैंने व्यवसाय से निवृत्ति लेकर पूरा समय जनसेवा मे देने का संकल्प किया। गृहस्थी का खर्च चल सके ऐसी कुछ व्यवस्था भी वैठाई। पर यह व्यवस्था चल नही सकी, तव जाजूजी की यह राय रही कि मुझे जीवन निर्वाह के लिये पारिश्रमिक लेकर अपना पूरा समय और शक्ति सेवाकार्य मे लगानी चाहिए। सेवा कार्य के लिये ऐसे कार्यकर्ताओ की जरूरत तो होती है जो पूरा समय और शक्ति सेवाकार्य मे ही लगावे। पर ऐसे कार्यकर्ता या तो ब्रह्मचारी हो, या घर के लोग उसे त्यागमय जीवन विताने मे सहयोग दे। यदि वैसे नही होता है तो उस व्यक्ति की स्थिति दयनीय वन जाती है, उसमे दीनता आती है। सेवा वही होगी जिसमे कम से कम लेकर समाज को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाया जाय। मेरे पास जो कुछ था उससे पारिवारिक खर्च चल सके ऐसी स्थिति नही थी फिर एक पुत्री के विवाह की भी जिम्मेदारी शेप थी फिर भी व्यवसाय मे लगने की अनिच्छा सी थी पर पारिवारिक दायित्वो को कैसे निभाया जाय यह समस्या थी। निवृत्ति के संकल्प ने मुझे चिन्तन के लिए बाध्य किया। घर के लोगों खासकर वहनोई और जंवाई का आग्रह था कि मुझे फिर से व्यवसाय करना चाहिए। मेरा यह अहकार कि मैंने निश्चय कर लिया उसे कैसे वदला जाय, नये सिरे से काम शुरु करने मे वाधक था। दुविधा और परेशानी में मेरे ६-७ महीने वीते, अन्त मे पूज्य केदारनाथजी के मार्गदर्शन के लिए मैं बम्बई पहुँचा। मैंने एक हजार रुपये मासिक की नौकरी स्वेच्छा से छोडी थी और स्वाभिमानपूर्वक ३००-४०० रुपये मिल जाय तो भी मेरा झुकाव सेवाकार्य करने की ओर था। पूज्य नाथजी ने मेरी सारी स्थिति समझी और कहा कि "मुझे व्यवसाय से परिवार को स्वाभिमान तथा स्वावलम्बन से रहने की व्यवस्था करनी चाहिए। यही मेरा प्रथम कर्तव्य

है। उसे पूरा करते हुये जो सेवाकार्य वन पडे वह किया जाय। उन्होने मुझे इस विषय मे भी सावधान किया कि लोग यह वात भूल जायँगे कि तुम अधिक कमाने की शक्ति रखते थे और त्याग करके सेवाकार्य मे आये हो। उन्हे तो सेवाकार्य से पारिश्रमिक लोगे वह अधिक लगेगा। सम्भव है इससे तुममे दीनता भी आये। सेवाकार्य के लिए दीनता आना मानवता की दृष्टि से उचित नही है। ऐसी दीनता मैंने कई कार्यकर्ताओ मे देखी और उन्हे पश्चात्ताप करते हुये भी पाया है। आज तो प्रथम यह सिद्ध किया जाय कि तुम पहले कमाते थे इससे तुम्हारी वहुत अधिक योग्यता है। तुम ही नही, परिवार के सभी सदस्य आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्वी हो ऐसी स्थिति होनी चाहिए।" और लिखते हुए सन्तोप होता है कि आज मेरे परिवार के सभी लोगो की आर्थिक स्थिति सन्तोपजनक है। उन्होने कहा कि "प्रथम तुमने परिवार की जो जिम्मेदारी स्वीकार की है उसे निभाया जाय। तव तक व्यवसाय करते हुये जितनी भी सेवा कर सको, करते रहो। पर प्रथम कर्तव्य परिवार की जिम्मेदारी की पूर्ति करना है। यह चर्चा १० से १२ अक्टूबर तक चली। पूज्य नाथजी ने १३ अक्टूबर को निर्णय दिया कि मैं फिर से व्यवसाय करूँ। मैंने १३ अक्टूवर १९५१ को काम के लिए वातचीत शुरू की। १५ तारीख को जय भारत कम्पनी मे मुझको १००० मासिक का नियुक्ति पत्र मिला और मैं फिर से काम मे लगा।

नये सिरे से काम जमाने मे मुझे कुछ अधिक परिश्रम करना पडा क्योकि मैं इससे पहले वीमे का काम रूबी इंश्योरेंश कम्पनी में करता था। मेरे स्थान पर काम छोड़ने के वाद मेरा छोटा भाई सभाल रहा था। यद्यपि वह दफ्तर वर्धा से नागपुर ले गया था फिर भी पुराने ग्राहक इसी क्षेत्र मे थे और वे मेरे सम्पर्क के कारण बीमा रूबी मे देते थे। उनसे काम लेने मे प्रतिस्पर्धा सम्भव थी, वैसा करना मुझे उचित नही लग रहा था फिर क्षेत्र भी छोटा था इसलिए कार्यक्षेत्र वदलना उचित मालुम दिया और मैंने पूना को अपना क्षेत्र वनाया। नये क्षेत्र मे तथा नये ग्राहको मे काम लेने मे श्रम करना पड़ा। मुझे तीन वर्षों मे लगभग

५० हजार मील का प्रवास मोटर तथा रेल से करना पडा । काम सन्तोषजनक रीति से बढने लगा । मैंने सैकड़ो गावों मे कार्यकर्ता नियुक्त कर सगठन किया, कम्पनी को अच्छी कमाई होने लगी और अल्प समय मे ही मुझे खूबी से अधिक पारिश्रमिक मिलने लगा ।

भले ही प्रारम्भ मे काम जमाने मे अधिक समय और परिश्रम करना पडा हो फिर भी मैंने सेवाकार्य बिलकुल त्याग नही दिया था, कुछ काम करता ही था। आगे चलकर परिस्थिति बदल गई । व्यवसाय मे कम समय देने पर भी काम चलने लगा । फिर कम्पनी के साधन टेलीफोन, मोटर आदि की भी सेवाकार्यों मे मदद होने लगी । व्यवसाय के लिए किया हुआ प्रवास भी सेवाकार्य मे सहायक बना । मेरा व्यवसाय सेवाकार्य मे बाधक नही, पर सहायक ही सिद्ध हुआ ।

नाथजी ने अपरिग्रह के बदले मे उचित परिग्रह का महत्व समझा कर मेरे जीवन को मोड दिया । जीवन मे उचित परिग्रह के महत्व को समझकर मैंने उसे अपनाया । साथ-साथ नाथजी परिग्रह या संग्रह के मोह से बचने के लिए भी सावधान करते रहे । वैसे प्रारम्भ से ही मेरी वृत्ति अधिक संग्रह की नही थी और फिर नाथजी का मार्गदर्शन मिला जिससे परिग्रह के दुष्परिणामो से मैं बच सका । संग्रह के ममत्व को टाल सका । उचित परिग्रह को अपनाया । यदि जैन परिभाषा मे कहा जाय तो उसे परिग्रह परिमाण कहा जा सकता है ।

सारे परिवार को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने मे पूज्य नाथजी का मार्गदर्शन बडा ही उपयोगी रहा और मेरे परिवार के जिन लोगो का मुझ पर दायित्व था, आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन व स्वावलम्बी बन सके ।

अर्थ की निन्दा और अपरिग्रह का बखान चाहे कोई कितना भी करे लेकिन अर्थ के बिना किसी का जीवन नही चलता । अर्थ के अभाव मे व्यक्ति आत्मसम्मान का जीवन नही जी सकता । अन्न, वस्त्र, सुविधा-जनक घर, बच्चो का पालन-पोषण तथा उनकी शिक्षा का प्रबन्ध,बीमारी

या बुढापे की व्यवस्था भी अर्थ के विना नही हो सकती। जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति और सुखपूर्वक रहने के लिए ही धन की आवश्यकता रहती है। धन के बारे मे यह वास्तविकता होते हुये भी अधिकांश धर्मवेत्ताओ ने धन को असन्तोष तथा दुर्गुणो की खान कहा है। भारतीय धर्मवेत्ताओ के अनुसार यदि पूर्ण सुख की प्राप्ति करनी हो तो वह सम्पूर्ण परिग्रह त्याग के विना नही हो सकती। इस उपदेश के अनुसार चलनेवालो की गणना एक तरह से अपवाद मे ही की जायगी और वह विशिष्ट व्यक्तियो की कठोर साधना ही कही जायगी, क्योकि वस्तुस्थिति तो यह है कि अधिकाश लोगो का जीवन धन के विना चल नही पाता।

धन प्राप्ति और संग्रह मे न्याय, अन्याय का खयाल तथा परहित को न भुलाया जाय। धन के दास न बनें इसलिए दोनो अतियो के बीच का मार्ग अपनाया जाय यही अधिक श्रेयस्कर है। परिग्रह मूर्च्छा या आसक्ति मे है,इसलिए जैन धर्म ने अपरिग्रह के ऐवज मे परिग्रह परिमाण व्रत की वात गृहस्थियो के लिये कही है। वही शिक्षा पूज्य नाथजी व स्व० जमनालालजी ने दी जिसके कारण मैं अपने जीवन में सफल हो सका। स्व० जमनालालजी ने व्यवहार की, धन कमाने की कला सिखाई और नाथजी ने धन के विषय में कौनसा दृष्टिकोण अपनाया जाय यह वताया। दोनो ने मिलकर सन्त तुकाराम की इस उक्ति की शिक्षा दी "जाडोनिया धन उत्तम व्यवहारे। उदास विचारे वेच करी।"

इसीलिए उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। जीवन में कुछ सफलता पाने मे या जीवनकला सीखने में मुझे अनेको से वहुत सीखने को मिला पर उन सवमे स्व० जमनालालजी एवं श्री नाथजी का स्थान सबमे ऊँचा है। मैं इन दोनो को तो पितृतुल्य मानता ही हूँ, वरन् वे भी मुझे पुत्रवत् मानकर वहुत कुछ देते रहे और पूज्य नाथजी से तो आज भी पिता का प्यार मिलता रहता है।

□□

२५

पूना का निवास

मै १९५४ मे पूना आया । प्रारम्भ के दो तीन साल मुझे व्यवसाय को फिर से जमाने मे ही लगे। मेरे व्यवसाय के लिए यह नया क्षेत्र था परन्तु आहिस्ता-आहिस्ता मेरा काम यहा ठीक से जम गया और मैं फिर से सेवा कार्यों की ओर थोडा समय लगा सकू ऐसी स्थिति जब बनगई तब जैनजगत पत्र को जो वर्धा से निकलता था उसे १९५७ के मई से पूना से छपाने की व्यवस्था की । श्रीजमनालालजी जैन सर्व सेवा संघ के कार्य के लिए वाराणसी चले गये। वर्धा से यह पत्रिका श्री रतन लालजी पहाडी की देखरेख मे कुछ दिन निकलती रही, परन्तु सतोप न होने से पूना से निकालने की योजना बनाई,जिससे मेरे मित्र और साथी श्री कनकमलजी मुणोत का सहयोग बडा ही महत्वपूर्ण रहा । मडल के लिए यह समय आर्थिक दृष्टि से कठिनाई का था । पत्र मुणोतजी के प्रेस मे छपता था और मुझे याद है कि कई बार उन्हे डेढ-दो साल तक छपाई तथा कागज के बिलो के लिए रुकना पडता था । पत्र पूना आनेपर उन्होने प्रकाशक का दायित्व लिया था और १९५७ से अब तक वे बराबर निभाते आये हैं । यदि वे मेरा साथ न देते तो जैनजगत का प्रकाशन

कठिन हो जाता। उन्होने साल-साल तक छपाई उधार देने का ही काम नही किया वरन छपाई की दर भी बाजार से कम लेते। न मालूम मेरे सेवा कार्यों मे कितने ही ऐसे कार्यकर्ता मित्रो की सहायता लेनी पडी है इसलिए मुझे यह भाव वना रहता है कि जो कुछ मुझसे बन पडा वह सब साथियो के कारण ही। कईयो के सहयोग का समाज को पता तक नही है। उनमे से श्री कनकमलजो एक है, जिनके जीवन का काफी समय और शक्ति समाज के विविध सेवा कार्यों मे लगी और अव तो वे अपना व्यवसाय सुयोग्य उत्तराधिकारी अपने पुत्र को सौपकर अधिकाश समय सेवा कार्यों मे दे रहे है। ऐसी आशा निर्माण हो गई है कि कुछ समय के बाद अपना पूरा समय ही सेवा कार्यों मे दे। उनका पुत्र श्री प्रदीपकुमार भी जैनजगत को अपना समझकर आत्मीयता से उसे आकर्पक व निर्दोप छापने का प्रयत्न करता है। इसलिए जैनजगत की-छपाई की चिंता से मैं मुक्त हूँ।

पूना मे मुझ पर एक और काम का दायित्व आया जिसके कारण संस्था मे पद न लेने के मेरे निर्णय को मुझे वदलना पडा। पूना के उप नगर चिचवड मे जैन समाज की ओर से एक शिक्षा संस्था 'जैन विद्या प्रसारक मंडल' के नाम से चलती है। उस सस्था के कार्याध्यक्ष श्री धनराजजी चौरडिया का हृदय-गति रुक जाने से अचानक एक शादी मे जहा गये थे वही निधन हो गया। संस्था के मत्री थे श्री कनकमलजी मुणोत तथा परसरामजी चौरडिया तथा खजाची थे श्री शंकरलालजी पोकरणा। इन तीनो के साथ ही मेरे अच्छे सम्बन्ध थे। वे आये और मुझे कार्याध्यक्ष पद का दायित्व लेने के लिए कहा। मैंने कहा कि मैं किसी पद पर न रह कर बन पडे वह सेवा करता रहूंगा। इसपर वे वोले कि इस समय हमे एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत है जो सभी मे समन्वय रख सके। मैं आग्रह टाल नही सका और इस संस्था का कार्याध्यक्ष वना।

ज्यो-ज्यो संस्था के काम की जानकारी होती गई मैंने देखा कि

आर्थिक स्थिति संतोषजनक नही थी । उस समय वहा २४० लडके हाई स्कूल मे पढते थे । छात्रालय मे ५० के करीव लडके थे । संस्था पर करीव ४० हजार का कर्ज था और हर साल १०-१५ हजार रुपये घाटा रहता था जिसे छात्रालय मे पढनेवाले लडको द्वारा पर्युपण के समय संस्था के लिए दान मागकर या कर्ज लेकर चलाया जाता था ।

सर्वप्रथम मैंने संस्था का हिसाब देखना शुरु किया तो मुझे लगा कि संस्था के खर्च पर नियन्त्रण करना चाहिए । लडके जो दान मांगने जाते है उससे ८-१० हजार रुपये एकत्र होते है पर उसमे प्रवास खर्च ही ४-५ हजार रुपये हो जाता था । आधे से ज्यादा खर्च उसी पर होता था । मेरे पास व्यवसाय के निमित्त से मोटर तो रहती ही थी । मैं प्रति सप्ताह जाकर काम देखने लगा । संस्था की करीव ३५ एकड जमीन मे खेती होती थी, यह खेती भी घाटे में चलती थी । लडकों के भोजन मे भी परिवर्तन किया तथा व्यायाम की ओर ध्यान देने लगा । लडको का स्कूल मे प्रवेश के समय वजन लिया जाता और बाद मे वहा रहने पर देखा कि वजन मे ठीक-ठीक वृद्धि होने लगी । भोजन मे हरी सब्जी एवं छाछ का प्रमाण बढा कर आहार को संतुलित वनाने का प्रयत्न किया । जब पर्युषण निकट आया तो लडको द्वारा दान मागने की योजना वनने लगी । मैंने कहा कि लडको को इस प्रकार भीख मागने भिजवाना मुझे उचित नही लगता । मैं उसके दुष्परिणामो को देख चुका था । दान मागनेवाले लडको पर मैंने दो प्रकार के संस्कार देखे । एक तो उनमे दीनता आती है दूसरे समाज के लिए तिरस्कार । क्योकि मागनेवालो के साथ कई जगह व्यवहार ठीक नही होता । मेरे इस निर्णय से कार्यकारिणी के लोगो मे कुछ चर्चा हुई । वे कहने लगे कि संस्था कैसे चलेगी ? क्योकि संस्था मे काम करनेवाले शिक्षको को वेतन भी नही दिया जा सका है । पहले लिया हुआ कर्ज दिया न जाने से नया कर्ज मिलने मे भी कठिनाई है । मैंने कहा कि सस्था की यह प्रतिष्ठा होनी चाहिए कि लोग आकर स्वय प्रेरणा से दान दे । तब तक कार्यकर्ताओ को जाकर

दान लाना चाहिए पर लडको को तो हर्गिज नही भेजना चाहिए। मैंने साथियो के साथ संस्था के लिए चंदा एकत्र करने तथा संस्था की व्यवस्था मे सुधार किया। फलस्वरूप वहां ऐसी स्थिति निर्माण हुई कि विना मांगे कपूरचन्द नेमचन्द मेहता ने वुलाकर एक लाख रुपये दिये।

मैं वरावर यह ध्यान रखने लगा कि वहा जो लडके रहते थे उनका मानसिक, वौद्धिक तथा शारीरिक विकास हो। अच्छे व्याख्याता बुला कर उनके मानसिक विकास का तथा शिक्षको द्वारा बौद्धिक विकास व आहार-विहार पर ध्यान रख कर शारीरिक विकास का प्रयत्न किया। मैं जव भी संस्था मे जाता तव वच्चो से मिलता। उनसे वातचीत करता। फलस्वरूप आज भी कई वार वहा पढे हुए लडके मिलते है तो मेरे प्रति सद्भावना प्रकट करते है।

वैसे उस संस्था के निमित्त से कई लोगो से संपक हुआ। लडको तथा कार्यकर्ताओ के निकट आने का मौका मिला। मेरी इच्छा इस सस्था को ऐसी बनाने की थी कि वहा से निकले हुए लडको को नौकरी ढूंढनी न पडे वरन वे स्वतंत्र कृपि या औद्योगिक कार्य कर सके। उसके लिए मैने प्रयत्न भी किया। परन्तु मेरे वम्वई आने के निर्णय के कारण मैं उसमे अधिक कुछ कर नही पाया। क्योकि ऐसे प्रयोगो के लिए कुछ वर्प पूरा समय देना आवश्यक होता है जो मैं नही कर पाया। फिर भी मैं वम्वई आनेपर भी वर्षों तक उस सस्था के कार्याध्यक्ष के रूप मे काम करता रहा। अध्यक्ष थे पनवेल के श्री रतनचन्दजी वाठिया। इस संस्था के निमित्त से श्री वाठियाजी का जो संपर्क आया वह बडा ही सुखद रहा। वे सौम्य स्वभाव के मिलनसार सज्जन थे। उनकी धार्मिक वृत्ति थी। उन्होने तथा उनके परिवार वालो ने चिंचवड संस्था को प्रारम्भ मे काफी दान दिया था। जिस जमीन को २०-२५ हजार मे खरीदा था, वह आज २०-२५ लाख की हो गई है। यह जमीन श्री चन्द्रभाणजी डाकलिया ने खरीद कर संस्था को दी।

वढती हुई विद्यार्थियो की संख्या को अकोमोडेट करने के लिए

मकान बनाना आवश्यक था तथा उसमे टेक्नीकल शिक्षा का काम शुरु करना इसलिए आवश्यक था कि चिंचवड मे आहिस्ता-आहिस्ता औद्योगिक कारखाने बढने लगे थे और वह औद्योगिक बस्ती बनने जा रही थी। उसके लिए बम्बई मे सांस्कृतिक कार्यक्रम रखा गया। जिसका उद्घाटन सेठ श्री कस्तूरभाई ने किया। संस्था की आर्थिक स्थिति सुदृढ बनी। पूना के साथी वहा का काम ठीक तरह से संभालने लगे तब मैंने उस सस्था से निवृत्ति लेना आवश्यक समझकर कार्याध्यक्ष पद त्याग दिया। जब मैंने सस्था से निवृत्ति ली तब बैंक मे संस्था के तीन लाख रुपये जमा थे।

चिंचवड की तरह ही चादवड, छोटी सादडी तथा कानोड की संस्थाओ से भी मेरा सम्बन्ध आया और मैंने उन संस्थाओ के विकास के प्रयत्नो मे कुछ योगदान भी भाई राजमलजी ललवानी की प्रेरणा से दिया था। सन्तोष है कि वे संस्थाऐं आज भी ठीक काम कर रही है। कानोड सस्था के संचालक उदय जैन का जो मेरे साथ इस निमित्त से सम्पर्क आया वह आत्मीय तथा संस्था के लिए लाभप्रद रहा। कानोड, मेवाड़ के पिछडे हिस्से मे है। उस संस्था का आदिवासी तथा जैन छात्रो ने समान रूप से लाभ उठाया है। उदयजी बड़े लगनशील व परिश्रमी कार्यकर्ता है। उदयजी ने संस्था को बढाने के लिए अपनी सामर्थ्य से अधिक कार्य का बोझ उठाकर अपना स्वास्थ्य कमजोर बना लिया। चिंता और परेशानी के कारण उन्हे रक्तचाप की बीमारी का शिकार होना पडा।

जैनियो के भोपालगढ विद्यालय, विद्यावाड़ी का मरुधर विद्यालय, बीठडी का शान्ति मंदिर, राणावास का कन्या विद्यालय तथा जैन विद्यालय, लासलगांव का महावीर जैन विद्यालय, अमरावती के जैन छात्रालय आदि संस्थाओ से सम्पर्क आया और मैंने इन सस्थाओ को आर्थिक दृष्टि से सुदृढ बनाने मे योगदान दिया।

इस निमित्त से संस्थाओ, कार्यकर्ताओ तथा दाताओ से विविध अनु-

भव और शिक्षा प्राप्त हुई। जैन समाज की शिक्षा संस्थाओ की समस्याओ तथा कार्य के विषय मे प्राप्त जानकारी से मुझे उस विषय का काम करने मे काफी सुविधा हुई और जैन संस्थाये किस तरह अधिक उपयोगी वन सकती है यह जान सका हूं।

यो पूना मे जलवायु स्वास्थ्यप्रद था और वहा कम खर्च मे गृहस्थी चल रही थी पर वम्वई इसलिए आया कि पूज्य नाथजी के विशेप संपर्क मे रहूं और उनकी सेवा भी कर सकूं इसलिए मकान भी पूज्य नाथजी के वगल मे लिया। करीब ३ साल पडोस मे भी रहा, किन्तु जो स्थान पूज्य नाथजी के लिए लिया गया था वहा अशाति वढ जाने से पूज्य नाथजी ने वांद्रा मे अपना निवास बनाया। पर मैं जिस उद्देश्य से वम्वई आया वह सफल हो नही सका परन्तु मेरे वम्वई निवास ने मुझे दूसरा वहुत लाभ पहुँचाया इसको इन्कार नही किया जा सकता। मेरे वम्वई निवास के मधुर संस्मरण मुझे अगले प्रकरणो मे कहने होगे।

□ □
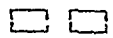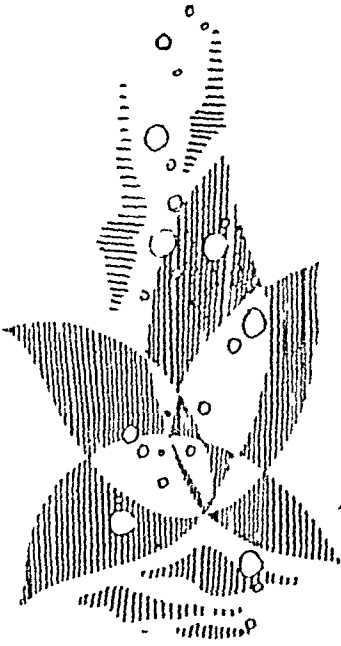
२६

बम्बई में भारत जैन महामण्डल का कार्य

मै १९५८ से ही पूज्य नाथजी से अधिक मार्गदर्शन पाने और साथ रहने की वात सोच कर अधिकतर वम्बई रहने लगा। मैंने व्यवसाय का केन्द्र पूना से बदलकर वम्वई बना लिया। प्रारम्भ मे मैंने मेरी पुत्री के लिए एक फ्लेट वडाला मे खरीदा था पर कुछ दिनो के वाद स्वयं एक फ्लेट पूज्य नाथजी के पडौस मे खरीदकर वडाला का फ्लेट वेच दिया और वम्वई रहने की योजना बनाकर घर के लोगो को भी वम्वई ले आया।

मेरी पत्नी की स्थान वदलने मे हमेशा अनिच्छा ही रही। पूना से वम्वई आने मे भी ४-५ महीने लगे। नये सिरे से घर जमाने और पुराना सामान एक जगह से दूसरी जगह ले जाने मे जो नुक्सान होता है उससे उसे सदा दु.ख ही होता आया। वर्धा से जव पूना आया तो आधे से ज्यादा सामान वही रह गया था। और उसमे काफी हानि उठानी पडी। पूना मे वही सामान नया खरीदना पडा। जब तब गांव या घर वदलने मे इसकी अनिच्छा ही रही और उसका कारण सामान की नुकसानी के अतिरिक्त यह भी था कि जहा एक वार मन

लग जाता उसे छोड़ने मे उसे कष्ट होता। जब पूना से बम्बई आना पडा तो वैसा ही हुआ। प्रारम्भ मे भले ही बम्बई का घर उसे पसन्द न आया हो किन्तु अब तो वम्वई ही नही, बल्कि यह फ्लेट छोडना भी उसे अच्छा नही लगता।

पूज्य नाथजी के पडोस मे करीब ढाई साल रहा, उससे मुझे बहुत लाभ मिला। पूज्य नाथजी ने पुत्रवत् प्रेम देकर मेरे छोटे बडे दोपो को दूर करने की कोगिग की। मैं वचपन से ही कुछ अव्यवस्थित-सा रहा हूं और नाथजी को किंचित अव्यवस्थितपन बर्दास्त नही होता। धोती वाधने से लगाकर सभी छोटे-मोटे दोष दूर करने का प्रयत्न करते रहे। भले ही मैं उनकी हर शिक्षा को नही अपना सका फिर भी मेरे जीवन मे काफी परिवर्तन आया। मेरे काम पहले से अधिक निर्दोष तथा विवेकयुक्त होने लगे। मेरा यह सद्भाग्य रहा कि पिताजी के अतिरिक्त दो धर्म पिताओ से मैं गिक्षा तथा प्रेम पा सका। एक थे सेठ जमनालालजी व दूसरे पूज्य नाथजी। पूज्य नाथजी को उच्चकोटि के संत तथा सेवा की मूर्ति कहा जाय तो अतिशयोक्ति नही होगी। वे स्थायी और निर्दोष सेवा वन पडे इसलिए आवेग या भावनावश होकर नही, वल्कि व्यावहारिक तथा विवेकी वनकर सेवा करने की सीख देते रहे। सेवक मे हीनता न आवे, ऐसी सावधानी रखने की गिक्षा देने के कारण मेरे जीवन तथा कार्य पद्धति मे काफी अन्तर आया। उन्होने बताया कि सेवा भी दूसरो पर लादी न जाय पर लोगो को सेवा की आवश्यकता हो, वे सेवा लेने की इच्छा करे और हम वह काम करने की क्षमता तथा योग्यता रखते हो तो हम सेवा देने मे संकोच न करे। सहजभाव से आई हुई सेवा को मैं निर्दोप तथा किसी प्रकार की अपेक्षा न रखते हुए करने की कोशिग करने लगा। वम्वई मे प्रारम्भ मे केवल मडल का ही काम था। मंडल का हीरक जयंती महोत्सव साहू गान्तिप्रसादजी की अध्यक्षता मे १९-२० दिसम्बर १९५६ मे हुआ। जिससे मडल के कार्य मे फिर से गति आई। साहू वन्धुओ का मडल को सदा सहयोग मिलता

रहा। जब मैं बम्बई आया तब जैसे तैसे मंडल का काम चल रहा था। जैनजगत भी कनकमलजी मुणोत के प्रेस मे उधार छप रहा था। उन्हे डेढ दो साल तक की छपाई के बिलो का भुगतान नही किया जा सका था। 'जैनजगत' के सिवाय दूसरी कोई प्रवृत्ति मंडल मे शेप नही रह गई थी। पर हीरक जयन्ती अधिवेशन के बाद साहू शान्तिप्रसादजी के 'जैनजगत' ठीक से चले तथा दफ्तर मे एक स्वतन्त्र व्यक्ति रहकर काम कर सके ऐसी आर्थिक सुविधा कर देने से फिर से मंडल के काम मे गति आई और नियमित रूप से 'जैनजगत' का प्रकाशन होने लगा और पुराना कर्जा भी चुकाया गया। १६६०-६१ मे जैन समाज मे लघु उद्योग वढे इस विषय की जानकारी 'जैनजगत' मे दी जाने लगी। और जिन्होने भी ऐसे उद्योग शुरू करना चाहे उन्हे मार्ग दर्शन दिलाने की भी व्यवस्था की। 'जैनजगत' मे विज्ञापन प्राप्ति पर जोर दिया गया। कुछ हीरक जयंती की बचत तथा शातिप्रसादजी के एवं अन्य विज्ञापनो से काम चलने लगा। काम चलने की चिंता मिटते ही फिर रचनात्मक काम की दृष्टि से सोचने का अवसर मिला। छात्रो को विभिन्न ट्रस्टो द्वारा छात्रवृत्तियाँ दिलाने का प्रयत्न करने लगा। मंडल के कार्यकर्ता विभिन्न स्थानो मे दौरा कर प्रचार करने लगे। इस वीच १६६१ की जनगणना आई तब जनगणना के कार्य मे ठीक सख्या आवे इस दृष्टि से मडल तथा 'जैनजगत' द्वारा काफी प्रचार किया गया। 'धार्मिक ट्रस्ट बिल' के विरोध मे सभी जैनी मिलकर अपनी बात कहे इसका मंडल ने प्रचार किया और संतोष की बात यह रही कि सबने मिलकर एक स्वर से बात प्रस्तुत की, जिसका अच्छा परिणाम आया। १६६१-६२ मे श्री मोहन लालजी चौधरी ने प्रचार के रूप मे बहुत अच्छा कार्य किया। सदस्यो तथा आजीवन सदस्यो की संख्या काफी बढाई। १६६१ मे पूना मे विनाश कारी बाढ आई उसमे सहायता करने की दृष्टि से चदा करके करीब २० हजार रुपयो की सहायता पहुँचाई। वर्धा मे व देवरुख मे मण्डल के छात्रालय चलाये गये। 'जैनजगत' को अधिक अच्छा बनाने का प्रयास

किया गया। नवनीत तथा दैनिक हिन्दुस्तान के भू० पू० सम्पादक श्री रतनलालजी जोशी की एक साल के लिए 'जैनजगत' को सम्पादक के रूप मे सेवाये प्राप्त हुई। १६६१ के अन्त में "सिरेब्रल थ्रूम्बोसिस" हो जाने से मैं ८-१० रोज बेहोश रहा और करीब सवा महीने तक मुझे अस्पताल मे रहना पडा। बाद मे दो महीना पूना स्वास्थ्य लाभ के लिए रहा। इस बीमारी के दौरान मुझे वम्बई निवासियो ने जो प्रेम दिया वह अद्‌भुत था। ७-८ अप्रेल १६६२ मे मंडल का अधिवेशन जयपुर मे साहू श्रेयासप्रसादजी की अध्यक्षता मे हुआ। काम को अधिक वेग मिला। चीन का आक्रमण भारत पर हुआ तब मंडल ने जैनियो को सरकार का साथ देने की अपील की और लोगो ने बडे उत्साह से मंडल के आह्वान पर नेशनल डिफेंस फंड को जुटाने मे मदद की तथा उस समय भाव न वढे ऐसा प्रयत्न किया गया। इन दिनो मंडल ने महावीर जयंती की तरह 'विश्व मैत्री दिवस' मनाने का कार्यक्रम शुरू किया। जो पर्युषण तथा दशलक्षण पर्व के बाद आनेवाले प्रथम रविवार को मनाया जाता है और सभी सम्प्रदाय के लोग मिलकर क्षमापना करते है। इसी प्रकार जैन विद्यार्थियो को शिक्षा प्राप्ति मे सुविधा मिले इसलिए मंडल की ओर से विशेष प्रयास किया जाने लगा।

सागली मे भारत जैन महामंडल का ३८ वा अधिवेशन १६६४ मे स्व० सोहनलालजी दूगड की अध्यक्षता मे हुआ। इस अधिवेशन मे कांग्रेस अधिवेशन की याद दिलावे ऐसी उपस्थिति थी। करीब ३०-३५ हजार लोगो की उपस्थिति थी। अध्यक्ष का जुलूस भी बहुत ठाट से निकाला गया। सोहनलालजी दूगड ने स्थानीय सस्थाओ को दिल खोल-कर दान दिया। जहाँ गये मुक्त हस्त से देते ही गये। उन्होने मंडल के अध्यक्ष बनने के बाद जो यात्राये की, उसमे करीब सवा लाख का दान दिया। वारिश की तरह धन बरसाते ही रहे। इस अधिवेशन की दूसरी विशेषता यह रही कि इस अधिवेशन मे भगवान महावीर का २५०० वा निर्वाण महोत्सव मनाने के विषय मे पहली बार प्रस्ताव पारित किया गया।

मंडल के काम मे धीरे-धीरे प्रगति होती ही गई और ३६ वां अधिवेशन वर्धा मे समाज के प्रबुद्ध विद्वान तथा उद्योगपति सेठ श्री अमृतलाल कालीदास दोगी की अध्यक्षता मे हुआ। जिन्होने मंडल की उत्कृष्ट मनोभाव से सेवा की। चिरंजीलालजी वडजाते चाहते थे कि मंडल के अधिवेशन के निमित्त जैन समाज के नेता उनके यहाँ आवें इसलिये उनके आग्रह से यह अधिवेशन वर्धा मे हुआ। जिसमे समाज के चारो सम्प्रदाय के प्रमुख लोग वहुत वडी सख्या मे उपस्थित रहे और चिमनभाई शाह मंडल के काम मे विशेप दिलचस्पी लेने लगे। उधर अमृतलाल भाई के कारण श्वेताम्वर समाज और खासकर कस्तूर भाई भी मंडल के कामो मे दिलचस्पी लेने लगे और उनका इस निमित्त वढा हुआ सम्पर्क आत्मीयता मे परिणत हो गया। उन्होने मेरी प्रार्थना पर भगवान महावीर की २५ वी निर्वाण शताब्दि समिति मे अध्यक्ष वनने की स्वीकृती दी और जैन समाज के हित के कामो मे उनका सहयोग तथा मार्गदर्शन प्राप्त होने लगा।

श्री साहूजी, लालचन्द भाई का तो मंडल को समर्थन था ही पर चिमनभाई व अमृतलालभाई के सहयोग से मंडल तथा जैन समाज के कामो मे विशेप प्रगति होने लगी। सेठ कस्तुरभाई व अमृतलालभाई का संपर्क वढाने मे श्री फूलचन्द शामजी का वहुत बड़ा हिस्सा रहा। भले ही आज वे उम्र के कारण सभी कामो से निवृत्त हो गये है इसलिए मडल तथा मंडल से सम्वंन्धित संस्थाओ से भी निवृत्त हुए है परन्तु उनकी मंडल की सेवाओ को तथा मुझे कस्तुरभाई व अमृतलालभाई के निकट लाने के काम को भुलाया नही जा सकता। आज मुझसे जो कुछ भी थोड़ी बहुत सेवा जैन समाज की हो रही है, उसमे फूलचन्दभाई का वहुत वडा हिस्सा है। वे मेरे अभिन्न मित्र वन गये, उनकी मैत्री भुलाई नही जा सकती।

१९६७ मे वम्वई मे सभी सम्प्रदायो की ओर से मनाई जाने वाली महावीर जयन्ती पर जयप्रकाशजी को आमन्त्रित करने के लिए कहा

गया और मेरे निमंत्रण पर उन्होने उपस्थित रहने की स्वीकृति दी। उन दिनो विहार मे सूखा चल रहा था। जयप्रकाशजी ने अपने भापण मे जैनियो से अपील की कि भगवान महावीर की जन्म और कर्मभूमि मे लोग विपदाग्रस्त है अत उनके अनुयायियो का कर्त्तव्य हो जाता है कि भगवान महावीर की करुणा को मूर्तरूप देने के लिए वहा उनकी सहायता के लिए प्रयत्न करे। उस अपील का जैन नेताओ पर प्रभाव पड़ा और वहा अच्छी खासी रकम के आश्वासन मिले। जैन नेताओ की विहार मे अधिक उपयोगी सेवा करने की इच्छा ने भगवान महावीर कल्याण केन्द्र की नीव डाली जिसने बिहार ही नही, पर राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ, महाराष्ट्र, उडीसा और वगाल मे पीडितो की सेवा के लिए लाखो रुपये खर्च कर काफी अच्छा काम किया।

महावीर कल्याण केन्द्र का ट्रस्ट बनाकर उसे रजिस्टर्ड किया गया। उसके अध्यक्ष है श्री श्रेयासप्रसादजी जैन तथा उपाध्यक्ष प्रताप भाई भोगीलाल व मंत्री चिमनलाल चकुभाई शाह और मैं।

इस वीच भगवान महावीर की २५ वी निर्वाण शताब्दि के लिए समिति वनाने के लिए मडल को ओर से मीटिंग वुलाई गई और सेठ कस्तुरभाई लालभाई की अध्यक्षता मे भगवान महावीर २५०० वा निर्वाण महोत्सव मनाने के काम के लिए समिति २६ जनवरी १९६८ को वनी। उसके श्री चिमनभाई और मैं मत्री है।

निर्वाण समिति को लेकर कस्तुरभाई, श्रेयासप्रसादजी, चिमनभाई, लालचन्दभाई, कुसुमवहन आदि से कार्य की दृष्टि से अधिक सम्पर्क आया। उनकी विशेषताओ से परिचय हुआ। सेठ कस्तुरभाई की यह विशेषता रही है कि वहुत कम समय मे वे अधिक काम कर लेते है। उन्हे कोई वात समझने मे देर नही लगती। उनमे अचूक निर्णय करने की शक्ति है। वे चर्चा मे या अधिक बात करने मे विश्वास नही करते। उनका काम मे अधिक विश्वास है। कोई भी काम निर्दोष और अधिक

अच्छा हो ऐसा वे चाहते है और मानते है कि कार्यालय कार्यक्षम हो तभी काम ठीक से हो सकता है, समय की वे बहुत पावन्दी रखते है। यह स्वाभाविक है कि उन जैसे कार्य व्यस्त व्यक्ति के लिए समय का अत्यधिक मूल्य रहे। उन्होने व्यवसाय मे अद्भुत उपलब्धि प्राप्त की है। जिस काम को भी उन्होने हाथ मे लिया वह बहुत ही उत्कृष्ट किया या करते है। ऐसे व्यक्ति के साथ काम करने मे वहुत ही सीखने को मिला।

श्रेयासप्रसादजी अत्यन्त मधुर स्वभाव के संस्कारी सज्जन है। उन्हे समाजहित की तीव्र अभिलापा है। दूसरो की भावना का आदर कर अपनी वात आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करते है। कभी किसी को नाराज नही करते।

लालचन्दभाई स्पष्ट वक्ता, वचन देने पर उसका ठीक से पालन करने वाले और समाज हित के लिए कार्य करने की इच्छा रखने वाले सहृदय सज्जन है। कार्य का दायित्व और सम्बन्धो को निभाने वाले वाहर से कडे किन्तु हृदय से मृदु सज्जन है।

कुसुमबहन अत्यन्त विवेकशील, समाज कल्याण की भावना रखने वाली और समाज हित के लिए तन-मन-धन से प्रयत्न करने वाली कर्मठ वहन है स्पष्ट और सही दिशा मे चिन्तन करती है। वह प्रसिद्धि से दूर रहने वाली शक्तिशाली वहन है। यदि उसकी शक्ति का ठीक उपयोग हो तो वह वहुत काम कर सकती है।

श्री चिमनभाई अत्यन्त कार्यकुशल, चिन्तक और निष्काम कर्म करने वाले सज्जन है। उनमे स्वयं कार्य करने की शक्ति तो है ही, साथ ही वे दूसरो से काम लेने मे भी कुशल है। वे प्रखरवक्ता है और चिन्तनशील लेखक भी है। उनमे अपनी वात समझाने की विलक्षण शक्ति है। स्थानकवासी समाज मे उनका मुकावला कर सके ऐसा व्यक्ति कदाचित और नही। यदि उनका स्वास्थ्य अच्छा होता तो उनसे वहुत अधिक काम हो पाता फिर भी वे इतना काम करते है कि सामान्य व्यक्ति कल्पना भी नही कर सकता।

मंडल, कल्याण केन्द्र तथा निर्वाण महोत्सव के कामो को ठीक से चलाने को दफ्तर के लिए उपयुक्त स्थान की जरूरत थी। साहू श्री श्रेयासप्रसादजी ने दफ्तर के लिए पाच साल के लिए बिना किराये लिए जगह दी। जिससे स्वतंत्र आफिस वनाकर कार्यकर्ताओ को व्यवस्थित काम करने मे सुविधा हुई।

मडल तथा जैन समाज के मिलकर चलनेवाले कामो मे श्री चिमनभाई का सक्रिय सहयोग जोधपुर अधिवेशन के वाद प्राप्त हुआ। श्री चिमनभाई मंडल के चालीसवे अधिवेशन जोधपुर के अध्यक्ष चुने गये। इस अधिवेशन मे राजस्थान के दुर्भिक्ष की वात हुई तो अधिवेशन मे एक लाख रुपया पीडितो की सहायता के लिए स्वीकृत किया गया और उसका उपयोग अत्यन्त पीडित क्षेत्र मे किया गया। इस कार्य का प्रारम्भ तो श्री रतिभाई ने किया था पर आगे जाकर सभाला श्री छोटूभाई कामदार ने। उन्होने जेसलमेर जैसे सवसे अत्यधिक अकाल प्रभावित क्षेत्र में कार्य शुरु किया। वहा डाक्टरी मदद, औपधि तथा पौष्टिक खुराक अकालपीड़ित वच्चो को वाटे। सर्दी मे कपडे और खुले मे रहने वालो के लिए कुछ आच्छादन आदि का काम छोटूभाई ने विल्कुल प्रतिकूल परिस्थितियो मे किया। मैं भी दो बार वहां गया था और अकालग्रस्तो की जो स्थिति देखी वह सचमुच भयानक थी। श्री छोटूभाई को इस तरह के राहत कामो का अनुभव भी था और हिसाव मे वहुत व्यवस्थित भी हैं। सेवावृत्ति वाले व्यावहारिक लोग ही उत्तम सेवा कार्य कर सकते है। उनके साथ जो इस निमित्त सम्पर्क आया तो वे मेरे अभिन्न मित्र और साथी वन गये। फिर तो हमने गुजरात के भडोच जिले मे बाढ के समय साथ मे काम किया। पीडितो की सेवा मे आने वाले आनन्द का जो अनुभव हुआ वह अविस्मरणीय है। मडल के कार्य मे श्री रमणलालजी शाह का योगदान भूला नही जा सकता। ये मूक कार्यकर्ता है और मडल को वर्षों तक मत्री के रूप मे सेवाये दी है। इसी प्रकार श्री धीरजलाल धनजीभाई शाह भी मंडल के कार्यकर्ता

रहे है और जयन्तिलाल परीख जो वर्षो से मंडल के कोषाध्यक्ष के रूप मे साथ देते रहे और हिसाव किताब के मामले मे उन्होने मुझे निश्चित रखा ।

चिमनभाई मंडल के अध्यक्ष वने तो उन्होने मंडल के चालू खर्च के लिए कठिनाई न पडे इस दृष्टि से एक सास्कृतिक कार्यक्रम रखा जिसमे करीव एक लाख रुपया एकत्र हुआ । चिमनभाई कुशल नेता है, उनका चिन्तन स्पष्ट है, उनमे दूसरो से काम लेने की कला है । उनके वहुत अच्छे सम्पर्क है जिससे वे सेवा कार्यों के लिए पैसा इकट्ठा कर सकते है । उनका नेतृत्व मिलने से मंडल ने आशातीत उन्नति की । उनका आग्रह रहा कि मुझे मंत्री वनना चाहिए और मै उनकी वात को नही टाल सका ।

मंडल के कार्य मे स्थैर्य आया । आर्थिक स्थिति कुछ सुदृढ वनी, दफ्तर के लिए उचित स्थान प्राप्त हो गया । सुयोग्य कार्यकर्ताओ को रखकर उनसे काम लेने व उनको निभाने जैसी स्थिति प्राप्त होते ही श्री चन्दनमल 'चाद' तथा भूपतभाई कामदार की स्थायी रूप से सेवा लेने का निश्चय कर उनकी शक्ति का उपयोग लिया जाने लगा । दफ्तर का काम व्यवस्थित हुआ, आये हुए पत्रो के उत्तर तत्परता से जाने लगे । मंडल की शाखाओ के काम मे वृद्धि हुई जिसमे श्री रिखवराजजी कर्णावट का अच्छा सहयोग मिला ।

जोधपुर अधिवेशन के समय ही व्यावर वालो ने मडल का अधिवेशन व्यावर मे करने का आमत्रण दिया था । उनका उत्साह अत्यधिक था । प्रारम्भ मे मडल के नेताओ का विचार था कि अधिवेशन दक्षिण मे हो, किन्तु व्यावर के युवको के उत्साह के आगे झुकना पडा और मंडल का ४१ वा अधिवेशन व्यावर मे वम्वई के उद्योगपति श्री शादीलालजी जैन की अध्यक्षता मे हुआ । जिसका उद्घाटन नव भारत टाईम्स, दिल्ली के प्रधान सम्पादक श्री अक्षयकुमार जैन ने किया । श्री शादीलालजी जैन मे युवकोचित उत्साह एव वृद्धो के अनुभवो का

संगम है। वे अत्यन्त ही सरल, उत्साही एवं लोकप्रिय व्यक्ति है। उनके सम्पर्क का दायरा काफी विशाल है और वे बम्वई के पिछले वर्ष शेरिफ भी रह चुके है। उनकी अध्यक्षता मे मंडल का कार्य अच्छी प्रगति कर रहा है। इस वार एक नया उपक्रम शुरु किया गया और वह यह कि मंडल के युवको का अधिवेशन भी साथ साथ हो और उसके लिए अध्यक्ष चुने गये सिलिगुड़ी के श्री प्रतापसिहजी वैद। श्री प्रतापजी अत्यन्त लगनशील और कर्मठ कार्यकर्ता है। मेरा उनसे परिचय, जव मैं कलकत्ता मे मंडल के लिए चन्दा इकट्ठा करने सन् १९५५ मे गया था, तव हुआ। तव से यह परिचय बढता ही गया और आज वे मेरे सक्रिय साथियो मे अगुआ है। मंडल का सदस्यता अभियान सफल बनाने मे उनका हिस्सा सबसे अधिक है। युवक सम्मेलन का उद्घाटन किया श्री संचालालजी वाफना ने, जो महाराष्ट्र के होनहार सज्जनो मे से एक है। उनका राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र मे वहुत वडा स्थान है और वे ऐसे व्यक्ति है जो तन-मन-धन से मंडल तथा समाज के कामो मे योगदान देते है।

ब्यावर अधिवेशन मे यह कोशिश हुई कि मंडल के कार्य मे युवक विशेष दिलचस्पी ले और केवल वातो मे ही नही, वरन् रचनात्मक कार्यों मे योगदान दे। फलस्वरूप मंडल के कार्य मे आशातीत सफलता मिली है। अव यह आशा निर्माण हो गई है कि मंडल जैन समाज की प्रतिनिधि संस्था वनकर अपना दायित्व निभावे।

मंडल ने सदस्यता अभियान शुरु किया, उसे सफल बनाने का श्रेय किसी को है तो वे है सब साथी कार्यकर्ता। आज मंडल के कार्यकर्ता सभी क्षेत्रो व सभी सम्प्रदायो का प्रतिनिधित्व करते है और उम्मीद हो गई है कि यह नई पीढी मंडल को जैनियो की प्रतिनिधि सस्था वनाकर उसके द्वारा जैनियो की ही नही, बल्कि राष्ट्र व मानव जाति की अधिकाधिक सेवा करा सकेगी।

मंडल का कार्य सुव्यस्थित बनाने मे सहयोग देनेवाले मेरे साथी

कार्यकर्ता का उल्लेख करना आवश्यक है। वे है श्री चन्दनमल 'चाद', जो आज मंडल, महावीर कल्याण केन्द्र व भगवान महावीर २५०० वी निर्वाण महोत्सव समिति तीनो के व्यवस्थापक है। मेरे साथ चार वर्षों से काम कर रहे है। उन्होने अपनी कार्य कुशलता व कार्यदक्षता से केवल दफ्तर ही नही, परन्तु संगठन का कार्य भी बहुत अच्छी तरह से संभाला है। 'जैनजगत' पत्र के प्रबन्ध सम्पादक बनकर उन्होने मेरे उस वोझ को भी बहुत बडी मात्रा मे कम किया है। उनके तथा मेरे दफ्तर के साथियो के सहयोग से ही मैं इस उम्र मे तथा स्वास्थ्य बहुत अच्छा न रहते हुए भी कुछ कर पाया हूं। इसका अधिकांश श्रेय मेरे साथियो को ही है। दफ्तर के ही संस्था सम्बन्धी हिसाबो को व्यवस्थित रखने मे भूपतभाई कामदार ने बहुत मदद की। मैं संस्था के व्यवहार मे हिसाव के मामले मे वहुत साफ रहता हूं। अनुभव ने मुझे यह सीख दी कि हिसाव साफ रखना और ओडिटर द्वारा जाच कराकर संस्था के पदाधिकारियो तथा जनता के समक्ष ठीक से उपस्थित करना जरूरी है। टंक लेखक श्री कुन्दनजी व अक्षयकुमार राका की मुझे मेरे काम मे वहुत सहायता मिलती है। इन सव को याद किये बिना नही रह सकता क्योकि ये ही मेरे हाथ पैर है जिनके बल पर मैं काम कर पाता हूँ।

□□

२७

अणुव्रत आन्दोलन का कार्य

यद्यपि आचार्य श्री तुलसी से मेरी सदा आत्मीयता रही और उनका मुझ पर स्नेह भी रहा । उनके द्वारा चलाये गये अणुव्रत आन्दोलन के प्रति मेरी सहानुभूति थी, किन्तु उनके सभा सम्मेलनो मे उपस्थित रहने का मैंने प्रयत्न नही किया, वल्कि वहां जाने से कतराता रहा । सन् १९६७ मे उनका चातुर्मास अहमदावाद मे था । मै चातुर्मास काल मे भी १-२ वार गया था । श्री गणेशमलजी दुगड के प्रेम एवं बम्वई मे चातुर्मास कर रहे मुनि श्री राकेशकुमारजी की प्रेरणा से १४-१५ अक्तूबर को होने वाले अणुव्रत अधिवेशन मे उपस्थित रहा । अणुव्रत और सर्वोदय मे विचारो की निकटता देखकर लगा कि यदि ये दोनो आन्दोलन मिलके काम करते है तो राष्ट्रीय दृष्टि से हितकारक हो सकता है । यही विचार भाई गणेशमलजी दूगड के भी मन मे चल रहे थे क्योकि पूज्य रविशकर महाराज के निकट सम्पर्क के कारण इन पर सर्वोदय बिचार का प्रभाव वहुत अधिक था । गुजरात अणुव्रत समिति के महाराज अध्यक्ष थे और गणेशमलजी उपाध्यक्ष । यदि महाराज अ० भा० अणुव्रत समिति के अध्यक्ष वने तो उसका प्रभाव सर्वोदयी कार्यकर्ताओ पर होगा और वे

अणुव्रत के कार्यकर्ताओ के साथ मिलकर अधिक प्रभावशाली ढंग से काम कर सकते है। अणुव्रत आन्दोलन मे साधु और साध्विया पदयात्रा मे प्रवल प्रचार करते रहते है। यदि सर्वोदयी कार्यकर्ता का साथ होता है तो और भी अच्छा है। महाराज के अध्यक्ष वनने मे कठिनाई यह थी कि इन दिनो महाराज विहार के अकाल कार्य मे अतिश्रम करने के कारण वीमार थे। गणेशमलजी और मै कुछ मित्रो के साथ अस्पताल मे उनसे इस विषय मे चर्चा करने गये। महाराज ने कहा कि "मेरा आचार्य तुलसी के प्रति अत्यन्त आदर है और मै उनके चलाये अणुव्रत आन्दोलन को राष्ट्र के लिए वडा हितकारी आन्दोलन मानता हूं किन्तु मैं अध्यक्ष पद का दायित्व नही ले सकता, क्योकि मेरी यह उम्र जिम्मेदारियो को त्यागने की है वढाने की नही। फिर मेरा स्वास्थ्य भी अच्छा नही है।" गणेशमलजी और मैंने आग्रह किया कि यदि आप अध्यक्ष वनते है तो सर्वोदय और अणुव्रत निकट आयेगे। राष्ट्र की शुभ शक्तिया मिलकर काम करेगी और वह कार्य राष्ट्र के लिए ही नही, मानवता के लिए लाभदायी हो सकता है। रही दैनिक कार्य की वात, वह आपके मार्गदर्शन मे हम लोग करेगे। वहा जाने के पहले यह वात हो गई थी कि उपाध्यक्ष के रूप मे श्री गणेशमलजी काम करेगे और मैं कार्यकारिणी के सदस्य के रूप मे उन्हे सहयोग दूंगा। रविशकर महाराज अध्यक्ष वने, इस कल्पना से सभी को सन्तोष था और सम्मेलन से इस प्रस्ताव का स्वागत कर उन्हे अध्यक्ष चुना। जव कार्यकारिणी के चुनाव और पदाधिकारियो की वात आई तो गणेशमलजी ने उपाध्यक्ष पद पर रहने और इस कार्य मे अधिक समय देने मे अपनी पारिवारिक कठिनाईया वतलाई। उनसे मेरे सम्वन्ध अत्यन्त निकट के तथा पारिवारिक से वन गए थे। इसलिए एक साल के लिए उपाध्यक्ष पद का दायित्व मुझे सम्भालने का आग्रह किया। वैसे मैं वह दायित्व लेने मे अनुत्सुक था परन्तु गणेशमलजी की कठिनाई मै समझ सकता था। मेरे समक्ष धर्म संकट-सा खड़ा हो गया। पर अन्त मे गणेशमलजी के प्रेम ने मुझे

विवश कर दिया। मैंने इस काम को उनके प्रतिनिधि के रूप मे करने की स्वीकृति दी और अणुव्रत समिति के उपाध्यक्ष का दायित्व लिया। समिति का स्वरूप व्यापक वने और सक्रिय कार्यकर्ता उसमे रहे इस दृष्टि से भी प्रयत्न हुआ। अणुव्रत समिति की कार्यकारिणी की मिटिंग हुई उसमे पता चला कि समिति की आर्थिक स्थिति सन्तोपजनक नही है। वह अणुवत न्यास से कर्ज लेकर काम चला रही है। उधर कार्य-कर्ताओ मे यह आक्रोश पाया कि समिति को धनवानो के प्रभाव से मुक्त रखना चाहिये और समिति जनाधारित हो। उसका काम स्वाभिमान पूर्वक चले। रविशकर महाराज की शक्ति इन व्यावहारिक कामो मे लगाना उचित न समझ कोई रास्ता निकालना आवश्यक हो गया। समिति का वजट उन दिनो २५ हजार वार्षिक था। जिसमे दस हजार रुपये अणुव्रत पत्र मे घाटा था। मैं अणुव्रत समिति का हिसाव देखकर विचार मे पड गया। मेरी व्यावहारिक बुद्धि इस घाटे की दुकानदारी को स्वावलम्वी वनाने मे लगाई। मैं दिल्ली गया और वहां अणुवत के प्रवन्ध सम्पादक हर्पजी तथा लादूलालजी से चर्चा की। सर्व प्रथम तो खर्च कम करना आवश्यक मालूम हुआ। आमदनी के दो जरिए थे, लोगो से दान लेना और पत्र के ग्राहक वनाना। वैसे भी लोगो पर दवाव डालकर अनिच्छा पूर्वक दान लेना मेरी वृत्ति के अनुकूल नही था और अणुव्रत समिति को स्वेच्छा से कोई दान दे ऐसी स्थिति नही थी। अणु-व्योति की कार्यकर्ताओ ने चर्चा तो व्याख्यानो तथा कागजो पर बहुत अधिक की थी, किंतु उसके लिए प्रयत्न करने और जनता से पैसा इकट्ठा करने के लिए जो परिश्रम करना तथा समय लगाना होता है उस के लिए कोई तैयार नही था। मैं यह भी नही चाहता था कि अर्थ के अभाव मे चलते हुए कामो मे कमी आवे। वैसे उस समय अणुव्रत समिति के कामो मे मुख्य कार्य तो 'अणुव्रत' पत्र का प्रकाशन था। मैं चाहता था कि उसका प्रकाशन नियमित होता रहे और कार्यकर्ताओ को उसमे कठिनाई न हो। उनका वेतन समय पर मिले और उन्हे चालू खर्च मे

कठिनाई न उठानी पड़े । बड़े-बडे आश्वासन देकर चंदा उगाहकर निराश करने की अपेक्षा ग्राहक संख्या बढना ही मैंने श्रेयस्कर माना और अणुव्रत पत्र के ग्राहक बढाने के लिए अभियान शुरू किया । चालू खर्च मे "अणुव्योति कोप" के कारण समाज पर बहुत बोझ न पडे, ऐसा सोचकर किसी से भी १०१ रुपये से अधिक चंदा न लेने का निश्चय किया ।

रविशंकर महाराज ने देश की स्थिति ध्यान मे रखकर 'अपव्यय से बचो' अभियान का आव्हान किया क्योकि इन दिनो देश की खाद्य स्थिति अत्यन्त विपम थी । लाखो टन अनाज विदेश से मंगाना पडता था । यह अभियान त्रिसूत्री था । (१) मै मादक व नशीले पदार्थों का सेवन नही करूंगा (२) भोजन मे जूठन नही छोडूंगा (३) जन्म, विवाह, मृत्यु, त्योहारो आदि के अवसर पर आडम्बर व अपव्यय नहीं करूंगा । ऐसी स्थिति मे स्वाभाविक ही था कि अणुव्रत समिति के संचालन मे मितव्ययता की जाय और हम साथियो ने इस ओर ध्यान दिया । संतोप की बात तो यह रही कि मेरे सहयोगी पदाधिकारियो तथा कार्यकर्ताओ ने उसमे पूरा सहयोग दिया । उन दिनो अणुव्रत पत्र तथा समिति का कार्य प्रमुख रूप से हर्पजी देख रहे थे । उन्होने पूरा पूरा साथ देकर मुझे उस ओर से निश्चिंत किया । आचार्य प्रवर तथा समिति का सुझाव रहा कि 'अणुव्रत' के सम्पादक का दायित्व मैं लूं । १५ दिसंबर १९६७ का अणुव्रत का अक मेरे सम्पादन मे निकला जिसमे मैंने अपनी मन स्थिति इस प्रकार प्रकट की थी—

"भारतीय संस्कृति मे ६० वर्ष की उम्र के बाद निवृत्ति का समय समझा जाता है । पाच साल पहले जब साठ साल पूरे हुए तो जिन सेवा कार्यों से जिम्मेवारी छोडना सम्भव था, छोडने लग गया था और नये कामो का दायित्व न लेने का प्रयत्न रहा । निवृत्ति लेते समय यह ध्यान अवश्य रखा कि काम छोडने से उस कार्य को हानि न पहुँचे । वैसे ही नये दायित्वो के विपय मे यह वृत्ति रही कि किसी भी काम को

स्वय होकर न लेता। यदि आदरणीय व्यक्ति या समाज काम का दायित्व डाले तो विना किसी फल की आशा के, मोह या ममत्व न रखते हुए सहजभाव से करते रहना। एक तरह से प्रवृत्ति मे निवृत्ति का प्रयोग करते आया हू। मन पर तनाव या काम का वोझ न रखकर वडो का आदेश और साथियो के सहयोग से काम हो रहा है और जो काम हो रहा है उसका श्रेय भी उन्ही का है। मैं उनका पुर्जा वनकर काम करता हूँ। जिससे प्रवृत्ति मे भी निवृत्ति का लाभ मिलता है। मन पर वोझ या तनाव नही रहता। व्यस्त जीवन मे भी शाति मिलती है। जीवन मे व्यस्तता के वावजूद अशांति नही होती। इसमे एक दृष्टि यह भी रही कि जो शरीर जल्दी जाने वाला है उसका जितना अधिक उपयोग हो सकता हो कर लिया जाय। यही कारण है कि जव 'अणुव्रत' पत्र के सम्पादन का दायित्व मुझ पर डाला तो मै ना नही कह सका।"

मैंने अणुव्रत का काम आचार्य तुलसीजी का कार्य ही माना, जिसे करने का दायित्व रविशकर महाराज का है, मैं तो उनके प्रतिनिधि के रूप मे कार्य कर रहा हूँ। मैं सदा अणुव्रत का काम करते समय इस वात का ध्यान रखता हूं कि मैं कोई ऐसा काम न करू जिससे इन दो संतो की कीर्ति मे कमी आवे। यो भी मैंने दूसरो के अधीन रहकर काम करने मे सुरक्षा मानी है। जव तक जमनालालजी व बापूजी जीवित थे, मै उनके अधीन रहकर काम करता रहा। दूसरो के नेतृत्व मे काम करने मे मुझे वहुत लाभ हुआ। मुझे सिर्फ काम अच्छा हो इसी की चिन्ता करनी पडी। मैं अन्य चिन्ताओ से मुक्त रहा। मैंने कभी अपने आपको नेता नही माना सिपाही के रूप मे ही किसी नेता के नेतृत्व मे काम करता रहा और आज भी वही स्थिति है। मैंने सदा अपनी मर्यादा को समझा है इसलिए कभी मुझ से नेता वनने की भूल नही हो पाई। जव मुझे किसी संस्था का नेतृत्व लेना भी पडा तो मैं सदा कार्यकारिणी के आदेशो का पालन करते आया। अपनी वात का

कभी आग्रह नही रखा। इस तरह अपने आपको सदा समर्पित करके काम करने मे जो लाभ हुआ वह वर्णनातीत है। अणुव्रत का काम मुझ से कितना बन पड़ा यह तो मैं कह नही सकता, किन्तु अणुव्रत का काम करते समय मुझे जो लाभ हुआ वह मैं भूल नही सकता। इस निमित्त से आचार्य तुलसीजी और उनके संत समुदाय को निकट से देखने व उनसे सीखने मिला। अणुव्रत समिति मे काम करते समय सर्वश्री मोहनलालजी कठौतिया, गणेशमलजी दूगड़, जेठाभाई जवेरी, प्रताप-सिहजी वैद, राणमलजी जीरावला आदि तेरापंथी नेताओ के सम्पर्क मे आया। कठौतियाजी से मेरे पुराने सम्बन्ध थे ही किन्तु अणुव्रत के कार्य मे उनकी सलाह मुझे बडी ही उपयोगी रही। उन्होंने अपने प्रबल पुरुपार्थ और व्यवहार कुशलता से व्यवसाय मे सफलता पाई। उनमे अत्यधिक आत्मविश्वास है और ऐसे पुरुपार्थी व्यक्ति मे जो अपने विचारो के प्रति आग्रह होता है वह आ जाय यह स्वाभाविक है। वे वडे कल्पना-शील व योजक है। यदि उनका स्वास्थ्य साथ देता तो उनसे समाज व राष्ट्र की अत्यधिक सेवा होती। फिर भी तेरापंथी शासन के लिए उनकी सेवाएं भुलाई नही जा सकती। जेठाभाई अत्यन्त धार्मिकवृत्ति के विवेकशील सज्जन है। उनमे शिक्षा के साथ-साथ उच्च संस्कार व कार्य-कुशलता भी है। ऐसे सुयोग्य व्यक्ति के साथ काम करने मे जो आनन्द मिला वह वर्णनातीत है। अणुव्रत का काम करते समय मानो हम एक ही बन गए थे। हम सब साथियो मे सदा एक ही विचार रहा, मतभेद हुआ हो ऐसा कोई प्रसंग याद नही आता। प्रतापसिहजी वैद का अत्यन्त कर्मठ और लगनशील कार्यकर्ता के रूप मे मिला हुआ सहयोग, अणुव्रत ग्राहक अभियान या अणुव्रत समिति को स्वावलम्बी बनाने मे बडा ही उपयोगी रहा। यो कहिए कि उनका सहयोग प्राप्त न होता तो उस सस्था को दान की दीनता से बचाने मे मैं सफल नही हो पाता। ऐसे कर्मठ कार्यकर्ता मे थोडा वाणी का संयम और आ जाय तो सोने मे सुगंध हो सकती है। उनमे जो विनय तथा दूसरो के साथ

अपनापन जोडने की कला है वह अद्भुत है। ऐसे लोगो से ही सामाजिक कार्य आगे बढ सकते है। उनका उत्साह और लगन किसी भी कार्य को सफल वना सकती है। वे भावावेश व कार्य के उत्साह मे अपने स्वास्थ्य तक का ध्यान नही रखते जिसे रखना आवश्यक है। राणमलजी आचार्य तुलसीजी के भक्त, सरल स्वभाव के कर्मठ कार्यकर्ता है। स्वयं देना और दूसरो से दिलवाने मे अत्यन्त कुशल व प्रभावशाली है। अणुव्रत को स्वावलंबी बनाने तथा अणुव्रत समिति की आर्थिक स्थिति सुधारने मे उनकी वहुत सहायता रही।

अणुव्रत समिति के कारण तेरापथ समाज के अनेक कार्यकर्ता, नेताओ तथा श्रावको के साथ सम्वन्ध आये। उन्होने जो प्रेम, आत्मीयता और मेरे प्रति विश्वास वताया उसे भुलाया नही जा सकता। आचार्य श्री ने तेरापथी समाज मे अनेक कार्यकर्ता तैयार किए। तेरापंथी समाज के अनेक श्रावको को विद्वान तथा प्रबुद्ध वनाया। उनमे धर्म, प्रेम, नैतिकता व सार्वजनिक सेवा की भावना बढाई। समयानुसार वरतने की उनमे प्रगतिशीलता आई। उनमे स्वागतप्रियता तथा दूसरो को अपने यहां बुलाकर उनके विचार सुनने की व्यापकता आई।

अणुव्रत का दायित्व आने पर मैं साल मे ४-५ वार आचार्य श्री की सेवा मे जाता और मार्गदर्शन प्राप्त करता। प्रचार [के लिए भी मेरा समय देने का विचार था। और मैं एक वार हरियाणा, पजाब और राजस्थान के दौरे पर गया भी। साथ मे मेरे पुराने मित्र व अणुव्रत समिति के कार्यकारिणी के सदस्य भूरेलालजी बया भी थे। आचार्य तुलसीजी के प्रति तेरापथी सत, साध्वियो, श्रावक-श्राविकाओ मे अनन्य भक्ति पाई, और अजैनो मे भी काफी आदर दिखाई दिया। हमारा हर स्थान पर स्वागत हुआ परन्तु दौरे मे जो व्यवस्थितपन चाहिये उसका अभाव कुछ खटका। समय का ठीक उपयोग करना हो तो कार्यक्रम व्यवस्थित वनाना चाहिये जिससे समय देने वालो को यह महसूस न हो कि मेरे समय का ठीक उपयोग नही हो पाया। अणुव्रत के लिए अधिक

समय देने की इच्छा रखते हुए भी मैं अधिक समय नही दे सका। फिर भी मद्रास अधिवेशन तक मैं कई वार दक्षिण मे भी गया और इतनी उपलब्धि तो मानी जा सकती है कि अणुव्रत पत्र जिसे चलाने मे अव तक हर साल हजारो का घाटा होता था, वह स्वावलम्बी बना। जिसके एक हजार ग्राहक थे वे तीन हजार से अधिक हो गये। इसमे प्रतापसिहजी वैद के सिवा धरमचन्दजी चौपडा श्री करणपुर, पृथ्वीराज जी डागा श्री डुंगरगढ, चादजी, राणमलजी जीरावला, चैनरूपजी दूगड, भीकमचन्दजी कोठारी 'भ्रमर' बाबूलाल आच्छा आदि का सहयोग प्राप्त हुआ था। अहमदाबाद से मद्रास अधिवेशन तक आचार्य श्री का प्रवास महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमलिनाड इन तीन प्रान्तो मे हुआ। इस लम्वी यात्रा मे आचार्य श्री तथा सन्तो ने अणुव्रत का जो प्रचार किया वह अणुव्रत के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो से लिखा जाने योग्य है। दक्षिण के लोगो की मनोवृत्ति अणुव्रत के बहुत अनुकूल पाई गई। उन दिनो तामिल प्रान्त मे हिंदी को लेकर सघर्ष चल रहा था। लेकिन आचार्य श्री को तामिलवालो ने वडे प्रेम से सुना और कहा कि "आपका स्थान तो दक्षिण मे है, जैन सस्कृति और साहित्य का दक्षिण मे जितना प्रभाव है शायद उत्तर मे न हो। कन्नड और प्राचीन साहित्य मे से जैन साहित्य को निकाल लिया जाय तो वह अत्यन्त दरिद्र वन जायगा।" ये शव्द स्व० अन्नादुराई जैसे तमिलप्रात के मुख्यमंत्री के थे।

मद्रास अधिवेशन के वाद आचार्य श्री का प्रवास दक्षिण मे केरल, तथा कर्नाटक मे हुआ और चातुर्मास वेगलौर मे। इस वर्ष अणुव्रत समिति की कार्यकारिणी मे नये साथी श्री नानालाल भट्ट आए जो सर्वोदय मे तो निष्ठा रखते ही थे लेकिन उनकी अणुव्रत तथा आचार्य तुलसीजी मे भी उतनी ही पाई गई। वे सात्विक दृष्टि के उदार हृदयी सज्जन है। अणुव्रत आन्दोलन मे दक्षिण के जैनेतरो मे उनका स्थान वहुत ऊँचा है।

अणुव्रत पत्र के ग्राहक वढ़ाने के साथ साथ उसे ऐसा वनाने का

प्रयत्न रहा कि जो आचार्य तुलसीजी के अणुव्रत सम्बन्धी विचारो का वाहक बने। प्रत्येक अंक मे अणुव्रत अनुशास्ता के विचार आते रहे ऐसी व्यवस्था की गई। अणुव्रत परीक्षाओ का कार्य राजस्थान के कार्यकर्ता श्री देवेन्द्रकुमारजी 'हिरण' तथा पन्नालालजी बाठिया ने बहुत ही उत्तम प्रकार से चलाया, जिसमे हजारो विद्यार्थी परीक्षाओ मे बैठने लगे। अणुव्रत डायरी का प्रकाशन भी दो साल से अणुव्रत समिति के द्वारा श्री भीकमचन्दजी 'भ्रमर' टाडगढवालो के सम्पादन मे होने लगा। अणुव्रत पत्र का अहिसा विशेपांक निकालकर पाठको को संग्रहणीय सामग्री दी गई और विज्ञापन के द्वारा उसमे जो खर्च लगा वह जाकर कुछ बचत ही हुई।

बेगलौर अधिवेशन मे सरकारी मन्त्रियो को अधिक महत्व न देकर सर्वोदय विचार वालो को अधिक महत्व देकर उन्हे बुलाया गया। जैन समाज के सुप्रसिद्ध नेता व चिंतक चिमनभाई भी बेगलौर अधिवेशन मे उपस्थित रहे।

१९७० का साल अणुव्रत समिति के अपने कार्यक्षेत्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा। इस वर्ष साधना विशेषाक निकाला गया। उसमे हमने १५००० रुपये के विज्ञापन करने का संकल्प किया था लेकिन प्राप्त हुए अठारह हजार से अधिक। इन तीन वर्षो मे अणुव्रत समिति की आर्थिक दृष्टि से ऐसी स्थिति बनी कि उसे अपनी प्रवृत्तिया बढाने मे किसी प्रकार की बाधा नही रही। परन्तु रायपुर मे 'अग्नि परीक्षा' को लेकर जो आचार्य तुलसीजी के खिलाफ आन्दोलन शुरु हुआ उसने हर साल की तरह अक्तूबर मे अणुव्रत अधिवेशन होने मे बाधा डाली। वैसे 'अग्निपरीक्षा' पुस्तक महासती सीता के प्रशस्ति मे लिखा गया काव्य है, जिसमे उनके सतीत्व की प्रशसा की गई है, पर पौराणिक कथा का शब्द-प्रामाण्य माननेवालो ने इस प्रशस्तिपरक काव्य मे सती सीता का अनादर समझा और उस काव्य के विरोध मे प्रबल आन्दोलन रायपुर चातुर्मास मे हुआ। परिणाम स्वरूप १९७० के चातुर्मास मे अणुव्रत

अधिवेशन नही हो पाया जो बीदासर में हुआ। जिसमे यह निर्णय हुआ कि अणुव्रत आन्दोलन की गति को तीव्र बनाने की दृष्टि से उसका नेतृत्व तरुणो को सौपा जाय। मैं इस अधिवेशन के पहले ही आचार्य श्री से निवेदन कर चुका था कि इस आन्दोलन की बागडोर युवको के हाथ मे सौपी जाय। वैसा हुआ और हम पुराने साथियो ने अणुव्रत समिति का नेतृत्व कर्मठ युवको के हाथ मे सौप कर निवृत्ति ली। अणुव्रत समिति का काम जिस स्थिति मे लिया था उससे अच्छी और संतोषजनक स्थिति मे ही छोड़ा। जहा समिति पर कर्ज था, वहा दस बारह हजार रुपये समिति छोडते समय बैंक मे थे। साथ ही अणुव्रत समिति की ऐसी साख बन गई थी कि उसे काम बढाने मे अर्थ की कमी न पडे। लोग स्वेच्छा से बढते हुये काम में सहायक बनें। यह सब जो कुछ हो पाया था उसमे साथियो का सहयोग ही मुख्य रहा। पचासों सक्रिय साथी काम मे दिलचस्पी लेने वाले समिति को मिल गए थे। मैं इस निमित्त से आये हुए सम्पर्क से सैकडो तेरापंथी भाइयो का प्रेम और विश्वास पा सका। मेरे अणुव्रत में काम करने के कारण जैन समाज मे कुछ गलतफहमी भी पैदा हुई। कुछ जैन बन्धु मानने लगे कि मेरा तेरापंथियो के प्रति पक्षपात है। इससे जैन समाज मे समन्वय बढ़ाने के काम मे कुछ बाधा भी आई, पर मुझे उसका पछतावा इसलिए नही है क्योकि जहां तक बन पडा मैंने किसी के प्रति कोई अन्याय नही किया। जो कुछ किया, वह समाज व राष्ट्र के हित की दृष्टि से ही किया। आचार्य तुलसी जी के प्रति मेरा झुकाव इसलिए है कि उनमे समाज, राष्ट्र और मानवता की सेवा करने की क्षमता है। उनकी विशेषता के प्रति मेरा आकर्षण है न कि तेरापंथ के प्रति। मैं मूर्तिपूजक श्वेताम्बर परम्परा मे जन्मा और उसके प्रति आज भी वही आस्था है। यदि मुझ मे किसी को कमजोरी मालूम दे तो वह यह हो सकती है कि मैं अपनी परम्परा के प्रति आस्था रखते हुए दूसरी परम्परा के प्रति भी आदर रखता हूँ। ☐☐

२८

श्री जैन उद्योग-गृह का कार्य

भले ही धार्मिक क्षेत्र मे मेरे विचार व्यापक है और अपने आपको मानव धर्म का उपासक मानकर सभी धर्मों के महान पुरुषो के उपदेशो के प्रति आदर रखता हूं, फिर भी मुझमे जैनधर्म के प्रति निष्ठा है। जैनधर्म की श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा मे मेरा जन्म हुआ, उस परम्परा मे चलने मे मुझे किसी तरह का संकोच नही है। न जैनी कहलाने मे मेरी व्यापकता मे वाधा ही पहुँचती है। मैं अपने सम्प्रदाय की विशेषताओ के प्रति अनुरक्त हूँ और मानता हूँ कि श्वेताम्बर परपरा ने जैन स्थापत्य कला के रूप मे भारतीय संस्कृति मे वहुत बडा योगदान दिया है। इसलिए जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक कहलाने मे अपने आपको साम्प्रदायिक नही मानता। मैं प्रारभ मे व्यापक राष्ट्रीय क्षेत्र मे काम करता रहा। वाद मे सामाजिक काम करने लगा तो वह भी पूरे जैन समाज के लिए। इसलिए मैं मूर्तिपूजक श्वेताम्वर सप्रदाय के कार्यो मे विशेष हिस्सा नही ले सका था, परन्तु वम्वई आने पर मेरे मित्र अभय राजजी बलदोटा जव श्वेताम्वर कान्फरेस के पालीताणा अधिवेशन मे अध्यक्ष वने तो मैं पालीताणा गया था और कान्फरेस की कार्यकारिणी

मे भी उन्होने मुझे लिया। उस समय श्वेताम्बर समाज में यह चर्चा हुई थी कि श्वेताम्बर न होते हुँये भी मुझे कार्यकारिणी में कैसे लिया गया। पर सच तो यह था कि मैंने स्वयं आगे होकर किसी भी सम्प्रदाय के कामो मे तो क्या, परंतु किसीभी सेवाकार्य मे हिस्सा भी नही लिया था। हा, जब किसी संस्था को मुझसे काम लेने की इच्छा हुई तो मैंने उसमें अपनी सेवाएँ दी। मेरा श्वेतावर समाज के नेताओ से संपर्क तो था, पर श्वेतावरकान्फरेस की कार्यकारिणी मे आने से उनके साथ अधिक सम्पर्क आया। जिनमे ववई के फूलचंद शामजी, कांतिलाल ईश्वरलाल, दीपचद एम. शाह, शान्तिलाल एम० शाह, अमृतलाल दोशी, महिपतराय जादवजी, रमणलाल सी० शाह आदि प्रमुख थे। उनके साथ मैत्री और कार्य का भी सम्पर्क था। स्व० आचार्य श्री विजयवल्लभसूरि, स्व० मुनि श्री विद्याविजयजी, न्यायविजयजी, आचार्य सुमुद्रविजयसूरिजी मुनिश्री पुण्यविजयजी तथा यशोविजयजी आदि संतो के साथ भी मेरा सम्पर्क और उनके प्रति आदरभाव था। आचार्य श्री वल्लभसूरिजी के समाज कल्याणकारी कामो के प्रति मेरा आकर्षण था और उनकी प्रेरणा से विद्या प्रसार तथा मध्यमवर्ग के कल्याण हेतु प्रारम्भ हुए कार्यो को मैं समाज हित की दृष्टि से उपयुक्त मानता था। खासकर जैन उद्योग गृह के काम के प्रति मेरा आकर्षण रहा और महिपतराय जादवजी तथा सेठ कातिलाल ईश्वरलाल के कारण मुझे उस संस्था मे जाने और देखने के अवसर भी आये। इसलिए जब कातिलाल ईश्वरलाल ने मुझे कार्यकारिणी मे लेने के लिए आमंत्रित किया तो १९६६ मे मैं कार्यकारिणी का सदस्य वना। उस समय संस्था का कार्य मुख्य रूप से स्वर्गीय रतिलाल उजमसी, कातिलाल ईश्वरलाल, महिपतराय जादवजी, हीरालाल जुथालाल आदि देखते थे। मैं तो कार्यकारिणी की मिटिंग या कोई खास कार्यक्रम हो तब जाता और जब कोई सलाह मांगी जाती तो देता। इससे अधिक दिलचस्पी मैंने नही ली। श्री रतिलालभाई व महिपतभाई उद्योग गृह के काम मे काफी समय भी देते थे और कार्य

भी संतोपजनक रूप से चल रहा था। पर जव संस्था का काम करते-करते स्वर्गीय रतिलालभाई उद्योग गृह मे ही बेहोश हुए और कुछ दिनो के वाद उनका अस्पताल मे निधन हुआ तो एक दिन सेठ कातिलाल ईश्वरलाल ने मुझे उद्योग गृह का अध्यक्ष वनने का आमंत्रण दिया। उद्योग गृह की कमेटी मे श्री चिमनलालभाई भी थे उन्होने भी मुझे अध्यक्ष वनने की सलाह दी और कमेटी के सभी सदस्यो ने मेरे अध्यक्ष होने के प्रस्ताव को समर्थन दिया। इस प्रकार चार साल पहले यानी १९६७ मे मै संस्था का अध्यक्ष वना। मेरे अध्यक्ष वनने पर भी प्रारम्भ में काम तो मुख्य रूप से मन्त्री ही देखते थे। दोनो मन्त्री श्री महिपतराय जादवजी व लतावेन शाह मिलकर संस्था का काम देखते थे। बैंक तथा आर्थिक व्यवहार भी दोनो ही चलाते थे। जव तक कोई खास बात कमेटी मे या कमेटी के सदस्यो द्वारा नही कही जाती, मैं उसमे नही पड़ता। जव मुझे संस्था की कार्यकारिणी के सदस्य रजनीकांत तथा हीराभाई ने संस्था मे जो माल रहता है उसका हिसाब ठोक रखने की वात कही तो मैंने संस्था मे आने व खर्च होने वाले माल के हिसाब रखने की ओर ध्यान दिया और स्टाक बुक रखी जाने लगी। संस्था का काम पहले से अधिक आर्थिकदृष्टि से ठीक होने लगा। संस्था मे मेरे आने के पहले घाटा होता था अब उसके एवज मे मुनाफा होने लगा। मैं उद्योग गृह मे जाने लगा। प्रारम्भ मे ग्राहको की शिकायतें तथा आई हुई दूसरी शिकायते सुनकर उसे दूर करने का प्रयास करता। संस्था के हिसाव आडिटर तो जाचता था पर इन्टरनल आडिट भी हो इस ओर भी ध्यान गया और मैंने इसकी चर्चा कातिभाई से तथा मीटिंग मे भी की। क्योकि आडिटर की रिपोर्ट साल पूरा होने पर मिलती, वह भी चार पाच महिने के वाद तब तक संस्था मे होने वाले हानिलाभ का पता नही चलता। मेरे वहुत कहने पर इंटरनल आडिट का काम हमारे आडिटर को सौपा गया। दूसरे की नियुक्ति नही हो सकी जव कि मैं चाहता था इंटरनल आडिट का काम दूसरे आडिटर को दिया जाय।

एक वार मीटिंग मे यह चर्चा आई कि माल की वहुत वडी खरीद नगद रुपये से हुई। कार्यसमिति ने उस खरीदी को मान्यता देकर भविष्य मे दो सौ रुपये से अधिक की खरीद का चेक से ही भुगतान किया जाय और चेक पर दोनो मन्त्रियो के साथ मेरे भी दस्तखत हो ऐसा निर्णय लिया। धीरे धीरे उद्योग गृह के कार्य मे प्रगति होने लगी। वहनो को अधिक काम और अधिक पारिश्रमिक मिलने लगा। माल विशुद्ध और अच्छा देने के प्रयत्न से विक्री बढी और सस्था का विकास होने लगा। संस्था मे अधिकतर काम वहने ही करती है। चीजे वनाने से लेकर विक्री तक का काम वे करती है। हिसाव रखने आदि के काम मे भी कुशलता प्राप्त कर रही है। मैनेजर के रूप मे श्री कला वहन वोरा काम करती थी। जिन्होने १६७२ मे निवृत्ति ली। उन्होने संस्था का काम वडी आत्मीयता पूर्वक किया। वाक्स डिपार्टमेण्ट का काम सुश्री सुशीला वहन वहुत कुशलता पूर्वक करती है। दुकानो की विक्री का काम वहनो के ही हाथ मे है। यहां काम करने आने वाली बहनो मे कई वहने समस्याएँ लेकर आती है पर काम करते-करते उनकी वढने वाली योग्यता से वे समस्याएँ भी सुलझ जाती है और सव से वडी बात तो यह है कि अपनी आर्थिक समस्याए वे अपने परिश्रम से सुलझाती है और स्वाभिमानपूर्वक जीने की उनमे शक्ति आती है। हमने ऐसा भी देखा कि जिनमे स्वाभिमान है ऐसी ६०-६५ साल की बूढी वहने भी काम कर रोजी कमाती है।

इस संस्था का प्रारम्भ आचार्य विजयवल्लभसूरजी महाराज की प्रेरणा से हुआ। उन्होने इस कार्य के लिए पाच लाख रुपये एकत्र करने का संकल्प किया था। वे रुपये श्वेताम्वर कान्फ्रेस के द्वारा एकत्र हुए और बड़े उत्साह से और उमग के साथ उद्योगगृह की स्थापना हुई। ढाई साल उद्योग गृह कान्फ्रेस की ओर से चला, परन्तु उसमे पचपन हजार से भी अधिक घाटा हुआ। कान्फ्रेस को इतना बड़ा घाटा उठा कर उद्योगगृह चलाने मे खतरा लगा तो श्राविका उत्कर्ष मण्डल को

यह काम सौपा गया जिन्होने इस काम को आगे चलाया। प्रारम्भ मे ७-८ साल तो यह काम घाटे मे ही चलता रहा पर बाद मे उसमे सफलता मिलने लगी और वह स्वावलम्वी बना। इस काम को स्वावलम्वी बनाने मे मुख्य रूप से रतिलाल उजमसी, महिपतराय जादवजी का परिश्रम था। उन्हे सलाह व मार्गदर्शन मिला कातिलाल ईश्वरलाल को। कातिलालभाई वडे दीर्घदृष्टि थे। उन्होने इस संस्था में सभी जैनियो का सहयोग लेने का निश्चय कर अन्य सम्प्रदाय मे से चिमनलाल चकुभाई शाह, कुसुमवहन मोतीचंद शाह, विनुभाई आदि का सहयोग लिया। फलस्वरूप संस्था के काम मे प्रगति हुई और आज वह करीब ४०० जरूरतमंद वहनो को काम देती है और ६०० को रोजी कमाने का प्रशिक्षण। साथ ही साथ विशुद्ध वस्तुओ की उपलब्धि की समस्या को भी वहुत अंशो मे सुलझाती है। संस्था मे पापड, खाखरे, नमकीन, मिठाइया, आचार, मसाले, वाक्स आदि करीव २०० वस्तुए वनती हैं। ६ लाख रुपये की बिक्री होती है। संस्था के तीन विक्रय केन्द्र है। सबसे वडी उपलब्धि तो यह है कि सार्वजनिक काम करने वाली संस्थाएँ घाटे मे नही चलती, वल्कि कमाई भी कर सकती है यह इस संस्था के काम से सिद्ध किया जा सकता है। इस उद्योगगृह के अनुभव ने मुझे यह सिखाया कि समाज मे इस तरह के कामो द्वारा जरूरत मंदो को बहुत वड़ी संख्या मे काम दिया जा सकता है। जगह-जगह ऐसे उद्योग गृह स्थापित कर हजारो नहीं, लाखों व्यक्तियों को उधोग दिया जा सकता है। पर इस पारमार्थिक कार्य में व्यवहारबुद्धि का उपयोग होना चाहिये। यदि कार्यकर्ता निस्वार्थ भाव और व्यावहारिकबुद्धि से काम करे तो उनके द्वारा समाज की वहुत बड़ी सेवा हो सकती है। आज विशुद्ध खाद्य वस्तुओ की समस्या समाज की वहुत वडी समस्या है। यदि कोई विशुद्ध और अच्छी किस्म का माल योग्य भाव मे देता है तो वह समाज की वहुत वडी सेवा करता है। साथ ही साथ इससे जरूरत मन्दो को रोजी मिलती है। उद्योग गृह की चीजे भारत ही नही

विदेशो मे भी जाती है। इस काम में निष्ठा से काम करने व समय लगानेवाले कार्यकर्ता चाहिये। मै प्रभु का यह उपकार मानता हूँ कि वह मेरे लिए ऐसे साथी जुटा देता है जिससे मेरे दायित्व मे चलनेवाले कामो मे उन साथियो के कारण सफलता मिलती है। जिसे लोग मेरी सफलता समझते है, वह वास्तव मे मेरे साथियो के श्रम का प्रतिफल है। उनके कारण ही मेरे द्वारा कुछ सेवा हो जाती है।

आजकल इस संस्था का प्रवन्ध मेरे पुरान साथी घुंडीराज वावाजी धामणस्कर व्यवस्थापक के रूप मे करते है। वहनो की संस्था मे काम करने की कठिनाई को मैं समझता हूं। उद्योगगृह मे मैं सदा तीन खतरे देखता हूँ। एक तो वहनो की संस्था होने से सैकडो वहनो से आनेवाला सम्वन्ध, फिर वहनो के स्वभाव मे सहजरूप से एक दूसरे के प्रति पाई जानेवाली ईर्ष्या और तीसरा लाखो का व्यवहार। इस प्रकार की काजल की कोठारी मे से बेदाग वचना आसान तो नही है और कोई वच भी जाय तो उन लोगो की ईर्ष्या से बचना तो और भी कठिन है, जिन्होने अपने कार्यकाल मे असफलता पाई हो, नुकसान उठाया हो। अव संस्था कमाई करे और उनके पास नगद दो लाख रुपया वेक मे जमा हो तो ईर्ष्या होना स्वाभाविक है। भारतीयो की और खासकर जैनियो की यह विशेपता रही है कि यदि कोई काम ठीक चलता हो तो उसमे बाधक वनकर उसे नुकसान पहुँचाना। उद्योग गृह मे ऐसा नही होगा यह कहना कठिन है। पर जिसका ध्येय अनासक्त सेवा हो, उसके लिए खेद का कोई कारण नही। संस्था की आर्थिक स्थिति सुधार कर दूसरो के हाथ मे सौप देने से बढकर संतोष की वात क्या हो सकती है ? काम को आगे अच्छा चलाना या न चलाना इसकी चिता हम क्यो करे उसे तो समाज के हाथो मे सौप देना चाहिये।

मेरा सदा यह प्रयत्न रहा है कि जो भी कोई सम्प्रदाय मेरा

उपयोग लेना चाहे उनके भले कामो में सहयोगी वनूँ । स्थानकवासी सम्प्रदाय ने चिंचवड संस्था का काम सौपा, मैंने किया । तेरापंथी समाज ने अणुव्रत के द्वारा मेरी सेवा ली, मैने दी । श्वेतावर समाज ने उद्योग गृह के द्वारा मेरी सेवा का उपयोग लेना ठीक समझा अतः दे रहा हूँ । जीवन के अन्तिम वर्षों मे जितना शुभ कार्य वन पडे वह करना ही है ।

□ □

२१
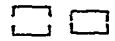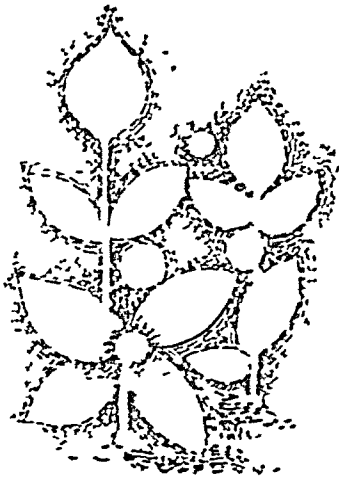
मेरा पारिवारिक जीवन

मेरे पिताजी १९३९ तक फतेपुर मे ही रहते थे । पर जव मेरा छोटा भाई ईश्वरलाल मेरे पास रहने लगा तो कुछ दिनो वाद वे भी मेरी दोनो छोटी वहने कस्तूरावाई व सूरज के साथ जलगाव रहने आगये थे। वैसे १९३७ से मैं सेठजी के कहने से कुछ समय वर्धा रहकर व्यवसाय के साथ-साथ सेवा कार्य करता था पर घर तो जलगाव ही था । पर अधिक सेवा कार्य मे समय तथा सेठजी के निकट रहूँ इसलिए मेरे व्यवसाय का क्षेत्र भी वर्धा ही वनाकर परिवार सहित वहा आने की योजना वनाई । सेठजी का अधिक सामीप्य प्राप्त हो, इसलिए मेरे लिए मकान भी वजाज वाडी मे राधाकृष्णजी वजाज का दिया गया, जिसके आधे हिस्से मे दादा धर्माधिकारी रहते थे । सेठजी मेरी ही नही, मेरे पूरे परिवार की सार सम्भाल करना चाहते थे और पिताजी उन दिनों कुछ वीमार रहने लगे थे उनकी भी सेवा करने की इच्छा उन्होने अपने पत्र मे प्रकट की थी ।

१९४० मे पिताजी को वर्धा ले जाने का कार्यक्रम वना और पिताजी को मेरा छोटा भाई जिस दिन वर्धा ले जानेवाला था उसी दिन स्वास्थ्य

अधिक विगडा और वे वर्धा न जाकर उसी दिन हमे छोडकर चले गये। उनका अवसान हो गया।

पिताजी के जीवन की कई विशेषताएँ थी जिसका उल्लेख मैंने पहले किया ही है। पर उनमे हठ भी था। जब मैं व्यवसाय मे अच्छी आमदनी करने लगा तो मैंने चाहा कि वे मेरे पास आकर रहे जिससे छोटे भाई की आगे शिक्षा चल सके। परन्तु उन्होने गांव मे उसकी पढाई पूरी कर उसे व्यापार मे लगा दिया था। वैसे वह होशियार था और उसे पढने का अवसर मिलता तो आगे बढने की उम्मीद थी इसलिए मैंने उसे समझाया और वह उन्हे छोड मेरे पास आ गया था। ऐसी स्थिति मे पिताजी विवश होकर जलगांव आ गये और मेरी पत्नी ने उनकी सार-संभार की तथा अन्तिम समय मे सेवा से आराम पहुँचाया। वे खाने पीने के प्रारम्भ से ही शौकीन रहे। धार्मिक व्रतो के कारण कई चीजे खानी छोड रखी थी। बहुत कम चीजे ही वे खाते पर अच्छी से अच्छी चीजे ही उन्हे पसन्द थी। इन दिनो मेरी आर्थिक स्थिति ठीक थी इसलिए उनके लिए खर्च करने मे कोई कठिनाई नही थी। अतः मैं अन्तिम समय मे, चाहे वह समय बहुत अल्प ही क्यो न रहा हो, उन्हे सन्तोष दे सका। अन्तिम समय मे अपनी गोद मे पोता देखने की उनकी इच्छा भी पूरी हो गई थी। मेरा स्व० पुत्र राजेन्द्र उस समय डेढ साल का था। जहां तक मेरा खयाल है उनके अन्तिम समय मे सभी दृष्टि से उन्हे सन्तोष हो ऐसी ही व्यवस्था थी। उन्हे यह भी विश्वास हो गया था कि मैं अपने छोटे भाई बहनो का दायित्व ठीक से निभा सकूँगा। और सन्तोष है कि भगवान ने वह काम पूरा करा लिया। मेरे भाई बहिनो की शिक्षा तथा विवाह मैंने किए और वे आज अपना जीवन सुखपूर्वक बिता रहे है।

मेरी बहिन कस्तूराबाई का विवाह इन्दौर के बोहरा परिवार मे किया। मेरे बहनोई पुखराजजी बडे समझदार, परिश्रमी और सेवा परायण है। सादा जीवन और उच्च विचार के है। कस्तूराबाई भी

धार्मिक वृत्ति की गृहकुशल महिला है । दोनो ने एक दूसरे के पूरक बनकर काफी विकास किया । अपनी सफल गृहस्थी के साथ-साथ सेवा-कार्यो मे भी योगदान देते रहते है । उनके ३ पुत्रिया और दो पुत्र है । बडी पुत्री का विवाह मेरे मित्र जयराजजी के छोटे भाई डा० सी० एम० जैन के साथ हुआ । दूसरी एम० एस-सी० मे पढ़ती है । एक लडका बी० एस-सी०, एल० एल-बी० हुआ दूसरा कामर्स मे पढता है ।

मेरी छोटी बहिन सूरज जिसकी शिक्षा वनस्थली मे हुई और विवाह उदयपुर मे प्रतापसिंहजी मुरडिया के साथ हुआ । मुरडिया परिवार के संस्कारी और शिक्षित होने से उसकी शिक्षा गृहस्थ जीवन मे विकसित हो सकी । मेरे छोटे बहनोई ने अपने परिश्रम तथा व्यवहार कुशलता से अच्छा विकास किया । सफल व्यवसायी के साथ-साथ अपने पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वो को बहुत अच्छी तरह से निभा रहे है । उनमे दूसरो की सेवा करने और उसके लिए त्याग करने की उदारता भी है । उदयपुर के सार्वजनिक जीवन मे ये दोनो ही उचित योगदान देते रहते है और संगीत तथा कला के क्षेत्र मे विशेप रुचि लेते है । मेरे लिए तो उन दोनो मे अत्यन्त आत्मीयता और स्नेह है । मैं तथा मेरी पत्नी बीच-बीच मे उदयपुर जाते रहते है और वे माता-पिता की तरह हमारी सेवा करते है । उनके एक पुत्री तथा एक पुत्र है । पुत्री का विवाह मेरे व्यव-साय के पुराने साथी और मित्र भीकमचन्दजी जैन के पुत्र चि० रमेश के साथ हुआ । जो अमेरिका मे बिजनेस मैनेजमेट की पढाई कर रहे है । मेरी भानजी मधु ने यहा एम०ए० की पढाई कर ली थी पर अमेरिका मे बिजनेस मैनेजमेट का अध्ययन करने वहां गई है । वह अत्यन्त बुद्धि-मान है और वह सितारवादन मे कुशल है । पुत्र धीरज कानपुर आइ० टी० ए० मे केमिकल की शिक्षा पा रहा है । वह भी अत्यन्त बुद्धिमान, विनयी तथा परिश्रमी है ।

वर्धा निवास मे १९४२ का भारत छोडो आन्दोलन शुरु हुआ और मुझे जेल ले जाया गया तो १९४३ के अन्त मे नागपुर जेल से छूटते ही

मेरे सामने मेरी सबसे बडी पुत्री विमला के विवाह का प्रश्न आया। मेरे मित्र सुगनचन्दजी लुणावत ने सासवड के श्री चन्दनमलजी मुथा के पुत्र श्री लालचन्दजी मुथा के विषय मे बात चला रखी थी। श्री चन्दन मलजी राष्ट्रीयवृत्ति के उदार सज्जन थे। उन्होने राष्ट्रीय आन्दोलन तथा काग्रेस के चुनाव मे आर्थिक दृष्टि से काफी सहयोग किया था। उनके द्वितीय पुत्र लालचन्दजी मुथा उन दिनो पूना माहेश्वरी छात्रालय मे रह कर पढ रहे थे। मैं सुगनचन्दजी के साथ उन्हे देखने गया। लालचन्दजी होनहार, परिश्रमी, सुशील एवं स्वस्थ थे। उनके व्यवस्थितपन और व्यावहारिकता से मैं आकर्षित हुआ। उन्होने चन्दनमलजी के जेल जाने पर पढाई के साथ-साथ व्यवसाय भी सम्भाला था। मैंने चन्दनमलजी व लालचन्दजी को चि० विमला को देखने के लिए वर्धा आने का आमन्त्रण दिया। वे आये चि० विमला को देखकर उन्हे सन्तोष हुआ, पर उनके समक्ष एक अहमदाबाद का आकर्षक प्रस्ताव था। वह लड़की ठीक तो थी ही, पर उसके पिता की आर्थिक स्थिति मुझसे अच्छी थी। उन्होने कुछ आर्थिक लाभ का प्रलोभन भी दिया था। फिर भी चन्दन मलजी ने मुझे सासवड आने को कहा। मैं वहा गया। चन्दनमलजी या लालचन्दजी पर लोभ का असर नही हुआ और सम्बन्ध निश्चित हुआ। इसमे चन्दनमलजी की उदारता ही प्रमुख थी। उन दिनो उन्हे काफी आर्थिक कठिनाई थी। वे भी जेल से छूटे ही थे। इसलिए यदि दहेज मे कुछ मिलता तो उसका उन्हे उपयोग ही था। पर धन के मोह से अधिक सभव है मेरे राष्ट्रीय विचार या जेल यात्रा से मेरे प्रति सहानुभूति हो। विवाह मे १५ व्यक्तियो से अधिक लोग बारात मे न लाने तथा सादगी से विवाह करने की मेरी बात भी उन्होने मान ली। विवाह बहुत सादगी के साथ खादी के वस्त्रो मे ही हुआ। इस विवाह की पत्रिका भाई कमलनयनजी के नाम से ही छपी और विवाह भी बजाज वाडी मे हुआ था। बारात बजाज वाडी के अतिथिगृह मे ठहरी थी। बारात मे सिर्फ १४ व्यक्ति आये थे। मुझे चन्दनमलजी जैसे समधी तथा लालचंद

जी जैसे दामाद मिलने का सदा सन्तोष रहा। जैसा कि अक्सर होता है, वर पक्षवाले वधु पक्ष से कुछ अपेक्षा रखते ही है किन्तु न तो चन्दन मलजी ने ही वैसी अपेक्षा रखी और न लालचन्दजी ने ही। उन्होने सीख मे सिवा नारियल के कुछ भी लिया हो मुझे याद नही आता। वे चाहते तो दहेज मे दस-बीस हजार रुपये सहज ही में प्राप्त कर सकते थे, पर लालचन्दजी ने किसी प्रकार की अपेक्षा न रखकर अपने पुरुषार्थ व परिश्रम से ही अपना विकास किया। विमला भी मुथा परिवार मे ठीक से अनुकूल बन गई और बडी मितव्ययता से उसने अर्थसंग्रह मे लालचन्दजी को सहयोग दिया। आज मुथाजी की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी कही जा सकती है। उनका मेरे साथ व्यवहार पुत्रवत ही रहा। प्रारम्भ मे मुझे उन्हे कुछ व्यवसाय की शिक्षा देनी पडी हो, पर मुझे यह कहने मे कोई संकोच नही है कि उन्होने मुझे पराजित ही किया वे। मुझसे अर्थसग्रह मे अधिक सफल रहे। शायद इसका यह कारण भी हो सकता कि मेरी व्यवसाय के विपय मे दृष्टि अर्थ-संग्रह की नही, पर स्वाभिमानपूर्वक जीवन चला कर सेवा मे व्यतीत कर सेवा मे अधिक समय लगाने की रही हो। फिर भी मैं एक बात मे तो लालचन्दजी व विमला का मितव्ययता मे अनुकरण कर सकता हूँ। मुझमे और मेरी पत्नी मे मितव्ययता न होने से काफी कमाई करने पर भी हम सग्रह नही कर पाये।

विमला के विवाह के बाद मेरे छोटे भाई ईश्वर के विवाह का प्रश्न आया। ईश्वर इन दिनो वाणिज्य महाविद्यालय मे पढाई कर रहा था। स्वस्थ और सुन्दर भी था। उसके सम्बन्ध के लिए प्रस्ताव आने लगे।

मै एकबार पूना गया तब जैन समाज के नेता श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया ने मुझे अहमदनगर आने का आमन्त्रण दिया। मैं वहा गया। उन्ही के साथ ठहरा। शाम को हम भोजन करने लगे तब परोसने उनकी कनिष्ठ कन्या चि० सरला आई। किंतु मुझे यह कल्पना नही थी कि मुझे उसे देखने के निमित्त से बुलाया गया। इसलिए मैंने सरला

को उस दृष्टि से नही देखा था। कुछ ही दिनो वाद फिरोदियाजी के जेष्ठ पुत्र श्री नवलमलजी वर्धा आये और उन्होने मुझे तथा चि० ईश्वर को चि० सरला को देखने का निमन्त्रण दिया।

हम दोनो वर्धा से रेल द्वारा अहमदनगर रवाना हुये। चि. ईश्वर को किसी ने कह दिया था कि चि० सरला का वर्ण श्याम है। सो वह रास्ते से ही वापिस लौटने की वात करने लगा। मैंने कहा कि मैं तुम पर किसी प्रकार का दवाव नही डालता, जैसा तुम्हे ठीक लगे वैसा निर्णय करना, पर मेरा खयाल है कि सरला का वर्ण श्याम नही है। मैंने अभी कुछ दिन पहले उसे देखा, उसका वर्ण गौर है। यदि फिरोदियाजी के यहा सम्बन्ध हो तो मुझे अच्छा लगेगा पर, मैं मुझे अच्छा लगे इसलिए तुम पर जबरदस्ती नही करू गा। उसने स्वय सरला को देखकर निर्णय करने को कहा और हम लोग अहमदनगर पहुँचे। चि० सरला को देखकर इश्वर ने स्वीकृति दी, सम्बन्ध वही पर निश्चित हो गया। मुझ पर यह आक्षप किया गया कि मैंने इस सम्बन्ध करने मे योग्य लडकी देखने के एवज मे धन का ही अधिक खयाल किया । मेरे फिरोदियाजी के यहा सम्वन्ध करने के दो कारण थे। एक तो सस्कारी व शिक्षित परिवार और दूसरा दसा-बीसा म सम्बन्ध हो यह मेरी इच्छा। उन दिनो दसा-बीसा मे विवाह को पूरे समाज की मान्यता नही मिलती थी। भले ही कुछ सुधारक ऐसे सम्बन्धो मे सहयोग देते भी हो तो भी समाज मे आमतौर से प्रचलित नही थे। इसलिए मैं उसे समाजसुधार का काम मानता था।

यह सम्वन्ध होने पर मेरे मित्र राजमलजी ने मुझे समर्थन दिया इसलिए यह विवाह जामनेर से करने का निश्चय कर पुराने विचार वालो को भी अधिक से अधिक संख्या मे ले जाने की इच्छा प्रकट की। वैसे मेरी तो २५ से अधिक लोग बरात मे ले जाने की इच्छा नही थी फिर भी ७५ के करीब लोग वरात मे गये। पत्रिका भी भाई राजमलजी

ने अपने नाम से ही छपवाई थी। विवाह मे समाज के गणमान्य लोग उपस्थित थे, पर अहमदनगर के बीसा ओसवालो ने इस विवाह का बहिष्कार किया था। हम बीसा थे और फिरोदियाजी दस्सा। समाज का मुझ पर गुस्सा इसलिए भी था कि बीसा मे भी संपन्न परिवार की अच्छी कन्या मिल सकती थी। फिर मैंने यह काम क्यो किया ?

उधर फिरोदियाजी को ऐसे कहनेवालो की भी कमी नही थी कि उन्होने संपन्न परिवार मे पली अपनी कन्या को मध्यम स्थिति के घर मे देकर कन्या के प्रति अन्याय किया। स्वयं फिरोदियाजी को भी अपनी कन्या के लिए उस समय चिंता हुई होगी किंतु वे बडे विवेकशील व सिद्धातप्रिय सज्जन थे। हर कन्या के पिता की इच्छा रहती है कि मेरी पुत्री अपने से अधिक सम्पन्न परिवार मे जावे और सुख से रहे। उनके मन मे यह वात न आई हो ऐसा तो नही कहा जा सकता पर उन्होने योग्य लडका देखकर यह सम्बन्ध किया उसके पीछे सुधार की भावना न हो यह भी नही कहा जा सकता। मेरे मित्र श्री राजमलजी के पास उन्होने अपनी कन्या के भविष्य के विपय मे चिता प्रकट की थी। मैंने फिरोदियाजी से तो नही पर भाई राजमलजी से कहा था कि मैं सरला को अपनी पुत्री से कम नही समझूंगा। उसका भावी जीवन सुखमय बने इसलिए ईश्वर को ठीक से व्यवसाय मे लगा देना मैं अपना प्रथम कर्तव्य समझूँगा। वे इस ओर निश्चित रहे।

चि० ईश्वर की शिक्षा पूरी होने पर उसे व्यवसाय की शिक्षा देकर काम मे लगाने की कोशिश की और मुझे सन्तोष है कि उसने इस दिशा मे अच्छी प्रगति की। उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी है। वह स्वाभिमान से व सुखपूर्वक परिवार के दायित्वो को निभा सकता है।

चि० सरला का मेरे घर मे प्रवेश होने पर मेरे परिवार के जीवन मे परिवर्तन हुआ। अब तक हमारा जीवन वहुत सादा था, मितव्ययता से घर का काम चलता था। प्राय. सभी घर के काम हाथो से ही हम करते थे। घर मे सभी लोग खादी ही पहनते थे। पर सरला के आने

पर उसे कष्ट न हो इस खयाल से घर-खर्च भी वढाया, नौकर तथा रसोईया भी आया। यदि चि० सरला को कष्ट न हो इसका ध्यान रखता हूँ तो परिवार के दूसरे लोगो को भी वे सुविधाएँ देना आवश्यक हो गया। उसने कभी कोई सहुलियत नही मांगी। हमारे परिवार मे एडजस्ट होने का पूरा प्रयत्न किया। किंतु मैं ईश्वर को साथ रखने में असफल रहा। उसका दोष मैं किसी अन्य को नही दे सकता यह तो मेरी स्वयं की ही असफलता थी जिससे परिवार का सन्तुलन मैं नही रख पाया। यह मेरे जीवन की वडी असफलता व कमजोरी रही। इसमे मेरी व्यवहार रहित सिद्धातवादिता भी एक कारण रही। मेरी जनसेवा की एकातिक भावना जिसमे व्यावहारिकता का अभाव था, उसमे मेरे परिवार को वहुत सहना पडा। मेरे अपरिग्रह व समता के एकातिक विचार तथा गुजराती मे जिसे वेदियापन कहते है, विवेक पर आधारित नही थे। पूज्य नाथजी के शब्दो मे कहा जाय तो भूल भरी सैद्धातिक व आध्यात्मिक मान्यताओ के कारण जो घर के लोगो पर प्रतिक्रियाएँ हुई वे ऐसी थी कि जिससे हमारे परिवार को अपूर्णनीय क्षति पहुँची।

सवसे वडा हमारे परिवार को आघात लगा चि० राजेन्द्र की मृत्यु से। वैसे तो चि० रोहित, जो मेरे जेल से वापिस लौटने पर डेढ साल की उम्र का था, उसकी मृत्यु का आघात भी कम नही था पर राजेन्द्र का आघात हम सवके लिए वहुत वडा था। राजेन्द्र की मृत्यु उसकी ९ साल की आयु मे हुई। इस नौ वर्ष के आयुष्य की राजेन्द्र ने जो स्मृति छोडी वह ऐसी थी जिसे अव तक विस्मृत नही कर पाया।

ऐसा लगता है वह पूर्वजन्म का कोई योगी हो। उसका रहन-सहन, वोलचाल एवं जीवनचर्या इस छोटी उम्र मे भी योगी की-सी थी। वह दोनो समय की प्रार्थना मे वरावर हिस्सा लेता। उसे पूज्य विनोवाजी से "गीताई" मिली थी, उसका पाठ करता। उसने कभी हठ नही किया दूसरो की भावना और सुख-सुविधा का खयाल रखा। वड़ा ही उच्च जीवन था उसका। मैंने तो उसे अपना गुरु ही माना। ऐसे गुणी वालक

के जाने का आघात कम नही था पर मैंने शांतचित्त से सहन किया। उसकी मां और वहनो ने भी बहुत ही गाति से इस वियोग को सहन किया। उसकी मृत्यु पर हमारे यहा रोना-धोना नही हुआ। उसके प्रिय भजन थे 'प्राणी तूँ ही हर सो डर रे, 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' और 'दीनन दुख हरन देव सन्तन हितकारी। उसकी ऐसी सात्विक वृत्ति थी कि वाजार या होटल की चीजे उसने कभी नही खायी। ऐसा सद्गुणी व संस्कारी वालक १९४८ के ३ सितम्बर को स्वर्ग सिधाया परन्तु उसने मुझे जीवन की असारता का अनुभव कराकर मृत्यु की अनिवार्यता का भान कराया। जिससे मैं बुराई से भय खाने लगा और जीवन मे यथासम्भव दूसरो की भलाई करने का प्रयत्न करता रहा।

चि० शाता के विवाह के विषय मे मुझे वहुत परेशानी नही उठानी पडी। मेरे मित्र सुगनचन्दजी लुणावत के साले चम्पालालजी बम्ब और उनका परिवार चिचवड के रहनेवाले थे। चम्पालालजी वर्धा मे कामर्स कालेज मे पढने के लिए आये। चम्पालालजी राष्ट्रीय वृत्ति के युवक थे और वे १९४२ के आंदोलन मे जेल भी गए थे। उनमे सेवावृत्ति थी इसलिए मेरा आकर्षण उनकी और रहा। वह विवाह सादगी से ही हुआ और मेरे पास उन्होने व्यवसाय की शिक्षा पाकर अपना विकास किया। वे वर्धा मे अपने व्यवसाय के साथ सेवा कार्यों मे दिलचस्पी लेते है। उनकी कृषि की रुचि होने से व्यवसाव के साथ कृषि भी करते है। उनके एक पुत्री और दो पुत्र है। पुत्री का विवाह मेरी छोटी पुत्री शशिकला के देवर रमणलालजी कोठारी के साथ हुआ जो केमिकल इंजिनियर है और बम्वई मे काम करते है, बड़े ही सुशील और विवेकी युवक है। दोनो लडको मे से एक वम्वई मे और एक वर्धा मे पढता है।

मेरी तीसरी पुत्री रतन जो मेरे साथ रहती है उसके पति सोहन लालजी कोचर मेरे मित्र प्रतापमलजी कोचर के पुत्र है और शिक्षा प्राप्ति के निमित्त से मेरे पास रहे थे। वे आजकल जमनालाल एंड सन्स

मे काम करते है। उनके तीन पुत्र है। रतन ने शादी के बाद वी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की। वह यदाकदा लिखती भी रहती है।

सवसे छोटी लडकी शशिकला का विवाह नारायणगाव निवासी फूलचन्दजी कोठारी के पुत्र के साथ हुआ। जिन्होने मुझसे ही व्यावसायिक शिक्षा पाकर धन कमाने मे काफी प्रगति की। यह वात दूसरी है कि कमाये धन के व्यय के विषय मे वे मेरे मत से सदा प्रतिकूल ही रहे। शशि प्रारम्भ से वड़ी होनहार और बुद्धिमान थी। शादी के समय तो उसकी मैट्रिक तक की शिक्षा हुई थी पर शादी के ८ साल बाद उसने फिर पढना शुरू किया। घर का कार्य और अपने दो पुत्रो को सम्भालते हुए वी० ए० एल० एल-वी० तक की शिक्षा प्राप्त करली। उसका पढने का उत्साह आज भी वना हुआ है। उसके दोनो लडके भी पढने मे वहुत तेज है। वडे लडके सुधीर की विज्ञान मे दिलचस्पी है और उसका अंग्रेजी भाषा पर वहुत प्रभुत्व है। वह सदा अपने वर्ग मे सर्व प्रथम रहता है, छोटे संजय की रुचि कला की ओर है और वह अच्छा चित्रकार बने ऐसी उसकी योग्यता है।

मेरी वडी पुत्री विमल के ५ पुत्रिया व एक पुत्र है। जिनमे से सवसे वडी लडकी सध्या का विवाह कुन्दनजी पारख के साथ हुआ जो डाक्टर है और परभणी मे अस्पताल चलाते है। दूसरी है उषा, जो सायंस की ग्रेजुएट है उसका विवाह सम्पतराजजी सिंगवी के साथ हुआ जो अमेरिका मे फार्म्यास्युटिकल मे पी० एच-डी० का अध्ययन कर रहे है। वे दोनो अमेरिका मे है। शेष तीन लडकियो मे से मीना बी० ए० उत्तीर्ण है, रेखा कामर्स कालेज मे पढ रही है और बेबी मैट्रिक मे। लडका सतीश भी मैट्रिक मे है, पर पढाई से उसका ध्यान व्यापार की ओर अधिक है।

अव मैं अपनी पत्नी के विषय मे दो शब्द लिखना चाहूँगा। क्योकि पति के जीवन का वह पूरक होती है और उसके विकास मे अप्रत्यक्ष रूप से सहयोगी भी। मेरी पत्नी भले ही सामान्य परिवार से आई हो

और शिक्षित न भी हो तो भी उसने मेरा काफी साथ दिया। जब मैं घर की व्यावसायिक आमदनी छोडकर खादीकार्य मे लगा और आजादी के आन्दोलनो मे हिस्सा लेकर जेल गया तव उसने वहुत कष्ट और अभाव की जिन्दगी बिताई, बहुत सहन किया। किसी के सन्मुख याचना नही की और दूसरो से अपेक्षा न रखकर स्वाभिमान की जिन्दगी विताई। मेरे जेल जाने पर मेरे मित्र राजमलजी ललवाणी व पूनमचंद जी नाहटा की पत्निया उससे मिलने गई और कहा कि कुछ आवश्यकता हो तो वताओ। हमारे साथ चलकर कुछ दिन रहो। वह न गई। उसने जो कुछ था उसीमे चलाया। पर उसने कभी किसी के धन की अपेक्षा नही की। मेरे घर की अतिथि सत्कार की परम्परा को गरीबी मे भी परिश्रम करके निभाया। प्रारम्भिक जीवन के परिश्रमो का उसके उत्तर जीवन मे प्रभाव पड़ा और स्वभाव मे कुछ तेजी और चिडचिडापन आ गया। स्वभाव की इस रूक्षता का एक कारण मेरे स्व० पुत्र राजेन्द्र तथा अन्य दो वच्चो का असमय मे ही उठ जाना भी वना। मा की ममता का द्वार अचानक वन्द हो जाने से स्वभाव मे चिड़चिडापन आ जाना सहज ही था। इसके अतिरिक्त राजेन्द्र की मृत्यु पर मैंने किसी प्रकार का रोना-धोना नही किया और न करने दिया। इसलिए भी संभव है कि वह दु:ख यह रूप ले चुका हो। उसके इस स्वभाव के कारण मुझे भी काफी सहना पडा और पड रहा है। पर उसके जीवन की कुछ विशेपताएं ऐसी है जो भुला नही सकता।

सेठ जमनालालजी तो उसे पुत्री की तरह मानते थे। उसके पीछे भी एक अविस्मरणीय घटना है। सेठजी जलगाव आये थे तब उन्होने मुझे वर्धा आने का आमंत्रण दिया था। मैं, मेरी पत्नी, किसनलाल घुप्पड और प्यारी वाई, जो वोलने मे वहुत कुशल थी। वह बातचीत मे सेठजी से वोली कि आप मुझे अपनी पुत्री माने। तव सेठजी ने कहा—"मैं तुम्हे पुत्री मानूँ या न मानूं परन्तु यह लडकी (मेरी पत्नी की ओर इशारा करके वोले थे) यदि मुझे पिता मानने को तैयार हो तो

उसका पिता वन सकता हूँ। क्यो लडकी, तुम मेरी बेटी वनना चाहती हो।" प्रारम्भ से वड़ो के समक्ष वोलने मे सकोच करनेवाली मेरी पत्नी ने सिर्फ हँसकर सर हिलाकर हा भर दी।

तभी से सेठजी उसे पुत्री की तरह मानते थे। जव वे सावरमती रहते थे तव उसे अपने साथ रहने के लिए ले गये थे। उससे वारवार आवश्यकताओ के लिए पूछते, किंतु उसने कभी कुछ नही मांगा। सेठजी के साथ रहते हुए माताजी जानकीदेवी का सम्पर्क आया और नमक सत्याग्रह के समय जव हम साथ रहते थे तव उसने उनकी स्वच्छता व सफाई और कुछ वाते ऐसी अपनाली जिससे उसकी सफाई की कल्पना मेरे लिए झुंझलाहट का कारण वन गई। भले ही जानकी देवी उसे अपनी चेली मानती हो,पर उनका शिष्यत्व मेरे लिए तो उलझन की चीज वन गया। वह अपने वाथरूम को रसोई घर से भी अधिक महत्व देती है। उसके संडास या वाथरूम मे दूसरा कोई जावे तो यही वहम रहता है कि वह गंदा कर देगा। एकवार की घटना है जव राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादजी के लिए भी उसने ऐसी वात कही। हम वर्धा रहते थे तो एक वार कुछ नेता लोग हमारे यहा ठहरे। उनमे राजेन्द्रवावू भी थे। उनका भोजन नास्ता तो सेठजी के चौके मे होता था, सिर्फ ठहरे ही हमारे यहा थे। राजेन्द्र वावू वडा लोटा लेकर संडास की ओर जाने लगे। उनकी ऊँची धोती और कृष्ण काया देखकर वह वोली—'देखिए तो, कही यह भैया संडास न विगाड़ दे।" जव मैंने यह वताया कि ये तो हमारे वहुत वड़े नेता है तव उसे संतोप हुआ।

सफाई निमित्त पानी का इतना अधिक उपयोग करती है कि जिससे उसे प्रवास करने के पहले इस वात की चिता रहती है कि जहाँ जा रही हूँ वहा संडास, वाथरूम के साथ-साथ जल प्रचुर मात्रा मे है या नही। सफाई के निमित्त जल व सावुन के अधिक उपयोग के कारण

उसकी त्वचा सूख कर रुक्ष हो गई है। साबुन का तो वह उपयोग कर ही नही सकती। बाहर जाने पर चप्पले धोने से होने वाली हानि को समझाने मे वर्षों लगे। उसकी इस सफाई सम्बन्धी कल्पना ने उसे भी काफी परेशान किया और मुझे भी, पर इसके बावजूद वह मेरी जो सार-संभार और सेवा करती है उसके लिए तो मुझे उसका अनुग्रह मानना ही चाहिये। सफाई को लेकर कुछ-कुछ असंतोप रहता है वह तब तक सहनीय था जब तक वह स्वयं हाथ से काम करती थी। हमारे सार्वजनिक जीवन के दिनो मे रोटी बनाना, बर्तन माजना, घर की सफाई तथा कपडे धोना आदि सब काम वही करती थी, पर व्यवसाय प्रवेश के बाद आमदनी बढने पर नौकरो का प्रवेश हुआ तब यह असंतोप अधिक बढा, क्योकि नौकरो मे मेरी पत्नी जैसी सफाई की क्षमता बहुत कम पाई जाती है। उसे नौकरो को अच्छा खाना देने, अधिक वेतन देने मे आपत्ति नही है पर वे उसकी कल्पना के अनुसार सफाई न रखे यह उसके बर्दास्त के बाहर की चीज है। नौकरो को लेकर घर मे अशाति बनी रहती है। क्योकि चाहे तुकाराम की इस उक्ति के कारण हो या मेरी वृत्ति के कारण परन्तु 'दया करणे पुत्रासी तेच दासा आणि दासी।' मैं अपने नौकरो पर पुत्र की तरह प्यार करने की कोशिश करता हूँ। इसलिए जब कोई नौकर को डाट-डपट करता है तो मैं संतुलन खो देता हूँ। हमारे बीच जो अंतर है उसे दूर करने का मेरा प्रयत्न रहता है वह भी इस बात को समझती है, फिर भी पडे हुये स्वभाव के लिए हम दोनो विवश है। मेरा कहना है कि यदि नौकर रखना हो तो उसे प्रेमपूर्वक परिवार के सदस्य की तरह रखा जाय। यदि उस तरह रखना संभव न हो तो बिना नौकर के काम किया जाय। अबतक मेरी यह बात उसके गले नही उतर सकी है पर मैं इसे अपनी कसौटी मानता हूँ। जिस दिन इस कसौटी पर खरा उतर सकूंगा तभी मै स्वय को समता की कसौटी मे खरा उतरा हुआ मानूँगा अन्यथा मेरी साधना अपूर्ण ही रहेगी। वह मेरी इस स्थिति से अपरिचित हो ऐसी

वात भी नही। वह यह बात अच्छी तरह से जानती है कि नौकर पर गुस्सा करना मेरे दु ख और उद्वेग का कारण है और उससे मुझे बहुत वेदना होती है। जिसका मेरे स्वास्थ्य पर कुप्रभाव होता है। पर वह भी क्या करे ? प्रयत्न करने पर भी उसकी आदत छूटती नही। इस सफाई को लेकर नौकरो से ही नही, उसका अपनी वेटियो तथा नातियो के लिए भी वैसा ही वरताव रहता है। कभी कभी किसी गुण की विगेपता भी अतिगयता के कारण दुर्गुण मे परिवर्तित हो जाती है।

इसी प्रकार का एक विगेष गुण अतिथि-सत्कार का भी उसमे है। किसी भी अतिथि के लिए वह अच्छा भोजन, मिठाईया आदि हार्दिक प्रसन्नता से तैयार करती है और आग्रहपूर्वक उसे खिलाती है। लेकिन इसमे भी उसकी अतिगयता रहती है। दो व्यक्तियो के लिए सामग्री चाहिये तो वह ५ व्यक्तियो के लिए जितना चाहिये उतना तैयार कर लेती है। मैं व्यावहारिक दृष्टि से कभी समझाता हूँ लेकिन उनका यह सहज स्वभाव ही वन गया है।

उसके इन गुणो के साथ-साथ अपना एक अवगुण भी स्वीकारता हूँ। वह है मेरा अव्यवस्थितपन। ठीक इसके विपरीत मेरी पत्नी अत्यंत व्यवस्था प्रिय है। सारा कार्य व्यवस्थित होगा, हर वस्तु यथा स्थान रहेगी। घर पर मेरे वस्त्रो से लेकर पत्र-पत्रिकाओ तक को सम्हालकर रखना उसका ही कार्य है, भले ही उसको मेरे अव्यवस्थितपन से झुंझलाहट होती हो, किंतु व्यवस्थित किये विना उसे चैन नही मिलता। इसी प्रकार प्रवास मे भी क्या लेना है, कैसे लेना है इसका निर्णय एवं व्यवस्था वही करती है क्योकि मैं ठहरा भुलक्कड और लापरवाह। मेरे प्रत्येक कार्य के प्रति वह सजग व सेवाभाव से तत्पर रहती है। मैं मानता हूँ कि उसकी सेवा और व्यवस्था से मुझे कार्य करने मे सुविधा और सहूलियत मिलती है।

कुल मिलाकर देखता हूँ तो मुझे लगता है कि मेरी पत्नी अपनी कुछ आदतो के बावजूद अत्यन्त स्वाभिमानी, सेवाभावी, अतिथि-सत्कार करनेवाली, मितभाषी एवं व्यवस्थाप्रिय गृहिणी है, जिसका सारा संसार उसकी गृहस्थी मे ही होता है।

मेरे परिवार का पूरा परिचय मैं इसलिए नही दे सकता कि जिन्होने मुझे अपने परिवार का मानकर आत्मीय सम्बन्ध रखे हो ऐसे लोगो की संख्या बहुत बडी है। मुझे खेद है कि विस्तार भय के कारण मैं उन सबको न्याय नही दे सकता। वे मुझे क्षमा करे।
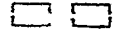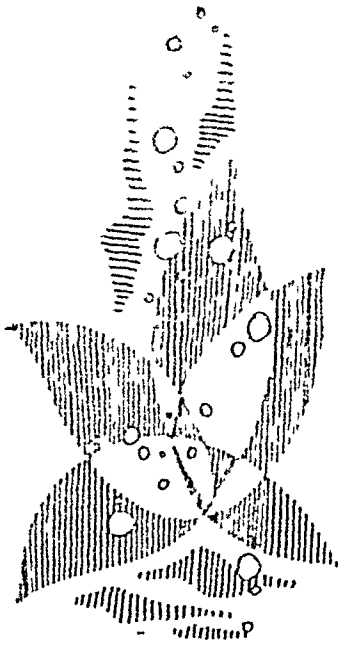
३०

मेरा सौभाग्य

'जो याद रह गया' का यह अन्तिम परिच्छेद है। मैंने जो कुछ याद था उतना ही लिखा है और उसमे भी पूरा नही लिखा, क्योकि विस्तार का भय था। भूलने की प्रक्रिया मे हो सकता है मै अपने उन अनेक वुजुर्गों, साथियो और शिक्षको को भूल गया होऊं जिनसे मैंने पाया है। इसलिए मैं उन सवको भी आदरपूर्वक नमन करता हूँ। सच तो यह है कि मैं वहुत भाग्यवान रहा हूँ।

मेरा सद्भाग्य समझे या प्रभु की कृपा कि मुझे प्रेम करने वालो, चाहनेवालो और कृपालुओ की संख्या बहुत बडी है। जिन्होने मुझे प्रेम दिया, मेरे व्यक्तित्व को वनाया, ऐसे सैकडो नही, वल्कि हजारो व्यक्ति है। वे सव तीन श्रेणियो मे बाटे जा सकते है। सर्व प्रथम वे वुजुर्ग जिन्होने गुरु या वडे के रूप मे शिक्षा दी, दूसरे वे जिन्होने साथी के रूप मे प्रेम और सहयोग दिया और तीसरे वे जिनको मैंने वडे वुजुर्गों से प्राप्त अनुभव के ऋण को वापिस करने के लिए कुछ दिया। मैंने उन युवको को अपने अनुभव से सिखाने का प्रयत्न किया। अपना

अनुभव वताते समय मुझे उन युवको से भी वहुत कुछ सीखने को मिला। अनेको से मुझे सीखने का अवसर मिला और जो पाया वह दूसरो को देने की कोशिश करता रहा। इस कोशिश मे मैं छोटे वडे का ख्याल न करते हुए जिससे सीख सका, सीखता रहा। वड़ो से शिक्षा के रूप मे, साथियो के साथ काम करते समय और छोटो को सिखाते समय। शिक्षा ग्रहण की प्रक्रिया सदा ही चलती रही, जो अव भी चल रही है।

मेरे शिक्षको तथा बुजुर्गों मे सभी क्षेत्रो के लोग रहे। धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक आदि विभिन्न क्षेत्रो के शिक्षक है। ये सभी अपने-अपने क्षेत्र और सभी विचारो के लोग थे। इसको मैं अपना सौभाग्य या भगवान की कृपा मानता हूँ कि मुझे ऐसा अवसर मिला। मेरा यह भी एक सौभाग्य मानता हूँ कि गुलाम भारत मे जन्म कर आजाद भारत मे रह रहा हूँ। आजादी की लडाई मे स्वतंत्रता के पक्ष मे अपनी आहुति देने, उसमे योगदान देने का अवसर मिला। देश की आजादी के उन सपूतो के साथ रह कर काम करने का मौका मिला जो उच्चस्तरीय नेता थे।

धार्मिक क्षेत्र मे भी ऐसे ही उच्चस्तरीय नेताओ के प्रत्यक्ष संपर्क द्वारा जानने व सीखने का मौका मिला। मेरी इस शिक्षा प्राप्ति मे मैंने कभी धर्म, जाति, लिंग का भेद नही किया। जो सुना उस पर चिंतन किया और चिन्तन के बाद ग्रहण करने योग्य लगा उसका आचरण करने का नम्र प्रयास करता रहा। अनुभव यह मिला, किसी भी बात की जानकारी होने मात्र से कुछ नही होता यदि उस जानकारी का जीवन मे प्रयोग न किया जाय। काम करने से ही कार्य मे दक्षता आती है। इसलिए धर्म के क्षेत्र मे भी धर्म तत्वो की जानकारी की अपेक्षा उनके आचरण से होने वाले लाभो को पाने की इच्छा रही। प्रारम्भ मे भले ही चर्चा या विवाद मे रस रहा हो, पर जव आचरण के लाभो को देखा और अनुभव हुआ तो वोलने मे सभल गया। प्रत्यक्ष कार्य करने का उत्साह वढा।

मैं विद्वान तो था नही, परन्तु विद्वानो के सम्पर्क या उनके साहित्य

से उस क्षेत्र मे प्रवेश हो पाया। लेकिन वह मेरा क्षेत्र नही होने से मैं उस दिशा मे विशेप प्रगति नही कर पाया। हा, व्यवसाय का क्षेत्र तो मेरा अपना था। वनिये के घर जन्मा था और बनियो के लिए जो मार्ग-दर्शक समझे जाये उन गांधीजी व जमनालालजी से व्यापार की बात सीखी और स्वाभिमान पूर्वक जीवनचर्या चलाने के लिए कुछ व्यापार भी ६८ वर्प की उम्र तक करता रहा। इससे जो अनुभव हुआ यदि उसका लाभ लिया जाय तो वहुतो की आर्थिक समस्या सुलझ सकती है। आज कमाई के अवसर पहले से ज्यादा सुलभ हो गये है। कोई भी व्यक्ति ईमानदारी के साथ बुद्धिपूर्वक परिश्रम करे तो आर्थिक कठिनाई दूर करना कठिन नही है। जरूरत है व्यक्ति को अपनी सुप्तशक्ति जगाने की, जिसका भंडार उसके पास भरा पड़ा है। वह शक्ति जगाने की प्रेरणा देना और उसे काम मे लेने का अवसर देना ही काफी होता है। जब मैं स्वयं अपने जीवन पर दृष्टि डालता हूँ तो मुझे अपने आप-पर आश्चर्य होता है। मेरे जैसा एक व्यक्ति जो एक छोटे से गांव मे जन्मा, वहुत कम पढा लिखा, सामान्य साधनोवाला यदि तरक्की कर सकता है तो क्या कारण है कि दूसरे वैसा न कर पावे ? मैंने देखा कि मेरे पास जो कोई सामान्य व्यक्ति प्रारम्भ मे काम सीखने आये, आज वे लाखो की कमाई कर रहे है। जिन्हे दूसरो से वात करने मे संकोच होता था वे कुशल विक्रेता तथा व्यवसायी वन गये है। पचासो व्यक्ति व्यापार मे आज लाखो की कमाई कर रहे है।

व्यापार की तरह सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र की वात करे उसमे भी जिन्होने मेरे अनुभवो से लाभ उठाया ऐसे अनेक सफल कार्यकर्ता है। उन्होने अपना सर्वांगीण विकास किया है। जिसमे जो कमी थी उसे पूरा करने का प्रयास करता रहा तथा जिसमे जो विशेषता थी उस विशेषता को बढाता रहा। जिन्होने मेरी सलाह मान अपनी बुद्धि का उपयोग निर्दोष काम करने तथा काम की गति बढाने मे किया वे उत्तम कार्यकर्ता, कार्य दक्ष व कार्य क्षम वन गये। मेरा प्रयत्न साथी को

सिखाते समय यही रहता है कि उसे यह भान न हो कि मैं उसे शिक्षा दे रहा हूँ। उसे अपनी शक्ति व बुद्धि के अनुसार काम करने की छूट देता हूँ और जहा उसे काम मे कोई वाधा आती है उसे दूर करने का प्रयास करता हूं। वह अपनी समस्या अपने द्वारा ही सुलझाये जिससे उसका आत्मविश्वास वढे और वह अपनी शक्तियो का विकास करता रहे।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे एक वार ऐसा अवसर आता है कि यदि उसे संभाला न जाय तो जीवन मे निराशा व्याप्त हो कर उसमें हीनता की भावना पैदा हो जाती है और वह आत्मविश्वास खो देता है। ऐसे प्रसंगो मे धैर्य वंधाना जरूरी हो जाता है। मेरे जीवन मे युवको के जीवन को मोडने के कई अवसर आये। हम मित्रो ने एक रोलिंग मिल मेरे मित्र के पुत्र के लिए साढ़े तीन लाख की पूंजी से प्रारंभ की। आवेग और उल्लास मे रोलिंग मिल तो शुरू करदी परन्तु लोहे का कोटा मिलने की जो उम्मीद थी वह नही मिल पाया। लोहे के स्क्रेप पर काम चलाने की कोशिश की। पूर्व अनुभव था नही, अतः साढ़े तीन लाख की पूंजी मे से सवा तीन लाख रुपया घाटे मे चला गया। फिर भी हमने उसका उत्साह न तोडकर उसे सलाह दी कि वह घवरावे नही, धीरज वंधाते रहे कि यदि रोलिंग मिल नही चलती हो तो रोलिंग मिल वेचकर दूसरा काम जो उसे ठीक लगे वह करे। उसने इस कठिनाई मे से रास्ता निकालने का प्रयत्न किया और डवलराल जिन्स वनाने शुरू किये। दो ही साल में घाटा पूरा हो गया, अव तो वह कम्पनी साल मे डेढ़ से दो लाख का मुनाफा देती है और मित्र का लडका अव उद्योगो के मामले मे इतना कुशल हो गया है कि उसने ७५ लाख की लागत का प्लास्टिक कारखाना लगाया है। मुझे विश्वास है कि अव वह अच्छे कुशल व्यवसायी के रूप मे सफल होगा।

मनुष्य नया काम शुरु करता है तव उससे भूले होती है पर भूलो के लिए उलाहना न देकर प्रेम से समझा कर धीरज देने पर वे भूलें

शिक्षा के रूप में काम आती है। भूलो के समय कोई संभालने वाला या रास्ता दिखाने वाला मार्गदर्शक न मिले तो निराश होकर मनुष्य आत्मविश्वास खो बैठता है। कुशल व सफल उद्योगपति सेठ कस्तूर भाई ने अपने अनुभव सुनाते समय बताया कि वे भूलो से सीखते-सीखते ही सफलता प्राप्त कर सके है।

सेवा कार्य की ही बात ले। सेवा कार्यों के लिए बहुत कम लोगो मे रुचि होती है। जिनमे दूसरो के लिए काम करने की सद्भावना हो ऐसे सेवाभावी कार्यकर्ताओ को यदि प्रेम से अपनाने वाला और योग्य मार्गदर्शक नही मिलता है तो स्वाभाविक ही वह अपने पारिवारिक कामों मे लग जाता है। परिवार या अपने आप का हित देखने की तो सभी में सहज प्रेरणा पाई जाती है। परन्तु दूसरो के लिए त्यागकर या कष्ट उठाकर सेवा करने की भावना कम लोगो मे पाई जाती है। ऐसी भावनाशील सेवा-वृत्ति वालो को प्रशिक्षित कर उनके साथ आदर का व्यवहार करना तथा उनकी उचित जरूरतो की पूर्ति कर स्वाभिमान पूर्वक जीवन निर्वाह का साधन उपलब्ध करा देना अत्यन्त आवश्यक होता है। यदि वैसा न कर सेवा मे अपना जीवन लगाने वालो के प्रति नौकरो का-सा व्यवहार किया जाता है तो उनकी भावनाओ को चोट पहुँचती है और कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति काम करने के लिए तैयार नही होता। जो अपमान सहन कर, दीन बनकर काम करते है वे ऐसे ही लोग होते है जिन्हे दूसरी जगह कार्य नही मिलता, अत: संस्थाओ में नौकरी करते है। भले ही ऐसे लोग काम करे परन्तु न तो उसमे उनका ही विकास है और न संस्था का ही हित।

मुझे कार्यकर्ता प्रशिक्षित करने वाले कुशल कलाकार महात्मा गांधी व स्व० बजाजजी के सम्पर्क से कार्यकर्ता तैयार करने की शिक्षा मिली। केवल शिक्षा ही नही मिली वरन् बापूजी तथा जमनालालजी ने कई बार मेरे पास काम सीखने के लिए कार्यकर्ताओ को भी भेजा जिन्हे मैंने प्रशिक्षित करके लौटाया। मुझे यह कार्य इसलिए प्रिय रहा कि मेरे

व्यक्तित्व के विकास के लिए जमनालालजी, बापूजी तथा अनेकों ने यह काम किया था। उनका ऋण किस तरह लौटा पाता ? इसलिए जो पाया उसे देने का प्रयत्न रहता है और मुझे मेरी भूलों के कारण जो भुगतना पडा वह उन्हे न भुगतना पडे यह इच्छा रहती है।

सेवा-कार्यों मे योग्य प्रशिक्षित कार्यकर्ताओ का अभाव है। जिसके कारण सेवाकार्यों मे निरर्थक खर्च अधिक होकर संतोपजनक काम नही हो पाता। इसलिए सेवाकार्यों के लिए कार्यकर्ता प्रशिक्षित करने और उनमे आत्मीयता बढाने का मेरा प्रयत्न रहता है। कई संस्थाओ से सम्पर्क आया और आज भी उनमे जिन-जिन कार्यकर्ताओ के साथ मेरा सम्बन्ध आया, मैंने उन्हे अपना आत्मीय बनाने का प्रयत्न किया। फलतः आज सैकडो कार्यकर्ता मुझे आत्मीयता दे रहे है।

चूंकि मेरे पुत्रो की बालवय मे ही मृत्यु हो गई थी और अब मेरे पुत्र नही है, इसलिए मेरे मित्रो की ओर से सुझाव आया कि मैं किसी को गोद ले लू। मैंने कहा कि यदि मैं किसी एक लडके को गोद लेता हू तो मेरे सैकड़ो लड़के, जो हर शहर और गाव मे फैले हुए है, उनके प्रेम से मैं वंचित रह जाऊंगा। यह मेरी अतिशयोक्ति नही, वास्तविकता है। मुझपर पितृवत् प्रेम करने वालो की संख्या छोटी नही है। मैं उनके प्रेम और आत्मीयता के लिए तो कृतज्ञ हूँ पर उनके द्वारा मुझे जो कुछ मिला है उसके लिए मैं अपने आपको योग्य नही पाता। इन सबने केवल प्रेम और आदर ही दिया हो ऐसी बात नही है। उनमे से कईयो ने तो इतना विकास कर लिया है कि उनसे नई बाते सीखने और समझने की स्थिति आगई है। गुरु शिष्य से पराजित होने मे खोता नहीं है, पाता ही है। मैं अपनी मर्यादा समझता हूँ, मेरे ज्ञान की अपूर्णताओ का मुझे भान है इसलिए किसी समय जिन्हे सिखाया उनकी सलाह लेने या उनसे सीखने मे मुझे संकोच नही होता। बल्कि उनसे भी सीखने का प्रयत्न करता हूँ। ज्ञान का क्षेत्र बहुत विशाल है। किसी भी व्यक्ति का, ज्ञान की सभी शाखाओ मे विशेषज्ञ होना सभव नही। फिर इन

दिनो ज्ञान के क्षेत्र मे इतनी अधिक प्रगति हो रही है कि मनुष्य किसी एक शाखा मे निपुण हो ज्ञान प्राप्त करे इससे अधिक उसके लिए संभव नही है। इसलिए मनुष्य को विवेक यही सिखाता है कि हर विषय मे अपने आप को कुशल समझने की भूल न कर उस विपय के विशेषज्ञ या जानकार की सलाह से काम करे। विज्ञान ने मानव जीवन के अनेक क्षेत्र निर्माण कर दिये है अत. वही व्यक्ति जीवन मे सफल हो सकता है जो इस तथ्य को समझ कर उपलब्ध ज्ञान का उपयोग ले। मैं ऐसे ज्ञान वर्धिष्णु युग मे जन्मा और ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा मुझ मे रही यह मैं अपना सद्‌भाग्य मानता हूँ। महान ज्ञानी सुकरात का कहना "ज्ञानी वह है जिसे अपने अज्ञान का भान हो" कितना सार्थक है।

मेरे हृदय मे यह इच्छा जरूर है कि समाज मे सेवा करने वालो के लिए आदर्श सस्था हो। अब इस उम्र में कुछ नया करने का न तो उत्साह है और न शक्ति ही। इसलिए जैन समाज के प्रबुद्ध मुनि श्री अमरचन्दजी से जव वीरायतन के विषय मे वात चली तो मैंने विवेचन किया था कि वे वीरायतन योजना में भारत सेवक समाज की तरह जैन सेवक समाज या वीर सेवक समाज जैसी संस्था बनावें जिससे समाज-हित का विशाल कार्यक्रम सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सके। किसी भी कार्य को सफल वनाना हो तो सर्वप्रथम प्रशिक्षित और निस्वार्थ कार्य-कर्ताओ की जरूरत होती है। जब तक कार्यकर्ता स्वार्थ, सत्ता तथा प्रतिष्ठा के मोह से मुक्त नहीं होता, उनसे सेवाकार्य ठीक से नहीं बन पड़ता। परन्तु यह भी वास्तविकता है कि ऐसे कार्यकर्ताओ के स्वाभिमान पूर्वक जीवन निर्वाह की व्यवस्था न हो तो वे निश्चितता पूर्वक काम नही कर सकते।

कार्यकर्ताओ के निर्माण तथा उनके जीवन यापन की उचित व्यवस्था सम्वन्धी मेरा स्वप्न पूरा होगा या नही यह तो नहीं कह सकता पर समाज को यदि अपने साधनो व शक्ति का उपयोग करना हो तो कार्य-कर्ताओ की समस्या सुलझानी ही पडेगी। उसके विना काम चल नही

सकता। चाहे यह काम आज किया जाय या कल, परन्तु करना ही होगा। इसकी चर्चा मैंने जैन विश्व भारती के लिए आचार्य श्री तुलसीजी से तथा अनेक नेताओ से भी की है। मैं नही जानता कि मेरी इस प्रार्थना का क्या परिणाम होगा पर इसके बिना चारा नहीं होने से इसे प्राथमिकता देनी ही होगी।

मैं तो अब कुछ नये काम का दायित्व लेने की स्थिति मे नही हूँ। बल्कि जो दायित्व है उन्हे छोडना भी चाहता हूँ। मुझसे अब इस उम्र मे नये कार्य की आशा भी नही रखनी चाहिए। फिर भी किसी काम मे मेरा उपयोग करना चाहे और करने जैसी स्थिति हो तो मुझे समाज का काम करने मे संतोष ही होता है। मैं मानता हूँ कि मेरे जीवन के शेष दिनो का ठीक उपयोग हो जाय, वह सफल और सार्थक बने।

बुजुर्गो, साथियो तथा छोटो सभी से मेरा सादर निवेदन है कि मैं आपके प्रेम और उपकारो को भुला नही सकता इसलिए नतमस्तक होकर प्रणाम करता हूँ। मेरी सीमित शक्ति के कारण मै उन्हे न्याय नही दे पाया होऊं तो मुझे वे उदार हृदय से क्षमा कर दे।

□ □